# न पथ प्रदर्शक

सम्पादक : पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

कार्यालय : श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर
जयपुर 302005

# जैनपथ प्रदर्शक

## बनारसीदास विशेषांक

वर्ष : ११ मार्च (द्वितीय) १९८७ अंक : २४
आजीवन शुल्क : १५१ रुपये वार्षिक शुल्क : १५ रुपये विशेषांक प्रति : ५ रुपये

राग - वृन्दावनी सारंग सं ४५

विराजै 'रामायण' घट माहि ।
मरमी होय मरम सो जानै, मूरख मानै नाहि ।। विराजै० ।।
आतम राम ज्ञान गुन लछमन, सीता सुमति समेत ।
शुभोपयोग बानरदल मडित, वर विवेक रन खेत ।। विराजै० ।।
ध्यान धनुष टकार शोर सुनि, गई विषयदिति भाग ।
भई भस्म मिथ्यामत लका, उठी धारणा आग ।। विराजै० ।।
जरे अज्ञान भाव राक्षसकुल, लरे निकाछित सूर ।
जूझे राग-द्वेष सेनापति, ससै गढ़ चकचूर ।। विराजै० ।।
बिलखत कु भकरण भव विभ्रम पुलकित मन दरयाव ।
थकित उदार वीर महिरावण, सेतुबध समभाव ।। विराजै० ।।
मूर्छित मदोदरी दुराशा, सजग चरन हनुमान ।
घटी चतुर्गति परणति सेना, छुटे छपकगुण बान ।। विराजै० ।।
निरखि सकति गुन चक्रसुदर्शन, उदय विभीषण दीन ।
फिरै कबध मही रावण की, प्राणभाव शिरहीन ।। विराजै० ।।
इह विधि सकल साधु घट अतर, होय सहज सग्राम ।
यह विवहारदृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम ।। विराजै० ।।

— कविवर बनारसीदास

# विषय-सूची

# सम्पादकीय

अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन ने आध्यात्मिक नभ मण्डल के चमकते सितारे कविवर बनारसीदास के चतुर्थ शताब्दी वर्ष को सारे देश मे कविवर से सम्बन्धित सेमीनार, कवि गोष्ठियाँ, लेखन एव भाषण प्रतियोगिताएँ, आध्यात्मिक शिक्षण शिविर, उनके साहित्य का प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाओ के विशेषाको के प्रकाशन आदि विभिन्न समारोहो के माध्यम से मनाने की घोषणा करके एव एतदर्थ अपनी सभी देशव्यापी शाखाओ का आह्वाहन करके निश्चय ही एक अभिनन्दनीय एव अनुकरणीय कदम उठाया है।

आज प्रेरणास्रोत कविवर बनारसीदास के जीवन और साहित्य को उजागर करना न केवल उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना है, बल्कि आज के सदर्भ मे उनका जीवनदर्शन एक महती आवश्यकता भी है।

आज के भौतिकवादी, मशीनी एव आर्थिकयुग की भागदौड भरी जिन्दगी मे आध्यात्मिक ज्ञान के अभाव के कारण शक्तिपुज युवकवर्ग भी अपने को एकदम अशान्त और खिचा-खिचा अनुभव करता है, अत आज आध्यात्मिक ज्ञान की अधिक आवश्यकता है।

एतदर्थ कविवर बनारसीदास का हिन्दी का अद्वितीय आध्यात्मिक ग्रन्थ 'समयसार नाटक' पठनीय-मननीय तो है ही, प्रतिदिन प्रात स्मरणीय भी है। वैसे तो कविवर के उपलब्ध काव्य की एक-एक पक्ति आध्यात्मिक ज्ञान-गगा की अनुपम लहरी है, किन्तु 'समयसार नाटक' जेसा सरल-सुबोध एव मार्मिक हिन्दी ग्रन्थ न तो अबतक दिखाई ही दिया है और न ही निकट भविष्य मे ऐसी कोई सम्भावना ही नजर आती है।

प्रस्तुत विशेषाक मे कवि के उक्त 'समयसार नाटक' की एव अन्य कृतियो की भी सम्यक् समीक्षा प्रस्तुत की गई है। हमारे मान्य प्रबुद्ध मनीषी लेखको द्वारा कवि के प्रेरणादायक जीवन और साहित्य के एक-एक पहलू पर गम्भीर चिन्तन व गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

इस क्रम मे जहाँ अनेक नव्य उदीयमान लेखको से भी पाठको का परिचय होगा, वही अनेक मजे-मँजाये मनीषी विद्वानो के शोधपूर्ण लेखो से भी पाठक पवित्र एव मगलमय प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे।

इसी पावन उद्देश्य से इस प्रसग पर जैनपथ प्रदर्शक ने अपने वार्षिक विशेपाक द्वारा कवि के अध्यात्म-सदेश को जन-जन तक पहुँचाने का लघु प्रयास किया है। यद्यपि कविवर के विराट् व्यक्तित्व को इस छोटे से अक मे समेटना सम्भव नही है, यद्यपि जो कुछ वन सका है, वह पाठको की सेवा मे प्रस्तुत है। आशा है पाठको को पसन्द आवेगा।

हमे प्रसन्नता है कि हमारे मनीपी लेखक विद्वानो ने हमारे प्रथम अनरोघ पर ही कविवर के विपय मे पठनीय, मननीय एव सग्रहणीय सामग्री उपलब्ध करा दी।

जिन अनन्य शुभचिन्तक कतिपय वयोवृद्ध विद्वानों ने अस्वस्थता एव अति वृद्धावस्था के कारण अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए अपना मगल आशीर्वाद एव शुभ-कामनाये सम्प्रेषित की है, हम उनके स्वास्थ्य व दीर्घजीवन की कामना करते हुए उनके प्रति सविनय आभार व्यक्त करते है तथा जिन्होने सदा की भाँति इस बार भी हमारे अनुरोघ को स्वीकार कर प्रकाश्य सामग्री भेजकर अनुगृहीत किया है, उनके भी हम कृतज्ञ है। जो स्नेहशील उदीयमान नव्य लेखक एव माननीय प्रौढ-प्रवुद्ध लेखक जैनपथ प्रदर्शक से पहली बार जुडे है, हम उनका हार्दिक स्वागत करते हुए उन्हे बहुत-वहुत धन्यवाद देते हैं।

इस मगलमय कार्य के लिए जिन महानुभावों ने अपनी फर्म के विज्ञापन देकर आर्थिक योगदान दिया है, उनका भी हम इस अवसर पर अभिनन्दन किए बिना नही रह सकते, क्योकि आर्थिक योगदान के विना भी यह काम सम्भव नही था।

इस अक के शुद्ध प्रकाशन के लिए प्रवन्ध सम्पादक श्री वीरसागर शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य एव साफ-सुथरे मुद्रण के लिए प्रो० प्रिण्ट 'ओ' लैण्ड धन्यवादार्ह हैं।

– रतनचन्द भारिल्ल

# शत शत अभिनन्दन

जिनका समयसार नाटक, जग को सुरभित चन्दन है;
पुण्य-पाप के हर स्वरूप का, चित्ताकर्पक वर्णन है।
'काका' जिनकी कलम, धर्म का मर्म अकाटय बताती है,
उन्ही श्री पण्डित वनारसी, का शत-शत अभिनन्दन है।।

– हास्यकवि हजारीलाल जैन "काका"
मु पो. सरकार जिला-झासी (उ प्र)

देखो, लौकिक सप्तव्यसनो का सेवन सज्जन तो करते ही नही है, सामान्यजन भी लोकनिन्दा के भय से, आर्थिक अभाव से एव स्वास्थ्य बिगडने के भय से नही करते। जो करते भी है, वे भी उसे अच्छा नही मानते। किन्तु कवि द्वारा प्रतिपादित भावो से सम्बन्ध रखने वाले ये उपरोक्त भाव सप्तव्यसन तो सभी के द्वारा सेवन किए जा रहे है, क्योकि ये भावव्यसन तो तत्त्व से अपरिचित जनो को व्यसन से ही नही लगते। जो कि आध्यात्मिक उन्नति मे बहुत बडे बाधक हैं। अत यहाँ कवि द्वारा इन व्यसनो की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है। निश्चय ही हमारे लिए उनकी यह मौलिक देन है।

केवल बाह्य क्रियाकाण्ड को मानकर उसमे ही मगन हुए लोगो को सावधान करते हुए कवि कहते है—

> बहुविधि क्रिया कलेस सौ, सिवपद लहै न कोइ।
> ज्ञानकला परगास सौ, सहज मोखपद होइ॥[1]

तथा पर परमात्मा की खोज मे भटकते हुए भक्तो का अपने ही भीतर बैठे परमात्मा की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए वे लिखते है—

> केई उदास रहै प्रभु कारन, केई कहै उठि जाहि कही कै।
> केई प्रनाम करै गढि मूरति, केई पहार चढै चढि छीकै॥
> केई कहै असमान के ऊपरि, केई कहै प्रभु हेठि जमी कै।
> मेरो धनी नहि दूर दिसन्तर, मोहि मै है मोहि सूझत नीकै॥[2]

कविवर बनारसीदास कबीर की भाँति रहस्यवादी भी है, उनकी अधिकांश रचनाये अध्यात्म से ओतप्रोत है और अध्यात्म की उत्कर्ष सीमा का नाम ही तो रहस्यवाद है, इस दृष्टि से बनारसीदास को रहस्यवादी कवि मानने मे जरा भी हिचक नही होनी चाहिए।

डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दो मे – "रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध जोडना चाहती है, यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ जाता है कि दोनो मे कुछ भी अन्तर नही रह जाता।"[3]

रहस्यवाद को इस कसौटी पर कवि बनारसीदासजी खरे उतरते हैं। उनके अध्यात्म गीतो मे रहस्यवाद की स्पष्ट झलक देखी जा सकती है।

---

1 समयसार नाटक, निर्जरा द्वार, छन्द २६

2 वही, वध द्वार, छन्द ४८

3 कबीर का रहस्यवाद, १९७२, पृष्ठ ३४

इसी पावन उद्देश्य से इस प्रसग पर जैनपथ प्रदर्शक ने अपने वार्षिक विशेषाक द्वारा कवि के अध्यात्म-सदेश को जन-जन तक पहुँचाने का लघु प्रयास किया है। यद्यपि कविवर के विराट् व्यक्तित्व को इस छोटे से अक मे समेटना सम्भव नही है, यद्यपि जो कुछ बन सका है, वह पाठको की सेवा मे प्रस्तुत है। आशा है पाठको को पसन्द आवेगा।

हमे प्रसन्नता है कि हमारे मनीषी लेखक विद्वानो ने हमारे प्रथम अनरोध पर ही कविवर के विषय मे पठनीय, मननीय एव संग्रहणीय सामग्री उपलब्ध करा दी।

जिन अनन्य शुभचिन्तक कतिपय वयोवृद्ध विद्वानों ने अस्वस्थता एव अति वृद्धावस्था के कारण अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए अपना मगल आशीर्वाद एव शुभ-कामनाये सम्प्रेषित की है, हम उनके स्वास्थ्य व दीर्घजीवन की कामना करते हुए उनके प्रति सविनय आभार व्यक्त करते है तथा जिन्होने सदा की भाँति इस बार भी हमारे अनुरोध को स्वीकार कर प्रकाश्य सामग्री भेजकर अनुगृहीत किया है, उनके भी हम कृतज्ञ हैं। जो स्नेहशील उदीयमान नव्य लेखक एव माननीय प्रौढ-प्रबुद्ध लेखक जैनपथ प्रदर्शक से पहली बार जुडे है, हम उनका हार्दिक स्वागत करते हुए उन्हे बहुत-बहुत धन्यवाद देते है।

इस मगलमय कार्य के लिए जिन महानुभावों ने अपनी फर्म के विज्ञापन देकर आर्थिक योगदान दिया है, उनका भी हम इस अवसर पर अभिनन्दन किए बिना नही रह सकते, क्योकि आर्थिक योगदान के बिना भी यह काम सम्भव नही था।

इस अक के शुद्ध प्रकाशन के लिए प्रबन्ध सम्पादक श्री वीरसागर शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य एव साफ-सुथरे मुद्रण के लिए प्रो० प्रिण्ट 'ओ' लैण्ड धन्यवादार्ह हैं।

– रतनचन्द भारिल्ल

## शत शत अभिनन्दन

जिनका समयसार नाटक, जग को सुरभित चन्दन है,
पुण्य-पाप के हर स्वरूप का, चित्ताकर्षक वर्णन है।
'काका' जिनकी कलम, धर्म का मर्म अकाटय बताती है,
उन्ही श्री पण्डित बनारसी, का शत-शत अभिनन्दन है ।।

– हास्यकवि हजारीलाल जैन "काका"
मु. पो सरकार जिला-झासी (उ प्र)

# हिन्दी-साहित्य के विकास मे कविवर बनारसीदास का योगदान

– पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

हिन्दी-साहित्य के प्रसिद्ध मध्यकालीन कवि तुलसीदास, सूरदास, केशवदास एव कबीरदास की भाँति ही जैन अध्यात्म के सर्वश्रेष्ठ कवि बनारसीदास का भी हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने मे महत्वपूर्ण योगदान है। क्या भाव पक्ष और क्या कलापक्ष— दोनो ही दृष्टियो से बनारसीदास की रचनाएँ श्रेष्ठ है। उनके ग्रन्थ समयसार नाटक, बनारसीविलास एव अर्द्धकथानक के अध्ययन से स्पष्ट पता चलता है कि भाषा-शैली पर तो उनका विशेषाधिकार था ही; विषयवस्तु लोकमगल की भावना और रसानुभूति की दृष्टि से भी आपकी रचनाएँ पूर्ण साहित्यिक, सारगर्भित एव सरस है।

जैन अध्यात्म के सरलतम प्रस्तुतीकरण मे कविवर बनारसीदास की काव्यकला सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुई है एव व्यावहारिक लोकजीवन मे भी उनकी रचनाये धार्मिक अधविश्वासो से मुक्त कराने वाली एव जनमानस की आन्तरिक भावनाओ को उद्बोधित कराने वाली मगलमय है। उनके पढने से पाठको के हृदय मे सहज ही उदात्त भावनाये उद्वेलित होने लगती है।

इस प्रकार बनारसीदास के साहित्य मे 'सत्य शिव सुन्दर' की त्रिवेणी का सहज सगम हो गया है।

वस्तुत: बनारसीदास कबीर की शैली के क्रान्तिकारी कवि है। उनका अधिकाश साहित्य कबीर की ही भाँति रूढियो पर करारी चोटे करनेवाला विशुद्ध आध्यात्मिक, मानवधर्म पर आधारित एव चिन्तन को नई दिशा देने वाला है।

उदाहरणार्थ यहाँ उनके नव्य चिन्तन के कुछ नमूने द्रष्टव्य हैं। चार पुरुषार्थों के सदर्भ मे कवि ने जो प्रचलित परिभाषाओ से हटकर नया चिन्तन दिया है, वह काफी वजनदार और यथार्थ के निकट है। धर्म-अर्थ-काम व मोक्ष पुरुषार्थ को नये ढग से परिभाषित करते हुए वे लिखते है—

कुल कौ अचार ताहि मूरख धरम कहै,<br>
पण्डित धरम कहै वस्तु के सुभाउ कौं।

खेह[1] को खजानौ ताहि अग्यानी अरथ[2] कहै,
ग्यानी कहै अरथ दरव-दरसाउ कौं ।।
दम्पति को भोग ताहि दुरबुद्धी काम कहै,
सुधी काम कहै अभिलाप चित्तचाउ कौं।
इन्द्र-लोक थान कौं अजान लोग कहै मोख,
सुधी मोख कहै एक वघ के अभाउ कौ ।।[3]

कवि ने उपरोक्त पद्य मे लोकप्रचलित चार पुरुषार्थो की परम्परित व्याख्या के विरुद्ध मोक्षमार्ग मे साधनभूत युक्तिसगत यथार्थ व्याख्या प्रस्तुत की है ।

इसीप्रकार सप्तव्यसन के सम्बन्ध मे उनका मौलिक चिन्तन द्रष्टव्य है—

अशुभ मै हारि शुभ मै जीति यहै दूत कर्म,[4]
देह की मगनताई यहै मासभखिवौ ।
मोह की गहल सौ अजान यहै सुरापान,
कुमति की रीति गनिका कौ रस चखिवौ ।।
निरदै ह्वै प्रानघात करवौ यहै सिकार,
परनारीसग परवुद्धि कौ परखिवौ ।
प्यार सो पराई सौज गहिवे की चाह चोरी,
एई सातौ विसन विडारै ब्रह्म लखिवौ ।।[5]

उपरोक्त पद्य मे उन्होने सात व्यसनो की जो क्रान्तिकारी सशक्त व्याख्या प्रस्तुत की है, वह भी अपने आप मे अद्भुत है । उनका कहना है कि—लोक प्रचलित "जुआ खेलना - मास - मद - वैश्याव्यसन-शिकार-चोरी-पररमणीरमण" रूप सात प्रकार के द्रव्य व्यसनो का त्याग कर देने पर भी यदि अशुभोदय मे हार एव शुभोदय मे जीत का अनुभव करके क्रमश शोक व हर्ष मानता रहा, उनमे दु ख-सुख का वेदन करता रहा तो वह यथार्थतया जुआ का त्यागी नही है, क्योकि जुए के फल मे भी तो जीव को हर्ष-विषाद ही होता है, यह उनसे मुक्त कहाँ हो पाया है ? इसीप्रकार मास खाने का सर्वथा त्याग करने पर भी यदि गोरे-भूरे मासल देह मे मगन रहा तो वह सच्चा मास का त्यागी भी नही है । इसीतरह मोह-ममता मे मगन रहकर अपने आत्मा से अजान रहना एक तरह से सुरापान ही है । कविवर दौलतरामजी ने मोह को ही मदपान करना कहा है—

मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ।।[6]

---

1 धूल-मिट्टी रूप धन
2 पदार्थ
3 समयसार नाटक, बन्ध द्वार, छन्द १४
4 जुआ नामक व्यसन
5 समयसार नाटक, साध्य-साधक द्वार, छन्द २६
6 छहढाला, प्रथम ढाल, छन्द ३

देखो, लौकिक सप्तव्यसनो का सेवन सज्जन तो करते ही नही है, सामान्यजन भी लोकनिन्दा के भय से, आर्थिक अभाव से एव स्वास्थ्य बिगडने के भय से नही करते। जो करते भी है, वे भी उसे अच्छा नही मानते। किन्तु कवि द्वारा प्रतिपादित भावो से सम्बन्ध रखने वाले ये उपरोक्त भाव सप्तव्यसन तो सभी के द्वारा सेवन किए जा रहे है, क्योकि ये भावव्यसन तो तत्त्व से अपरिचित जनो को व्यसन से ही नही लगते। जो कि आध्यात्मिक उन्नति मे बहुत बडे बाधक है। अत यहाँ कवि द्वारा इन व्यसनो की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है। निश्चय ही हमारे लिए उनकी यह मौलिक देन है।

केवल बाह्य क्रियाकाण्ड को मानकर उसमे ही मगन हुए लोगो को सावधान करते हुए कवि कहते है—

बहुविधि क्रिया कलेस सौ, सिवपद लहै न कोइ।
ज्ञानकला परगास सौ, सहज मोखपद होइ।।[1]

तथा पर परमात्मा की खोज मे भटकते हुए भक्तो का अपने ही भीतर बैठे परमात्मा की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए वे लिखते है—

केई उदास रहै प्रभु कारन, केई कहै उठि जाहि कही कै।
केई प्रनाम करै गढि मूरति, केई पहार चढै चढि छीकै।।
केई कहै असमान के ऊपरि, केई कहै प्रभु हेठि जमी कै।
मेरो धनी नहि दूर दिसन्तर, मोहि मैं है मोहि सूझत नीकै।।[2]

कविवर बनारसीदास कबीर की भाँति रहस्यवादी भी है, उनकी अधिकाश रचनाये अध्यात्म से ओतप्रोत है और अध्यात्म की उत्कर्ष सीमा का नाम ही तो रहस्यवाद है, इस दृष्टि से बनारसीदास को रहस्यवादी कवि मानने मे जरा भी हिचक नही होनी चाहिए।

डॉ रामकुमार वर्मा के शब्दो मे – "रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध जोडना चाहती है, यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ जाता है कि दोनो मे कुछ भी अन्तर नही रह जाता।"[3]

रहस्यवाद की इस कसौटी पर कवि बनारसीदासजी खरे उतरते है। उनके अध्यात्म गीतो मे रहस्यवाद की स्पष्ट झलक देखी जा सकती है।

---

1 समयसार नाटक, निर्जरा द्वार, छन्द २६

2 वही, बध द्वार, छन्द ४८

3. कबीर का रहस्यवाद, १६७२, पृष्ठ ३४

मैं बिरहिन पिय के आधीन । यों तलफो ज्यों जलबिन मीन ।।
बाहर देखूँ तो पिय दूर । घट देखू घट मे भरपूर ।।
घट महि गुप्त रहे निरधार । वचन अगोचर मन के पार ।।
अलख अमूरति वर्णन कोय । कबधौ पिय के दर्शन होय ।।[1]

विरह मे व्याकुल सुमतिरूप नायिका को जब अनुभव होने लगा कि आत्मा रूप नायक उससे भिन्न नही है, वह तो उसी के घट मे बसता है, तब वह कहती है कि—

पिय मोरे घट मै पिय माहि । जलतरग ज्यो दुविधा नाहि ।।
पिय मो करता मैं करतूति । पिय ज्ञानो मैं ज्ञान विभूति ।।
पिय सुख-सागर मै सुख-सीव । पिय शिवमन्दिर मैं शिवनीव ।।
पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम । पिय माधव मो कमला नाम ।।
पिय शकर मै देवि भवानि । पिय जिनवर मैं केवलि बानि ।।[2]

कविवर बनारसीदास को जो सम्प्रदायिकता व सकीर्णता की चक्की के पाटो के बीच पीसने का प्रयास किया गया है वह उनके साथ न्याय नही हुआ है । वस्तुत. बनारसीदास का दृष्टिकोण एकदम असाम्प्रदायिक है । यदि वे साम्प्रदायिकता के किले मे कैद हो जाते तो उनके द्वारा अध्यात्म का ऐसा यथार्थ उद्घाटन नही हो सकता था, जैसा उन्होने समयसार नाटक आदि मे किया है ।

उन्होने स्वय तो प्रत्येक धर्म की वास्तविकता को टटोलने की कोशिश की ही है, दूसरो को भी साम्प्रदायिकता के दृष्टिकोण से ऊपर उठकर उदारता से सोचने की दिशा दी है । उन्होने स्वय अपने को पारम्परिक पितृकुल के श्वेताम्बर सम्प्रदाय को त्याग कर यह सिद्ध कर दिया कि वे किसी कुल विशेष मे पैदा हो जाने मात्र से किसी को उस धर्म का अनुयायी नही मानते थे, बल्कि यदि उसमे धार्मिक गुणो का विकास हुआ है तो ही वह धार्मिक है । इस दृष्टि से सभी वर्णो एव धर्मानुयायियो पर की गई उनकी टिप्पणियाँ द्रष्टव्य है—

ब्राह्मण . जो निश्चय मारग गहै, रहै ब्रह्मगुण[3] लीन ।
ब्रह्मदृष्टि सुख अनुभवै, सो ब्राह्मण परवीन ।।

क्षत्री : जो निश्चयगुण जानकै, करै शुद्ध व्यवहार ।
जीते सेना मोह की, सो क्षत्री भुज भार ।।

वैश्य : जो जाने व्यवहारनय, दृढ व्यवहारी होय ।
शुभ करनी सो रम रहै, वैश्य कहावै सोय ।।

[ शेष पृष्ठ १०७ पर

1 बनारसीविलास, पृष्ठ १५९ 2 बनारसीविलास, पृष्ठ १६१
3 शुद्धात्मा

# कविवर पण्डित बनारसीदास

– डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

□

जिन-अध्यात्म-गगन के दैदीप्यमान नक्षत्र कविवर प० बनारसीदासजी हिन्दी-साहित्य-गगन के भी चमकते सितारे है, हिन्दी आत्मकथा साहित्य के तो आप आद्य प्रणेता ही है। यह मात्र कल्पना नही, अपितु हिन्दी साहित्य जगत का एक स्वीकृत तथ्य है। इस सन्दर्भ मे हिन्दी साहित्य के अधिकारी विद्वान श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी के निम्नाकित विचार द्रष्टव्य हैं –

"कविवर बनारसीदास के आत्मचरित 'अर्द्धकथानक' को आद्योपान्त पढने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास मे इस ग्रन्थ का एक विशेष स्थान तो होगा ही, साथ ही इसमे वह सजीवनी शक्ति विद्यमान है, जो इसे अभी तक कई सौ वर्षों तक जीवित रखने मे सर्वथा समर्थ होगी। सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता, निरभिमानता और स्वाभाविकता का ऐसा जबरदस्त पुट इसमे विद्यमान है, भाषा इस पुस्तक की इतनी सरल है और साथ ही साथ इतनी सक्षिप्त भी है कि साहित्य की चिरस्थाई सम्पत्ति मे इसकी गणना अवश्यमेव होगी। हिन्दी का तो यह प्रथम आत्मचरित है ही, पर अन्य भारतीय भाषाओ मे भी इसप्रकार की और इतनी पुरानी पुस्तक मिलना आसान नही है। और सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि कविवर बनारसीदास का दृष्टिकोण आधुनिक आत्मचरित-लेखको के दृष्टिकोण से बिलकुल मिलता-जुलता है। अपने चारित्रिक दोषो पर उन्होने पर्दा नही डाला है, बल्कि उनका विवरण इस खूबी के साथ किया है, मानो कोई वैज्ञानिक तटस्थ वृत्ति से विश्लेषण कर रहा हो। आत्मा की ऐसी चीर-फाड कोई अत्यन्त कुशल साहित्यिक सर्जन ही कर सकता था।[१]

फक्कड-शिरोमणि कविवर बनारसीदासजी ने तीन-सौ वर्ष पूर्व आत्मचरित लिखकर हिन्दी के वर्तमान और भावी फक्कडो को मानो न्योता दे दिया है। यद्यपि उन्होने विनम्रता-पूर्वक अपने को कीट-पतगो की श्रेणी मे रखा है (हमसे कीट-पतग की, बात चलावे कौन ?) तथापि इसमे कोई सन्देह नही कि वे आत्मचरित-लेखको मे शिरोमणि है।[२]"

श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी के उक्त कथन से यह अत्यन्त स्पष्ट है कि वे कविवर बनारसीदासजी को मात्र हिन्दी का ही नही, अपितु समस्त भारतीय भाषाओ का सर्वश्रेष्ठ एव आद्य आत्मकथाकार स्वीकार करते है।

---

१ अर्द्धकथानक, हिन्दी का प्रथम आत्मचरित, पृष्ठ २
२ वही, वही, पृष्ठ १४

फक्कड-शिरोमणि महाकवि पण्डित बनारसीदास ने अपने जीवन मे जितने उतार-चढाव देखे, उतने शायद ही किसी महापुरुष के जीवन मे आये हो। पुण्य और पाप का ऐसा सहज सयोग अन्यत्र असभव नही तो दुर्लभ तो है ही। जहाँ एक ओर उनके पास उधार खाई चाट के पैसे चुकाने के लिए भी पैसे नही थे, वही दूसरी ओर वे कई बार लखपति भी बने। जहाँ एक ओर वे शृगाररस मे सराबोर एव आशिखी मे रस-मग्न दिखाई देते है, वही दूसरी ओर समयसार की पावन अध्यात्मगगा मे भी गहरी डुबकियाँ लगाते दिखाई देते है। एक ओर स्वय रूढियो मे जकडे मत्र-तत्र के घटाटोप मे आकण्ठ डूबे दिखाई देते है तो दूसरी ओर उनका जोरदार खण्डन करते भी दिखाई देते है।

उन्होने अपने जीवन मे तीन बार गृहस्थी बसाई, पर तीनो बार उजड गई। ऐसी बात नही थी कि वे सतान का मुँह देखने को तरसे हो, पर यह भी सत्य है कि उन्हे सतान सुख प्राप्त न हो सका। तीन-तीन शादियाँ और नौ-नौ सतानो का सौभाग्य किस-किसको मिलता है? पर दुर्भाग्य की भी तो कल्पना कीजिए कि उनकी आँखो के सामने ही सब के सब चल बसे और वे कुछ न कर सके, हाथ मलते रह गये। उस समय उन पर कैसी गुजरी होगी – यह एक भुक्तभोगी ही जान सकता है।[1]

उन्होने स्वय अपनी अन्तर्वेदना इसप्रकार व्यक्त की है –

"कही पचावन बरस लौ, बानारसि की बात।
तीनि बिवाही भारजा, सुता दोइ सुत सात ॥६४२॥
नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नर दोइ।
ज्यौ तरवर पतझार ह्वै, रहै ठूँठ-से होइ ॥६४३॥
तत्त्वदृष्टि जो देखिए, सत्यारथ की भाति।
ज्यौ जाकौ परिगह घटै, त्यौ ताकौ उपसाति ॥६४४॥
ससारी जानै नही, सत्यारथ की बात।
परिगह सौ मानै विभौ, परिगह बिन उतपात ॥६४५॥[2]"

उन्होने अपने इस अप्रत्याशित दुख को अध्यात्म के आधार पर ही सहन किया था। इस दुस्सह वियोग को वे परिग्रह का घटना मानकर मन को समझा अवश्य रहे है, पर क्या इस चचल मन का समझ जाना इतना आसान है? अपनी इस स्वभावगत कमजोरी को भी कवि छिपा नही सका और तत्काल अपने गुण-दोष-कथन मे वह स्वीकार कर लेता है कि –

"थोरे लाभ हरख बहु धरै। अलप हानि बहु चिन्ता करै॥
अकस्मात भय व्यापै घनी। ऐसी दसा आइ करि बनी॥[3]"

कवि ने इतने उतार-चढाव देखे थे कि उन्हे आकस्मिक घटनाओ का भय सदा ही व्याप्त रहने लगा था। अनुकूलता मे भी सदा यही आशका बनी रहती थी कि कही कुछ अघटित न घट जावे।

---

१ समयसार नाटक, प्रस्तावना, पृष्ठ १
२ अर्द्धकथानक, छन्द ६४२ से ६४५
३ अर्द्धकथानक, छन्द ६५४ व ६५६

सवत् सोलह सौ बानवे मे ४९ वर्ष की अवस्था मे पण्डित श्री रूपचदजी पाण्डे का समागम हुआ। उनसे गोम्मटसार पढकर गुणस्थानुसार (भूमिकानुसार) आचरण का ज्ञान हुआ और कविवर की परिणति स्याद्वादानुसार सम्यक् हुई। इसके बाद उन्होने 'समयसार नाटक' की रचना की। उनकी रचनाएँ चाहे परिणति सम्यक् होने के वाद की हो, चाहे पहिले की, पर उनकी प्रामाणिकता मे कोई सदेह की गुजाइस नही है – इस बात का उल्लेख करते हुए वे कहते है –

"तब फिरि और कबीसुरी, करी अध्यातम माँहि ।।
यह वह कथनी एक सी, कहु विरोध किछु नाहि ।।६३६।।
हृदै माहि कछु कालिमा, हुती सरहदन वीच ।।
सोऊ मिटि समता भई, रही न ऊच न नीच ।।६३७।।
अब सम्यक् दरसन उनमान। प्रगट रूप जानै भगवान ।।
सोलह सै तिरानवै बर्ष। समैसार नाटक धरि हर्ष ।।६३८।।

इसके बाद वे सात-आठ वर्ष और जिए, जिसमे उनका जीवन एकदम शुद्ध सात्त्विक रहा, आध्यात्मिक साधना-आराधना मे लगा रहा। लगभग सत्तावन वर्ष की उम्र मे उनका स्वर्गवास हुआ। इसप्रकार १२ वर्ष के निश्चयाभासी और ८ वर्ष के सम्यग्ज्ञानमय अनैकान्तिक जीवन मे अर्थात् जीवन के अन्तिम बीस वर्षो मे उनके द्वारा जो भी सत्साहित्य का निर्माण और आध्यात्मिक क्रान्ति हुई, उसने दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनो ही जैन सम्प्रदायो मे समागत शिथिलता, मत्र-तत्रवाद एव अनावश्यक क्रिया-काण्ड को झकझोर दिया। इसकारण उनके अध्यात्मवाद का दोनो ओर से घोर विरोध हुआ। श्वेताम्बर यतियो और दिगम्बर भट्टारको ने उनकी आध्यात्मिक क्रान्ति का डटकर विरोध किया, पर उसके प्रबल-प्रवाह को अवरुद्ध न कर सके।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे यशोविजयजी ने बनारसीदासजी के स्वर्गवास के लगभग आठ-दश वर्ष बाद ही 'अध्यात्ममत परीक्षा', 'अध्यात्ममत खण्डन' एव 'सितपट चौरासी बोल' नामक ग्रन्थ इसी अध्यात्म मत के खण्डन मे लिखे है। यशोविजयजी के लगभग ५० वर्ष बाद मेघविजयजी ने भी इसी अध्यात्ममत के विरोध मे 'युक्तिप्रबोध' नामक ग्रन्थ लिखा है। जिसमे लिखा है कि – "आगरे मे आध्यात्मिक कहलानेवाले 'वाराणसीय' मती लोगो के द्वारा कुछ भव्यजनो को विमोहित देखकर उनके भ्रम को दूर करने के लिए यह ग्रन्थ लिखा गया है। ये वाराणसीय लोग श्वेताम्बरमतानुसार स्त्रीमोक्ष, केवलिकवलाहार पर श्रद्धा नही रखते और दिगम्बर मत के अनुसार पिच्छि-कमण्डलु आदि भी अगीकार नही करते, तब इनमे सम्यक्त्व कैसे माना जाय ?

आगे लिखा है कि आगरे मे बनारसीदास खरतरगच्छ के श्रावक थे और श्रीमाल कुल मे उत्पन्न हुए थे। पहले उनमे धर्मरुचि थी, सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रोपध, तप, उपधानादि करते थे, जिनपूजन, प्रभावना, साधर्मीवात्सल्य, साधुवदना, भोजनदान मे आदरबुद्धि रखते थे, आवश्यकादि पढते थे और मुनिश्रावको के आचार को जानते थे। कालान्तर मे उन्हे पडित रूपचद, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुमारपाल और धर्मदास – ये पाँच पुरुष मिले और शका-विचिकित्सा से कलुषित होने से तथा उनके ससर्ग से वे सब व्यवहार छोड बैठे। उन्हे

श्वेताम्बरमत पर अश्रद्धा हो गई। कहने लगे कि यह परस्परविरुद्ध मत ठीक नही है, दिगम्बरमत सम्यक् है।

वे लोगो से कहने लगे कि इस व्यवहारजाल मे फँसकर क्यो व्यर्थ ही अपनी विडम्बना कर रहे हो ? मोक्ष के लिए तो केवल आत्मचिन्तनरूप, सर्वधर्मसार उपशम का आश्रय लो और इन लोकप्रत्यायिका क्रियाओ को छोड दो। अनेक आगमयुक्तियो से समझाने पर भी वे अपने पूर्वमत मे स्थिर न हो सके, बल्कि श्वेताम्बरमान्य दश आश्चर्यादि को भी अपनी बुद्धि से दूषित कहने लगे।

अध्यात्मशास्त्रो मे प्राय ज्ञान की ही प्रधानता है और दान-शील-तपादि क्रियाएँ गौरण है, इसलिए निरन्तर अध्यात्मशास्त्रो के श्रवण से उन्हे दिगम्बरमत मे विश्वास हो गया है, वे उसी को प्रमाण मानने लगे है। प्राचीन दिगम्बर श्रावक अपने गुरु मुनियो (भट्टारको) पर श्रद्धा रखते है, परन्तु इनकी उन पर भी श्रद्धा नही है।

अपने मत की वृद्धि के लिए उन्होने भाषा कविता मे समयसार नाटक और बनारसी-विलास की रचना की है। विक्रम स १६८० मे बनारसीदास का यह मत उत्पन्न हुआ। बनारसीदास के कालगत होने पर कुँवरपाल ने इस मत को धारण किया और तब वह गुरु के समान माना जाने लगा।[1]

ये अध्यातमी या वाराणसीय कहते है कि हम न दिगम्बर है और न श्वेताम्बर, हम तो तत्त्वार्थी – तत्त्व की खोज करने वाले है। इस मही मण्डल मे मुनि नही है। भट्टारक आदि जो मुनि कहलाते है, वे गुरु नही है। अध्यातममत ही अनुसरणीय है, आगमिक पथ प्रमाण नही है, साधुओ के लिए वनवास ही ठीक है।[2]

उक्त सम्पूर्ण कथन है मेघविजयजी के युक्तिप्रबोध का। इससे बनारसीदास के प्रभाव का पता चलता है।

जिस तरह श्वेताम्बर विद्वानो ने अध्यात्ममत पर आक्रमण किए, उसी तरह दिगम्बरो ने भी किए, किन्तु दिगम्बरो ने उनके मत को 'अध्यात्ममत' न कहकर 'तेरापथ' कहा है।[3]

भट्टारक परम्परा के पोषक विद्वान् बखतराम शाह ने विक्रम सवत् १८२१ मे एक 'मिथ्यात्व खण्डन' नामक ग्रन्थ लिखा, जो इस आध्यात्मिक क्रान्ति के विरोध के लिए ही सम्पूर्णत समर्पित है। उसमे वे लिखते है –

"प्रथम चल्यो मत आगरे, श्रावक मिले कितेक।
सौलह सै तीयासिए, गही कितू मिलि टेक ।।२०।।
फिर कामा मे चलि पर्‌यो, ताही के अनुसारि ।।२२।।
भट्टारक आमेर के, नरेन्द्रकीर्ति सु नाम।
यह कुपथ तिनके समय, नयो चल्यो अघधाम ।।२५।।
किते महाजन आगरे, जात करण व्यौपार।
बनि आवै अध्यातमी, लखि नूतन आचार ।।२६।।"

इसप्रकार हम देखते है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो ही परम्पराओ की ओर से प्रबल विरोध होने पर भी उक्त आध्यात्मिक क्रान्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी फली-फूली। कहा

१ अर्द्धकथानक, भूमिका, पृष्ठ ४२ २ वही, भूमिका, पृष्ठ ५६ ३ वही, भूमिका, पृष्ठ ४८

तो यहाँ तक जाता है कि समयसार नाटक और बनारसी-विलास के कवित्त जैनाजैन जनता मे इतने लोकप्रिय हो गये थे कि आगरा आदि नगरो की गली-गली मे गाये जाने लगे थे। उक्त बात की पुष्टि समयसार और आत्मख्याति के भाषाटीकाकार पण्डित जयचदजी छावडा के आज से १८० वर्ष पूर्व लिखे गये निम्नाकित कथन से भी होती है –

"दूसरा प्रयोजन यह है कि इस ग्रन्थ की वचनिका पहले भी हुई है, उसके अनुसार बनारसीदास ने कलशो के देशभाषामय पद्यात्मक कवित्त बनाये हैं, जो स्वमत-परमत मे प्रसिद्ध भी हुए हैं। उन कवित्तो मे अर्थ-सामान्य का ही बोध होता है। उनका अर्थ-विशेष समझे बिना किसी को पक्षपात भी उत्पन्न हो सकता है। उन कवित्तो को अन्यमती पढकर अपने मतानुसार अर्थ भी करते हे। अत विशेषार्थ समझे बिना यथार्थ अर्थ का बोध नही हो सकता और भ्रम मिट नही सकता। इसलिए इस वचनिका विषै यत्र-तत्र नय विभाग से अर्थ स्पष्ट खोलेंगे, जिससे भ्रम का नाश होगा।[1]"

'बनारसीविलास' मे पीताम्बर कवि की ज्ञानबावनी सकलित है, जिसमे ५२ इकतीसा सवैया हे। इसके सबध मे कहा जाता है कि आगरे मे कपूरचदजी साहू के मदिर मे एक सभा जुडी हुई थी, जिसमे बनारसीदासजी के अनन्य सहयोगी कँवरपाल आदि भी थे। उसी समय बनारसीदासजी के वचनो की चर्चा चली। उन सब की आज्ञा से पीताम्बर ने यह ज्ञानबावनी तैयार की। इसका पचासवाँ छन्द इसप्रकार है –

"खुसी ह्वै कै मदिर कपूरचद साहू बैठे,
बैठे कौरपाल सभा जुरी मनभावनी।
बानारसीदासजू के वचन की बात चली,
याकी कथा ऐसी ग्याता ग्यान मन लावनी॥
गुनवत पुरुष के गुन कीरतन कीजै,
पीताम्बर प्रीति करि सज्जन सुहावनी।
वही अविकार आयौ ऊँघते बिछौना पायो,
हुकम प्रसाद तै भई है ज्ञानबावनी॥५०॥

इस ज्ञानबावनी मे बनारसीदास के प्रभाव का अनेक प्रकार से निरूपण कया गया है। इसमे एक रूपक के माध्यम से कहा गया है कि मानो बनारसीदासजी के नेतृत्व मे यह अध्यात्मशैली मोक्षमहल की ओर प्रयाण कर रही है। मूल छन्द इसप्रकार है –

"जिनवाणी दुग्ध माहि विजया सुमति डार,
निज स्वाद कदवृन्द चहल-पहल मे।
विवेक विचार उपचार ए कसूभो कीन्हो,
मिथ्यासोफी मिटि गये ज्ञान की गहल मे॥
शीरनी शुकलध्यान अनहद नाद तान,
गान गुणमान करे सुजस सहल मे।
बानारसीदास मध्यनायक सभासमूह,
अध्यातमशैली चली मोक्ष के महल मे॥४५॥

---

१ समयसार, प्रस्तावना

विक्रम सवत् १६८६ मे लिखी गई इस रचना मे स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि वनारसीदास उस समय तक बहुत प्रसिद्धि पा चुके थे । दूर-दूर से लोग उनके सत्समागम का लाभ लेने आते थे, उनके समागम मे थोड़ा-बहुत रहने पर उनके ही बनकर रह जाते थे । पीताम्बर कवि भी कही बाहर से उनके समागम का लाभ लेने ही आये थे और उनके ही होकर रह गये थे । ज्ञानबावनी के ४६वे छन्द मे वे लिखते है—

"शकवधी साचो गिरीमाल जिनदास सुन्यो,
ताके वस मूलदास विरध बढायो है ।
ताके वस क्षिति मे प्रगट भयौ खड्गसेन,
बानारसीदास ताके अवतार आयो है ।।
बीहोलिया गोत गर वतन उद्योत भयो,
आगरे नगर माहि भेटे सुख पायो है ।
बानारसी बानारसी खलक बखान करै,
ताकौ वश नाम ठाम गाम गुण गायो है ।।४६।।

उक्त छन्द मे बनारसीदास के जन्म को 'अवतार' शब्द से अभिहित किया है और कहा है कि आगरे मे उनसे भेट कर मुझे बहुत आनन्द हुआ है । मै अधिक क्या कहूँ, सारी ही दुनिया बनारसीदास का ही बखान करती है ।

मुलतान निवासी ओसवालजातीय वर्द्धमान नवलखा वि० स० १७४६ मे लिखी गई 'वर्द्धमान वचनिका' के अन्त मे लिखते है—

"धरमाचारिज धरमगुरु, श्री बाणारसीदास ।
जासु प्रसादै मै लख्यौ, आतम निजपद वास ।।१।।
परम्परा ए गयान की, कुन्द-कुन्द मुनिराज ।
अमृतचन्द्र राजमल्लजी, सबहूँ के सिरताज ।।३।।
ग्रन्थ दिगम्बर के भले, भीप सेताम्बर चाल ।
अनेकान्त समझै भला, सो ग्याता की चाल ।।४।।
स्याद्वाद जिनके वचन, जो जाने सो जान ।
निश्चै व्यवहारी आतमा, अनेकान्त परमान ।।५।।

इस कृति के बीच मे भी कुछ छन्द इसप्रकार के आते है, जिनमे बनारसीदासजी का बडे ही सन्मान के साथ उल्लेख किया गया है । जैसे—

"जिनधरमी कुल सेहरो, श्रीमाला सिणगार ।
बाणारसी बिहोलिया, भविक जीव उद्धार ।।
बाणारसी प्रसाद तै, पायो ग्यान विग्यान ।
जग सब मिथ्या जान करि, पायो निज स्वस्थान ।।
बाणारसी सुदयाल ले, लाधो भेदविग्यान ।
पर गुण आस्या छाडि के, लीजै सिव को थान ।।"

उक्त छन्दो से पता चलता है कि मुलतान वासी ओसवाल भी बनारसीदास के प्रभाव मे अध्यातमी दिगम्बर हो गये थे, जिनका बाद मे पण्डित टोडरमलजी से तत्त्वचर्चा सम्बन्धी पत्रव्यवहार हुआ था ।

उक्त छन्दो मे बनारसीदास को धर्मगुरु एव धर्माचार्य कहा गया है, उन्हे आचार्य कुन्दकुन्द, अमृतचन्द्र एव पाण्डे राजमलजी की परम्परा का दिगम्बर बताया गया है। उन्हे जिनधर्मियो का मुकुटमणि, श्रीमालो का शृगार, भविकजनो का उद्धारक कहा गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि उनके प्रसाद से, उनके प्रयास मे हमे भेदविज्ञान की प्राप्ति हुई है। बनारसीदास की मृत्यु के ४६ वर्ष बाद आवागमन के साधनो के अभाव वाले उस युग मे मुलतान जैसे सुदूरवर्ती क्षेत्र मे बनारसीदास के इस प्रभाव को देखकर उनकी आध्यात्मिक क्रान्ति के प्रचार-प्रसार का अनुमान सहज लगाया जा सकता है।

आचार्य कुन्दकुन्द का समयसार एक ऐसा क्रान्तिकारी आध्यात्मिक ग्रथ है, जिसने विगत दो हजार वर्षो मे बनारसीदासजी जैसे अनेक लोगो को आध्यात्मिक धारा की ओर मोडा है। बनारसीदासजी के ठीक तीन सौ वर्ष बाद आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी को यह ग्रन्थाधिराज समयसार हाथ लगा और वे भी आन्दोलित हो उठे, उनमे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। वि स १६९२ मे बनारसीदासजी ने सम्यक् मार्ग अपनाया था तो वि स १९९१ मे कानजी स्वामी ने मुँह-पत्ती त्यागकर दिगम्बर धर्म स्वीकार किया। दोनो ही श्रीमाल जाति मे उत्पन्न हुए थे, दोनो ने ही अपने-अपने युग मे समयसार को जन-जन की वस्तु बना दिया, दोनो का ही दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनो सम्प्रदायो द्वारा डटकर विरोध हुआ, पर दोनो के ही बढते क्रान्तिकारी कदमो को कोई नही रोक सका।

आचार्य कुन्दकुन्द के जिन-अध्यात्म मे कुछ ऐसी अद्भुत शक्ति विद्यमान है, जो शताब्दियो से अत्यन्त विभक्त दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदायो को नजदीक लाने का कार्य करता रहा है, एक मञ्च पर लाने का कार्य करता रहा है। जब-जब भी इन दोनो सम्प्रदायो के लोगो ने कुन्दकुन्द के जिन-अध्यात्म को अपनाया, तब-तब वे एक-दूसरे के नजदीक आये है। यद्यपि दोनो ही सम्प्रदायो के पुरातनपथियो ने उनका डटकर विरोध किया, पर अध्यात्म के आधार पर समागत नजदीकी को दूरी मे बदलने मे वे असमर्थ ही रहे। कविवर बनारसीदास एव आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के साथ भी यही इतिहास दुहराया गया है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि विरोधियो द्वारा श्री कानजी स्वामी पर भी आज वे ही आरोप लगाये जा रहे है, जो तीन सौ वर्ष पूर्व बनारसीदास पर लगाये गये थे।

वस्तुत बात तो यह है कि बनारसीदासजी या श्री कानजी स्वामी का विरोध समयसार का विरोध है, आचार्य कुन्दकुन्द का विरोध है, जिन-अध्यात्म का विरोध है, शुद्धाम्नाय का विरोध है। अधिक क्या कहे ? यह सब निज भगवान आत्मा का ही विरोध है, स्वय का ही विरोध है, स्वय को अनत ससारसागर मे डुबा देने का महान अधम कार्य है।

ऐसा आत्मघाती महापाप शत्रु से भी न हो – इस पावन भावना के साथ दोनो ही दिवगत महापुरुषो को श्रद्धाजलि समर्पित करते हुए विराम लेता हूँ। □

**लेखक-परिचय** – उम्र ५१ वर्ष। शिक्षा शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम ए., पीएच डी, विद्यावाचस्पति, वाणीविभूषण, जैनरत्न आदि उपाधियो से विभूषित, लोकप्रिय प्रवचनकार, सफल लेखक, वीतराग-विज्ञान (मासिक) के सम्पादक, श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर की छत के नीचे चलने वाली समस्त गतिविधियो के सूत्रधार। सम्पर्क-सूत्र ए ४, बापूनगर, जयपुर – ३०२०१५

# शुद्धाम्नाय-संरक्षक पं० बनारसीदास की प्रासंगिकता

– डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

प्राय प्रत्येक धार्मिक परम्परा का सैद्धातिक एव दार्शनिक आधार तथा तत्त्वज्ञान तो एकरस, स्थायी एव अपरिवर्तनीय रहता है; किन्तु धर्माचरण का व्यवहार पक्ष, धर्मानुष्ठान, धार्मिक क्रियाकाण्ड, उपासनापद्धति, धार्मिकता का बाह्य एव सामाजिक रूप द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार परिवर्तित होता रहता है, क्योकि अन्य मत-मतान्तरो के अनुकरण एव बाहरी प्रभावो, व्यक्तिगत अज्ञान एव दुर्बलताओ एव धार्मिक क्षेत्र के नेताओ (साधु-सतों और पण्डितो) के पक्ष-व्यामोहजन्य भ्रामक पथ प्रदर्शन एव व्यवस्थाओ के कारण जनसामान्य भ्रमित हो जाते है, व्यवहारधर्म व निश्चयधर्म ये अपने तात्त्विक मूलाधार से विलग हो जाते हैं, उनका धर्मभाव शिथिल होता जाता है और धर्मसस्था मे अनेक एव विविध विकृतियाँ प्रगट होने लगती हैं। जब स्थिति अधिक विषम होने लगती है तो उन्ही साधु-सतो और गृहस्थ विद्वानो मे से जो वस्तुत: धर्म-मर्मज्ञ एव धर्म–प्राण होते है, सच्चे और स्वार्थ से ऊपर उठे होते है, वे सद्धर्म की रक्षार्थ एव प्रभावनार्थ प्रचलित व्यवहार धर्म मे यथावश्यक सशोधन एव सुधार करने के लिए, धर्म सस्था का सस्कार करने के लिए आवाज बुलन्द करते है और अपने आचरण एव विचारो के प्रचार द्वारा धर्मसुधार आन्दोलन छेड देते है। उनका प्रभाव तात्कालिक भी होता है और दूरगामी भी। उनका प्रयत्न मूलाम्नायानुमोदित अध्यात्मवादी तत्त्वज्ञान के साथ व्यवहारधर्म का सामजस्य एव पुन.सयोजन करना होता है। सफलता का अल्पाधिक्य अनेक कारणो पर निर्भर करता है।

वस्तुत. धर्म के विषय मे बहुभाग जनसामान्य सकीर्ण, रूढिवादी एव स्थिति-पालक होता है। वह जैसा सोचता और करता आया है, उसी से चिपटे रहना पसन्द करता है। किसी भी परिवर्तन या नवीनता से बिदकता है; किन्तु उसमे जो प्रबुद्ध, ज्ञानी और विवेकी होते है, अथवा किसी कारण से प्रचलित रीति-रिवाजो एवं मान्यताओ से असन्तुष्ट होते है, वे उक्त सुधार या परिवर्तन को स्वीकार कर लेते हैं।

अब यदि उक्त सुधार आन्दोलन का पुरस्कर्ता कोई साधु वेषधारी स्वयभूत धर्माचार्य या गुरु हुआ तो बहुधा उसके जीवनकाल मे ही, नही तो उसके निधन के उपरात

वह एक नवीन स्वतन्त्र पथ का रूप लेने लगता है और सगठन के उद्देश्य से चलाया गया आन्दोलन एक नये विघटन मे प्रतिफलित हो जाता है। किन्तु यदि वह आन्दोलन व्यापक जन-असतोष का परिणाम होता है और जनता का प्रबुद्ध वर्ग उसे दवा देता है, तो वह अधिक व्यापक तथा अधिक स्थायी होता है। सुधारक वर्ग मूल आम्नाय के सरक्षण तथा जनहित की भावनाओ से जितना अधिक प्रेरित होगा और स्वय मे निःस्वार्थ होगा उतना ही अधिक वह आन्दोलन समाज की धार्मिक, नैतिक एव लौकिक प्रगति मे सहायक और सफलोद्देश्य होगा।

तीर्थंकर युग मे आदिपुरुष भगवान ऋषभदेव के उपरान्त एक-एक करके तेईस तीर्थंकर भगवानो ने अपने-अपने समय मे मूलाम्नाय का पुनरुद्धार किया था। भगवान महावीर के निर्वाण (ईसा पूर्व ५२७) के पश्चात् लगभग डढ हजार वष पर्यन्त ऐसे ज्ञान-ध्यान-तपोरक्त सच्चे निग्रथाचार्यो की परम्परा बनी रही, जो आम्नाय का सरक्षण करते रहे और आगत प्रदूषणो से उसे मुक्त करते रहे। किन्तु तदुपरान्त विविध ऐतिहासिक कारणो से स्थिति बदलती चली गई। साधु नामधारी किन्तु वस्त्रधारी मठाधीश भट्टारको ने पुरातन वनवासी निर्ग्रन्थाचार्यो का स्थान ले लिया, जो मध्यकाल मे अत्यन्त विरल हो गये थे।

उन भट्टारको, यतियो और पूज्यो आदि ने अपने ढग पर धर्म एव परम्परा का कथंचित् सरक्षण तो किया, मदिरो, मूर्तियो एव तीर्थक्षेत्रो की रक्षा तो की, अनेक नवनिर्माण भी किये या कराये, त्यागियो एव गृहस्थो की शिक्षा की भी व्यवस्था की, साहित्य-सृजन भी प्रचुर किया व कराया, सम्बद्ध राजाओ एव श्रीमन्तो को भी तुष्ट किया और सामान्यतया अपने-अपने क्षेत्र की जनता मे व्रत-अनुष्ठान आदि धार्मिक क्रियाकाण्डो की प्रेरणा द्वारा धर्मभाव का भी पोषण किया। इन गृहस्थाचार्यो ने यदा-कदा मत्र-तत्र चमत्कारो आदि का भी आश्रय लिया। तथापि मूलाम्नाय-सम्मत धार्मिक आचार-विचार मे वृद्धिगत विकृतियो एव प्रदूषणो को भी खूब बढावा दिया।

ऐसी स्थिति मे कतिपय धर्ममर्मज्ञ एव शास्त्रज्ञ गृहस्थ विद्वानो ने आम्नाय-सशोधन, साधु सस्था के सस्कार और व्यवहारधर्म के समयानुकूल सुधार के लिए अभियान चलाये। तेरहवी सदी ईसा पूर्व मे पण्डितप्रवर आशाधरजी ने, १५वी सदी मे तारण-स्वामी, लौकाशाह, कडुवाशाह आदि ने, १६वी-१७वी सदी मे प रूपचन्द, पाडे राजमल्ल, महाकवि प. बनारसीदासजी व उनके सहयोगी विद्वानो ने, तदनन्तर भैया भगवतीदास, बुधजनजी, द्यानतरायजी, प दौलतराम कासलीवाल, ब्रह्म रायमल्ल, पण्डितप्रवर टोडरमल जी, गुमानीराम, जयचन्द छाबडा, दीवान अमरचन्द, कविवर दौलतराम, प सदासुखदास जी आदि, आगरा, दिल्ली, जयपुर आदि प्रमुख जैन केन्द्रो के पचासो धर्मप्राण पडितो एव कवियो ने प्राय चारो अनुयोगो के पुरातन आर्ष ग्रन्थो के भाषानुवाद व भाषावचनिकाएँ आदि लिखकर धर्मसस्था का सुधार किया और शुद्धाम्नाय का पुनरुद्धार किया। परिणामस्वरूप कम से कम सम्पूर्ण उत्तर भारत से तो शिथिलाचारी भट्टारक-पन्थ प्राय तिरोहित ही हो गया।

१६वी शदी ई० के उत्तरार्द्ध मे, १८५७ ई० के स्वातन्त्र्य समर के पश्चात् अंग्रेजी शासन द्वारा स्थापित प्रशासन व्यवस्था, सुरक्षा एव शान्तिपूर्ण वातावरण मे आधुनिक युग का और उसके साथ ही साथ देश मे नवजागरण का सुप्रभात हुआ। यातायात के बढते हुए साधनो, छापे के प्रचार, पत्रकारिता और शिक्षा के प्रसार ने सुधार आन्दोलन को बल दिया। जैन समाज मे भी अनेक पश्चिमी शिक्षाप्राप्त एव पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित समाजसेवियो ने तथा शास्त्रीय पण्डितो ने भी सामाजिक सगठन, समाजसुधार, शिक्षाप्रचार, कुरीतियो के निवारण आदि के लिए आन्दोलन चलाये। कई सामाजिक सगठन सभाएँ, सस्थाएँ आदि उदय मे आई। समाज की प्रगति को प्रभूत बल और वेग भी मिला। किन्तु १६४७ ई० मे स्वतत्रता-प्राप्ति के उपरान्त समाज की स्थिति पुन शिथिलता, प्रदूषणो तथा अवाछित प्रवृत्तियो की ओर बढती प्रतीत हो रही है।

आज सस्थावाद का युग है। धार्मिक और सामाजिक सस्थाओ मे भी राजनीति, नेतागिरी, सत्तासघर्ष एव अर्थतन्त्र का बोलबाला है। ईमानदार नेताओ, निस्वार्थ समाज-सेवियो, समर्पित कार्यकर्ताओ और स्वान्त सुखाय धर्मबुद्धि या जनहित की दृष्टि से प्रवृत्त सतोषी विद्वानो एव साहित्यकारो का अभाव सा हो गया है। प्राय प्रत्येक क्षेत्र मे पैसा और पैसे से प्राप्त विषय-सामग्री एव सत्तासुख ही मानवजीवन के लक्ष्य रह गये है।

ऐसी स्थिति मे पूर्वकाल के उन स्वनामधन्य सुधारको एव आम्नाय-सरक्षको की याद आना स्वाभाविक है। परमपावन ऋषभादि महावीर पर्यन्त तीर्थंकर महा-प्रभुओ का, उनके सच्चे अनुयायी पुरातन आचार्यपुगवो का तथा श्रावकोत्तम नररत्नो एव महिलारत्नो का और उत्तरकाल के तत्त्ववेत्ता व समाजसुधारको का स्मरण बडा प्रेरणा-दायक एव वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे उत्तम मार्गदर्शक होगा।

महाकवि पण्डित बनारसीदासजी (१५८६–१६४३ ई०) की चार सौ वी जन्म जयन्ति के अवसर पर उस शास्त्रमर्मज्ञ, धर्मप्राण, सुधारकशिरोमणि का स्मरण वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे प्रासगिक ही है। उनकी अनेक एव विविध उपलब्धियाँ थी। उनके जीवन के अन्तिम तीस वर्ष के लगभग मुगल सम्राटो की राजधानी और उत्तर भारत के प्रधान जनकेन्द्र आगरा नगर मे ही व्यतीत हुए। वहाँ उनके सहयोगी एवं प्रशसक विद्वानो की एक बडी गोष्ठी बन गई थी। और उनकी इस शैली का प्रभाव दिल्ली, जयपुर आदि तक ही नही, पश्चिम मे लाहौर तथा मुलतान तक प्रसरित था। उनके विचारो का प्रभाव उसी युग मे नही, आगे की शताब्दियो मे भी लक्षित रहा। उनकी विचार क्रान्ति उस आचार क्रान्ति की जन्मदायिनी थी, जिसने शुद्धाम्नाय का पुनरुद्धार एव सरक्षण और धर्म-सस्था के सुधार मे जो योगदान दिया उसका, उपरोक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य मे, समुचित मूल्याकन किया जाना अपेक्षित है।

☐

लेखक-परिचय —उम्र ७५ वर्ष। एम ए, एल एल बी, पी एच डी। इतिहासरत्न, इतिहास-मनीषी, विद्यावारिधि मानद उपाधियाँ। छोटी बडी ५० पुस्तकें एव सहस्राधिक लेख प्रकाशित। अनेक पत्र-पत्रिकाओ के सम्पादक। सम्पर्क ज्योतिनिकुज, चार बाग, लखनऊ 226011 (उ प्र)

# बनारसीदास और तुलसीदास

— डॉ० कन्छेदीलाल जैन

कवि बनारसीदास और तुलसीदास समकालीन थे। दोनो के जीवन की घटनाओ मे कुछ बातो मे समानता दिखाई देती है।

(क) दोनो अपने माता-पिता के इकलौते बेटे —बनारसीदास तो अपने माता-पिता के इकलौते बेटे थे ही, गोस्वामी तुलसीदास के भी अन्य भाई-बहिनो के होने का उल्लेख नही मिलता है। दोनो ने न केवल कुल को, बल्कि सम्पूर्ण साहित्य-जगत को गौरवान्वित करके संस्कृत की इस सूक्ति को सार्थक किया है —

"एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम्।
शतेनापि कुपुत्रेण भार वहति गर्दभी॥"

एक सुपुत्र के कारण शेरनी निर्भय होकर शयन करती है। तथा सैकडो पुत्रो के होने पर भी (सुपुत्र के अभाव मे) गधी भार ही ढोती है।

(ख) अभाव-ग्रस्तता :—कवि बनारसीदास के जीवन मे ऐसे प्रसंग आये कि उन्हे धन के अभाव का सामना करना पडा। उनकी जीवनी लिखने वालो ने लिखा है कि बनारसीदास को चाट भी उधार लेकर खाना पडती थी और कभी-कभी उस उधारी को चुकाने के लिए भी उनके पास पैसे नही होते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी भी धनाभाव से ग्रस्त थे, उनके द्वारा रचित ग्रन्थो मे निम्नांकित उल्लेखो से धनाभाव की पुष्टि होती है।

"घर-घर माँगे टूक" (दोहावली)
"बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन" (कवितावली)
"छाछी को ललात" (कवितावली)
"चाटत रह्यो श्वान पातर ज्यो, कबहुँ न पेट भर्यो।" (कवितावली)

इसप्रकार दोनो ने अभाव के दिन देखे, परन्तु दोनो जन-मानस के हंस बन गए। इन दोनो के जीवन से यह शिक्षा मिलती है कि धन तथा परिवार के अभाव मे भी व्यक्ति अपने पुरुषार्थ एवं आत्मगुणो के कारण उत्थान कर सकता है।

(ग) **चोरो को सुमार्ग पर लगाया** .—मैंने सुना है कि बनारसीदास ने आगरे में व्यापार किया था, उन्होने कई वस्तुओ का व्यापार किया था और सफलता न मिलने पर छोडा भी था। एक बार उन्होने काली मिर्च का भी व्यापार किया। रात्रि को चोर आये, वे उनकी दूकान मे घुसकर काली मिर्च के बोरे उठाकर ले जाने लगे। बनारसीदास जाग चुके थे; परन्तु उन्होने प्रतिरोध नही किया। रास्ते मे चोर पकड़ लिये गये, जब चोर इनके यहाँ लाये गये तो बनारसीदासजी ने चोरो को मुक्त करा दिया था। चोर इनके इस व्यवहार से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होने चोरी का कुकर्म त्याग दिया था।

तुलसीदासजी अभावग्रस्त थे। चोरो ने उन्हे अपने साथ ले लिया और उनसे कहा कि तुम हमारे साथ चोरी करने को तैयार नही हो तो तुम बाहर रहना, चोरी हम लोग किया करेंगे। यदि कोई हम लोगो को चोरी करते देख रहा हो तो तुम घटा बजा देना, जिससे हम लोग चोरी का काम छोडकर भाग जावेगे तथा अपना बचाव कर लेगे। चोर चोरी करने किसी मकान मे घुसे ही थे कि तुलसीदास ने घंटा वजा दिया, चोर उस मकान से शीघ्र भयभीत होकर भागे। जब वे गाँव के बाहर पहुँच गये तो तुलसीदास से पूछा कि हम लोगो को चोरी करते हुए कौन देख रहा था, जिसके कारण तुमने घटा बजाकर हमे सावधान किया था? तुलसीदासजी ने उत्तर दिया था—भगवान सर्वज्ञ होते है, वे सब देखते है; इसलिए मैंने घटा बजा दिया था। तुलसीदासजो के इस उत्तर से प्रभावित होकर उन्होने भी चोरी करने का कार्य त्याग दिया था।

(घ) **दोनो पहले रसिक शृ गारी और बाद मे अध्यात्मवादी**—दोनो ही अपने जीवन के पूर्वार्द्ध मे रसिक एव शृगारी थे। बनारसीदासजी ने एक नवरस नामक शृगार-प्रधान रचना लगभग एक हजार दोहो-चौपाइयो मे बनाई थी। जब कवि अध्यात्म-वादी बन गये थे, तव उन्होने शृगार-परक यह रचना गोमती नदी मे प्रवाहित करके समाप्त कर दी थी। उन्होने इस रचना का उल्लेख अपनी आत्मकथा मे इसप्रकार किया है :—

> पोथी एक बनाई नई। मित हजार दोहा चौपई ॥१७८॥
> तामें नवरस-रचना लिखी। पै बिसेस बरनन आसिखी ॥१७९॥
> कै पढना कै आसिकी, मगन दुहू रस माहि।
> खान-पान की सुध नही, रोजगार किछु नाहि ॥१८०॥

तुलसीदासजी भी विवाह के उपरान्त अत्यन्त आशिक थे, यहाँ तक कि जब उनकी पत्नी रत्नावली अपने पीहर गई थी, तव ये उससे मिलने वर्षा होते रहने पर भी रात मे उसके पीहर गए और अपनी पत्नी के पास पहुँचे। रत्नावली ने तुलसीदास के इसप्रकार आकर मिलने पर कहा कि जैसा तुम्हारा प्रेम मेरे हाड, माँस, रक्त के शरीर मे है, इससे भी बहुत कम प्रेम यदि भगवान राम के प्रति होता तो तुम्हारा जीवन सफल हो जाता। पत्नी की इस शिक्षा से तुलसीदास को बोध प्राप्त हुआ, वे राम के

भक्त वन गये एव अध्यात्म साहित्य के महान रचनाकार वन गये। उनके साहित्य का आदर झोपडी से लेकर महलो तक एव साधारण शिक्षित से लेकर ऊँचे विद्वानो तक होता है।

(ड) **परस्पर मे आदरभाव**—कविवर वनारसीदास को गोस्वामी वनारसीदास ने रामायण की एक प्रति भेट की थी। स्याद्वादी एव समन्वयवादी विद्वान दूसरो को शिक्षाप्रद रचना का सम्मान करते है। वनारसीदास ने रामायण पढकर उसकी प्रशसा मे कुछ छन्द लिखकर तुलसीदास को भेजे थे —

विराजै रामायण घट माहि।
मरमी होय मरम सो जानै, मूरख मानै नाहि ।।१।।

आतमराम ज्ञानगुन लछमन, सीता सुमति समेत।
शुभोपयोग वानरदल मडित, वर विवेक रणखेत ।।२।।

इह विध सकल साधु घट अन्तर, होय सहज सग्राम।
यह विवहारदृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम ।।८।।

स्व० महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने हिन्दी काव्यधारा मे लिखा है कि गोस्वामी तुलसीदास का भी विद्वान बनारसीदास के प्रति वात्सल्य एव आदरभाव था। तुलसीदास भी समन्वयवादी थे, वे अच्छी शिक्षा के प्रशसक थे। वनारसीदास जैनधर्म मानते थे, इसलिए तुलसीदासजी ने जैनधर्म के तेईसवे तीर्थकर पार्श्वनाथ को स्तुतिपरक छन्द वनाकर वनारसीदासजो को भेट किये थे। तुलसीदासजी वनारस मे रहते थे। बनारस भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि है एव जैनियो का भी तीर्थक्षेत्र है, अत तुलसीदासजी पार्श्वनाथ के जीवनचरित्र से परिचित रहे होगे। जो छन्द तुलसीदासजी ने भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति मे लिखे थे, उनमे एक छन्द निम्नप्रकार था —

जिहि नाथ पारस जुगल पकज चित्त चरनन जास।
रिद्धि सिद्धि कमला अजर राजति भजत तुलसीदास ।।

इसप्रकार दोनो अध्यात्म एव धार्मिक कवियो के जीवन की घटनाओ मे अनेक समानताएँ हैं। दोनो का जीवन एव साहित्य प्रेरणाप्रद है। पतित एव अभावग्रस्त व्यक्ति भी परिवर्तित होकर उन्नत हो सकता है। उनके जीवन एव साहित्य से यही प्रेरणा प्राप्त होती है।

□

लेखक-परिचय —उम्र ५६ वर्ष। योग्यता एम ए (सस्कृत एव हिन्दी)। साहित्याचार्य, साहित्यरत्न, शास्त्री (स्वर्ण-पदक-प्राप्त), पीएच डी। भा० दि० जैन सघ के सहायक मत्री एव 'जैन सदेश' के सहायक सम्पादक। सम्प्रति शासकीय महाविद्यालय, शहडोल मे सहायक प्राध्यापक। सम्पर्क-सूत्र घरौला मोहल्ला, शहडोल (म प्र)

# दृष्टान्त बनारसीदासस्य

– डॉ० महेन्द्रसागर प्रचण्डिया

वैदिक और बौद्ध वाङ्मय की नाई जैन वाङ्मय अर्वाचीन नही है। वेद और पिटक की भाँति आगम किसी एक व्यक्ति की रचना भी नही है। आगम-अर्णव अथाह है और भव भ्रमण से लेकर निष्क्रमण तक की विशद व्याख्या यहाँ चर्चित है। मनुष्य का पुरुपार्थ अर्थ से लेकर मोक्ष तक सार्थ सिद्ध हुआ है। ज्ञान-गौतमी मे अवगाहन करता हुआ साधक सिद्धि को प्राप्त करता है। इसी ज्ञान-विज्ञान की त्रिपथगा का प्रवाह हिन्दी भाषा मे भी निबद्ध किया गया है। महाकवि प० बनारसीदास हिन्दी के रससिद्ध समर्थ जैन कवि है, जिनकी रचनाओ मे धर्म और साहित्य का शोभा-वैविध्य विद्यमान है। साहित्य शास्त्र के विविध अगो पर नए ढग से नया निचोड देने मे बनारसीदास का सारस्वतश्रम सर्वथा श्लाघनीय है। कथ्य और कथानक, अलकार, छन्द, काव्यरूप, शब्द-शक्तियाँ, बिम्ब विधान, प्रतीक योजना आदि शीर्षको पर बनारसीदास के प्रयोग उनकी प्रवीणता को प्रमाणित करते है।

बनारसीदास का अस्तित्व-काल सोलहवी शती का अत है। वे सत्रहवी शती के महाकवि है। तत्कालीन भारत के सम्राट शाहजहाँ के वे समकालीन थे। आपकी कृतियो मे समयसार नाटक बहुत प्रसिद्ध है। यह एक रूपक काव्य है। इसे नाट्य काव्य भी कहा जा सकता है। यह वस्तुत एक विशुद्ध दार्शनिक रचना है, किन्तु नीरस और बोझिल विषय को कवि ने अत्यन्त सरस एव सरल बनाया है। 'बनारसी विलास' आपकी विभिन्न काव्यरूपो मे निबध रचनाओ का एक विरल सग्रह है। इसमे नाना राग तथा रागिनियो का सपक्ष प्रयोग उल्लिखित है। कविवर का 'अर्द्ध कथानक' नामक काव्य आत्मपरक शैली मे रचा गया है, जो हिन्दी ही नही, अपितु अनेक भारतीय भाषाओ मे आत्मचरित काव्यात्मक अभिव्यजना मे पहल करता है। इस ग्रथ मे कवि ने अपने जीवन को आधार बनाया है। इसी ग्रथ मे उल्लिखित है कि हिन्दी के समर्थ भक्त कवि तुलसीदास विवेच्य कवि के समकालीन ही नही, अपितु संगी-साथी और अभिन्न मित्र भी थे।

काव्य के साथ-साथ आपने गद्य मे भी प्रचुर परिणाम मे लिखा है। हिन्दी गद्य विकास मे अब बनारसीदास की उपेक्षा नही की जा सकती। इसी सत्य के आधार पर हिन्दी के मूर्धन्य समीक्षक डॉक्टर नगेन्द्र ने भारतीय साहित्यकोष नामक विशाल ग्रथ मे

स्पष्ट किया है कि मध्ययुगीन तथा संस्कृति के अध्ययन के लिए कविवर . .
साहित्य मूल्यवान है।

यहाँ उनके काव्य मे प्रयुक्त समस्त अलकारो की मौलिकता और
पर विचार करने की अपेक्षा उनके द्वारा प्रयुक्त दृष्टात-अलकार पर सक्षेप मे
हमे मुख्यत ईप्सित है।

काव्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है – वाक्यं रसात्मकं .
रसीला वाक्य ही काव्य है। काव्य को रूप प्रदान करनेवाले उपकरणो मे
शब्द जब अर्थसगत हो जाता है, तब वह सार्थ रूप ग्रहण करता है। काव्य मे
अर्थ की रमणीयता उसमे सौन्दर्य की सृष्टि करती है। रमणीय तत्त्वो मे अलकार
का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

अलम् और कार नामक दो शब्दो के योग से अलकार शब्द का गठन हु
अलम् शब्द का अर्थ है भूषण। जो अलकृत या भूषित करे, वस्तुत. वह अलकार
अलकार काव्य का शोभाकारक धर्म है। इस धर्म का पक्ष काव्य को .
अथवा सुसज्जित करना है। इसी कारण इसका प्राचीनतम अभिधान-अलकार .
रसात्मकता का अभिवर्द्धन करते है। विचार करे अलकार वाणी के विभूषण है।
अभिव्यक्ति मे स्पष्टता, प्रभविष्णुता तथा प्रेषणीयता जैसे उदात्तगुणो का
उत्पन्न होता है। काव्य मे रमणीयता और चमत्कार उत्पन्न करने के लिए
विधान की भूमिका सर्वथा आवश्यक है।

काव्य मे अलकार-प्रयोग साहित्याचार्यों द्वारा प्रायः दो प्रकार से किया
प्रथम वर्ग काव्यगत सम्पूर्ण सौन्दर्य को अलकार मानता है और दूसरा वर्ग काव्य के
भूत रस, गुण आदि के प्रभावक एव उत्कषक धर्म को अलकार स्वीकारता है। कु
हो, काव्य मे अलकारो से अर्थ मे प्रेषणीयता, प्रभविष्णुता और स्पष्टता का
होता है, परन्तु काव्याभिव्यक्ति मे अलकारो का औचित्य वही तक है, जहाँ तक
प्रयोग साधन रूप मे हो, साध्य बनने तक नही। अर्थात् अलकार काव्य के लिए हो,
अलकारो के लिए न बन जाए।

शब्द और अर्थ सौन्दर्य के आधार पर अलकार सामान्यतः दो प्रकार मे बँटे
है—शब्दालकार और अर्थालकार। जहाँ शब्द और अर्थ दोनो से आश्रित रहकर
दोनो को ही चमत्कृत करते है, ऐसे अलकार उभयालकार कहलाते है।

अर्थालकार के सादृश्यमूलक अलकार-परिवार मे दृष्टात अलंकार का
महत्त्वपूर्ण है। इसका मूल अर्थ है – प्रामाणिक निश्चय को देखना। काव्य प्रकाश
आचार्य मम्मट ने स्पष्ट लिखा है कि इस अलकार मे उपमेय तथा उपमान दोनो
मे इन सबका अर्थात उपमान, उपमेय तथा साधारण धर्म का बिम्ब प्रतिबिम्ब
भलकता है। इस आधार पर आचार्य विश्वनाथ ने स्वरचित साहित्यदर्पण मे
... वस्तुओं के समान धर्म का प्रतिबिम्ब मात्र कथन मान लिया है।

दृष्टान्त अलकार से मिलते जुलते अलकार है प्रतिवस्तूपमा तथा अर्थान्तरन्यास। दृष्टान्त तथा प्रतिवस्तूपमा का अन्तर स्पष्ट करते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० शिवप्रसादसिह ने स्पष्ट किया है कि दृष्टान्त मे उपमेय उपमान वाक्य मे अलग-अलग समान धर्म का कथन होता है जबकि प्रतिवस्तूपमा मे एक ही समान धर्म शब्दभेद से कहा जाता है। दृष्टान्त का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव प्रतिवस्तूपमा मे नही रहता। अर्थान्तरन्यास मे सामान्य का विशेष से या विशेष का सामान्य से समर्थन होता है, जबकि दृष्टान्त दोनो ही सामान्य या दोनो ही विशेष होते है। साधर्म्य और वैधर्म्य दृष्टि से दृष्टान्त अलकार को भी दो भागो मे बाँटा जा सकता है।

भावानुभूति जब सिद्धान्त का रूप ग्रहण करती है तभी उसमे काठिन्य उत्पन्न होता है। इस अर्थगत कठिनता अथवा जटिलता को सुगम और सरल बनाने मे दृष्टान्त की भूमिका उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त अभिव्यक्ति मे दृष्टान्त प्रामाणिकता प्रदान करते है। काव्य मे सदाचार और शिक्षा की बाते जब व्यक्त होती हैं तब वह नीति काव्य कहलाता है। नीति काव्य जब बहिरग से हटकर अन्तरग मे सिमिट जाता है तभी वह उपदेश का रूप ग्रहण करता है। दृष्टान्त उपदेश से अधिक कीमती होता है। कविर्मनीषी पडित बनारसीदास का काव्य आध्यात्मिक है। उसमे लौकिक तथ्यो से होकर अलौकिक सत्यो का सार अभिव्यजित है। इनके काव्य का आरम्भ लौकिक रस से हुआ है उसमे लौकिक सग है और प्रसग है किन्तु उससे ऊपर उठकर शनैः शनै. वह विस्तार को प्राप्त करता है। ऐन्द्रिक रति-रस आत्मिक स्वभावजन्य शोभा मे परिणत होता जाता है और ऐसी स्थिति मे सारे वैभाविक सग-प्रसग छूट जाते है।

गुणो के समूह को द्रव्य कहा गया है। जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, काल और आकाश ये छह द्रव्य कहे गये है और इन्ही षष्ठ के समीकरण से ससार की रचना हुई है। इसमे सभी सहकारी अथवा निमित्तरूप सक्रिय है परन्तु उपादानरूप तो जीवद्रव्य ही है। जीव द्रव्य मे अनन्त चतुष्ट्य समाविष्ट है। कर्मानुसार निमित्तावरण से प्राय. वे सभी दबे पडे है। कर्मजाल सुलझने तथा समाप्त होने पर वे सभी प्राय. जाग जाते है। इसी जागरण के आधार पर जीवात्मा की तीन अवस्थाए कही गई है – बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। शरीर अर्थात् परपदार्थ और आत्मतत्व को समान रूप से किसी कर्म का कर्ता भोक्ता स्वीकार करने वाली आत्मा प्राय बहिरात्मा कहलाती है। जब श्रद्धान मिथ्या है, तब बहिरात्मा अवस्था है। मिथ्या श्रद्धान का मूलाधार है राग-द्वेष। यही ससार का कारण है। सम्यक्श्रद्धान मे आत्मा और पर पदार्थ प्राय पृथक-पृथक रहते है – भेदविज्ञान द्वारा तत्त्वदर्शी सम्यक श्रद्धान पर बल देता है। यही जीव की अन्तरात्मा रूपी अवस्था कहलाती है। जब कर्म विपाक से सर्वथा विमुक्त होना होता है तभी आत्मा को परमात्मा अवस्था जाग्रत हो जाती है। सयम और तपश्चरण मे पर पदार्थों के प्रति लगाव और प्रभाव प्राय पराभूत कर दिया जाता है और स्वानुभूति प्रारम्भ हो जाती है।

पडितप्रवर बनारसीदास ने इतनी-सी सार बात को लोक जीवन मे मजे-मजाए स्वानुभवो, भोगे हुए सत्यो का इस प्रकार समाहार किया है कि वे सभी दृष्टि धर्म बन गए है। अत शब्द वस्तुत. पारभाषिक शब्द है इसका अर्थ है धर्म। दृष्टान्त मे देखा हुआ धर्म मुख्यरूप से अभिव्यक्त होता है। हिन्दी के समर्थ कवि गोस्वामी तुलसीदास यदि रूपको के द्वारा अपनी काव्याभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाते है तो बनारसीदास दृष्टातो के द्वारा उस अभिव्यजना मे सजीवता का सचार करते है। सारा का सारा कथ्य जब घटित सत्य धर्म से समझा समझाया जाता है तो उसमे व्यजित आशय और अभिप्राय प्राय: मुखर हो उठता है। इस प्रकार दार्शनिक गुत्थियो को सरल और सुगम सस्करण के रूप मे प्रस्तुत करने मे इन विरल दृष्टातो की भूमिका वस्तुत उल्लेखनीय है। चाहे जीव-अजीव का प्रसग हो, चाहे कर्म-विपाक का सन्दर्भ उनकी सूक्ष्म विवेचना मे सरसता का सचार करने का कार्य लोकदृष्ट धर्म अर्थात् दृष्टान्त ही कर सकते है। ग्रथ की वाणी जब कठाग्र हो जाती है और जीवत दृष्टान्त जब उसके गले उतर जाते है तभी वह आशय - अभिप्राय को आत्मसात कर लेता है।

कविवर ने जीवन के विविध प्रसग और सदर्भ देखे और समझे है। इसलिए उसे प्रत्येक प्रयोजन के लिए नए-नए उदाहरणो के चयन करने मे सफलता प्राप्त हुई है। यहाँ कतिपय दृष्टान्तो की चर्चा करने से हम अपने कथन को प्रमाणित करने का प्रयास करेंगे।

जीव की दशा पर अग्नि के दृष्टान्त से जीव नव तत्त्वो मे शुद्ध, अशुद्ध, मिश्र आदि अनेक रूप हो रहा है, परन्तु जब उसकी चैतन्य शक्ति पर विचार किया जाता है, तब वह शुद्धनय से अरूपी और अभेदरूप ग्रहण होता है। यथा—

> जैसै तृण काठ बास आरने इत्यादि और,
> ईधन अनेक विधि पावक मैं दहिए।।
> आकृति विलोकित कहावै आग नानारूप,
> दीसै एक दाहक सुभाव जब गहिए।।
> तैसै नव तत्त्व मै भयौ है बहु भेषी जीव,
> सुद्धरूप मिश्रित असुद्ध रूप कहिए।।
> जाही छिन चेतना सकति कौ विचार कीजे,
> ताही छिन अलख अभेदरूप लहिए।।[1]

भेदविज्ञान की प्राप्ति मे धोबी के वस्त्र का दृष्टान्त स्पष्ट करता है कि यह कर्म-सयोगी जीव परिग्रह के ममत्व से विभाव मे रहता है, अर्थात् शरीर आदि को अपना मानता है, परन्तु भेदविज्ञान होने पर जब निज-पर का विवेक हो जाता है तो रागादि भावो से भिन्न अपने निज स्वभाव को ग्रहण करता है। दृष्टान्त है जैसे कोई धोबी के

1 समयसार नाटक, जीव द्वार, छन्द ८

घर जावे और दूसरे का कपडा पहिन कर अपना मानने लगे, परन्तु उस वस्त्र का मालिक देखकर कहे कि यह तो मेरा कपडा है, तो वह मनुष्य अपने वस्त्र का चिह्न देखकर त्याग वुद्धि करता है। इसी प्रकार भेदविज्ञान से निज स्वभाव को ग्रहण करता है। यथा—

जैसै कोऊ जन गयौ धोबी कै सदन तिन,
पहिर्‌यौ परायौ वस्त्र मेरौ मानि रह्यौ है ॥
धनी देखि कह्यौ भैया यह तौ हमारौ वस्त्र,
चीन्है पहिचानत ही त्याग भाव लह्यौ है ॥
तैसैहो अनादि पुद्‌गल सौ सजोगी जीव,
सग के ममत्व सौ विभाव तामैं बह्यौ है ॥
भेदविज्ञान भयौ जब आपौ पर जान्यौ तब,
न्यारौ परभावसौ स्वभाव निज गह्यौ है ॥[1]

देह और जीव की भिन्नता पर तलवार का दृष्टान्त है। सोने की म्यान मे रखी हुई लोहे की तलवार सोने की कहलाती है और लोहे की म्यान मे सोने की तलवार भी लोहे की कही जाती है। इसी प्रकार शरीर और आत्मा एकक्षेत्रावगाह स्थित है। सो ससारी जीव भेदविज्ञान के अभाव से शरीर ही को आत्मा समझ जाते है। परन्तु जब भेदविज्ञान मे उनकी पहिचान की जाती है, तब चित्‌चमत्कार आत्मा जुदा भासने लगता है और शरीर मे आत्मवुद्धि हट जाती है। दृष्टान्त से यह आध्यात्मिक बात कितनी सरल बना दी गई है। यही अभिव्यक्तिजन्य विशेषता और उपयोगिता है। बनारसीदास ने लौकिक दृष्टान्तो द्वारा आध्यात्मिक विचार और सार को इसप्रकार व्यक्त किया है कि श्रोता अथवा पाठक को उससे तादात्म्य होने मे कोई बाधा रह नही जाती। यही कवि का कौशल है।

खाडो कहिये कनक कौ, कनक-म्यान-सयोग।
न्यारौ निरखत म्यान सौ, लोह कहै सब लोग ॥[2]

अनुभव के अभाव मे ससार और सद्‌भाव मे मोक्ष होता है। जिसप्रकार जल का एक वर्ण है, परन्तु गेरु, राख, रग आदि अनेक वस्तुओ का सयोग होने पर अनेक रूप हो जाने से पहचानने मे नही आता, फिर सयोग दूर होने पर अपने स्वभाव मे बहने लगता है, उसीप्रकार यह चैतन्य-पदार्थ विभाव-अवस्था मे गति, योनि, कुलरूप ससार मे चक्कर लगाया करता है, पीछे अवसर मिलने पर निज स्वभाव को पाकर अनुभव के मार्ग मे लगकर कर्म-बन्धन को नष्ट करता है और मुक्ति को प्राप्त करता है। यथा—

जैसे एक जल नानारूप-दरबानुजोग,
भयौ वहु भाँति पहिचान्यौ न परतु है।
फिरि काल पाइ दरबानुजोग दूरि होत,
अपनै सहज नीचे मारग ढरतु है ॥

---

1 समयसार नाटक, जीव द्वार, छन्द, ३२

2 वही, अजीव द्वार, छन्द ७

तैसै यह चेतन पदारथ विभाव तासौ,
गति जौनि भेस भव-भावरि भरतु है।
सम्यक सुभाइ पाइ अनुभौके पथ धाइ,
बध की जुगति भानि मुकति करतु है ।।[1]

भेदविज्ञान- सम्यग्दर्शन का कारण है। ज्ञानी लोग इसके द्वारा ही आत्म-सम्पदा ग्रहण करते है और राग-द्वेष तथा पुद्गलादि पर पदार्थों को त्याग देते है। इसी बात को रजशोधक का दृष्टान्त देकर कवि ने अभिव्यक्ति को सरलतम बना दिया है। जिसप्रकार रजशोधक धूल शोध कर सोना-चाँदी ग्रहण कर लेता है, अग्नि मैल को जलाकर सोना निकालती है, तथा जिस तरह कीचड-सयुक्त मलिन जल मे निर्मली डालने से कीचड नीचे बैठ जाता है, पानी निर्मल हो जाता है। और दही को मथने वाला जिसतरह दही का मथन कर नवनीत को निकाल लेता है, तथा हस दूध पानकर पानी को अलग कर देता है। उसीप्रकार ज्ञानी आत्मतत्त्व को ग्रहण कर शेष का त्याग कर देता है। यथा—

जैसे रजसोधा रज सोधिकै दरब काढै,
पावक कनक काढि दाहत उपलकौ।
पक के गरभ मैं ज्यौ डारिये कतल फल,
नीर करै उज्जल नितारि डारै मल कौ ।।
दधिकौ मथैया मथि काढै जैसे माखनकौ,
राजहस जैसे दूध पीवै त्यागि जलकौ।
तैसै ज्ञानवत भेदग्यान की सकति साधि,
वेदै निज सपति उछेदै पर-दलकौ ।।[2]

ज्ञानी के अबध और अज्ञानी के बध पर रेशम के कीट और गोरखाधधा नामक कीटो का दृष्टान्त देकर कवि ने स्पष्ट किया है। जिसप्रकार रेशम का कीट अपने शरीर पर आप ही जाल पूरता है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव कर्मबधन को प्राप्त होते है। और जिसप्रकार गोरख धधा नाम का कीट जाल से निकलता है उसीप्रकार सम्यक्दृष्टि जीव कर्मबधन से मुक्त हो जाता है। यथा—

बँधै करमसो मूढ ज्यौ, पाट-कीट तन पेम।
खुलै करमसौ समकिती, गौरखधधा जेम ।।[3]

इसी प्रकार अज्ञानी जीव की मूढता पर मृगजल और अधे का दृष्टात लोकज्ञान उजागर करता है।

जिसप्रकार ग्रीष्मकाल मे सूर्य का तीव्र आतप होने पर प्यासा मृग उन्मत्त होकर मिथ्याजल की ओर व्यर्थ ही दौडता है, उसीप्रकार ससारी जीव माया ही मे कल्याण सोचकर मिथ्या कल्पना करके संसार मे नाचते है। जिसप्रकार अध मनुष्य आगे रस्सी बटता जावे और पीछे से वछडा खाता जावे – तो उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है

---

1 समयसार नाटक, कर्त्ता-कर्म-क्रिया द्वार, छन्द ३१

2 वही, सवर द्वार, छन्द १०

3 वही, निर्जरा द्वार, छन्द ४४

उसी प्रकार मूर्ख जीव शुभ-अशुभ क्रिया करता है वा शुभ क्रिया के पक्ष मे हर्ष और अशुभ क्रिया के पक्ष मे विषाद करके क्रिया का फल खो देता है । यथा—

जैसे मृग मत्त वृषादित्य की तपत माहि,
तृषावत मृषा–जल कारन अटतु है ।।
तैसे भववासी मायाही सौ हित मानि मानि,
ठानि ठानि भ्रम श्रम नाटक नटतु है ।।
आगे कौ धुकत धाइ पीछे बछरा चवाइ,
जैसै नैन हीन नर जेवरी बटतु है ।।
तैसे मूढ चेतन सुकृत करतूति करै,
रोवत हसत पक्ष खोवत खटतु है ।।[1]

इसी प्रकार आत्म-अनुभव का दृष्टान्त कवि की सूझ-बूझ का परिचायक है ।

जिसप्रकार नट अनेक स्वाग बनाता है, और उन स्वागों के तमाशे देखकर लोग कौतूहल समझते है, पर वह नट अपने असली रूप से कृत्रिम किए हुए वेष को भिन्न जानता है, उसीप्रकार यह नटरूप चेतन राजा परद्रव्य के निमित्त से अनेक विभाव पर्यायो को प्राप्त होता है, परन्तु जब अतरगदृष्टि खोल कर अपने सत्य रूप को देखता है, तब अन्य अवस्थाओ को अपनी नही मानता । यथा—

ज्यौ नट एक धरै बहु भेख, कला प्रगटै वहु कौतुक देखै ।
आपु लखै अपनी करतूति, वहै नट भिन्न विलोकत भेख ।।
त्यौ घट मे नट चेतन राव, विभाउ दसा धरि रूप विसेखै ।
खोलि सुदृष्टि लखै अपनौ पद, दु द विचारि दसा नहि लेखै ।।[2]

जरा विचार करे हिन्दी काव्यधारा अपभ्र श से निस्रत हुई है, अत अपभ्र श काव्य मे प्रयुक्त सभी साहित्य रूप, साहित्यक अग और शैली तत्त्व हिन्दी मे अवतरित हुए । छन्द और अलकार कतिपय अपने मूल रूप-स्वरूप मे बदलकर अपने नए रूप मे भी हिन्दी मे प्रयुक्त हुए है । दृष्टान्त अलकार अपभ्र श से हिन्दी मे आया । पदो मे सभी छन्दो मे, मुक्तको मे, कथानक मे सभी काव्य रूपो मे कवि ने दृष्टान्त का प्रयोग-उपयोग किया है । इसी से यह कहा जा सकता है कि काव्याभिव्यक्ति मे बनारसीदास के दृष्टान्त उल्लेखनीय है । यदि महाकवि कालिदास उपमा के उस्ताद है तो दृष्टान्त के खलीफा है बनारसीदास ।

☐

लेखक-परिचय —उम्र ५४ वर्ष । शिक्षा एम.ए , पीएच डी , डी लिट्, साहित्यालकार, विद्यावारिधि । चिन्तक, मनीषी, लेखक, प्रवक्ता । निदेशक जैन शोध अकादमी, आगरा रोड, अलीगढ़ (उ० प्र०)

1. समयसार नाटक, बध द्वार, छन्द २७
2 वही, मोक्ष द्वार, छन्द १४

# बनारसीदास : एक नव्य चिन्तन

– अनिलकुमार शास्त्री

□

आत्मकथा-लेखक कविवर बनारसीदास के जीवन की सत्यता को पाना बौने कद नक्षत्र पकडना है। लोग कवि का जीवन जिसे समझते है, वह उनका यथार्थ जीवन नही है। कहा जाता है कि उनके जीवन मे अनेक उतार-चढाव आये। एक नही, दो नही, तीन-तीन शादियाँ हुई उनकी। सप्त सुत और दो सुताओ का सयोग भी उनको मिला। धनादि परिग्रह की भी उपलब्धि हुई, परन्तु उनके समक्ष देखते-देखते ही वह समस्त सयोग कपूर की तरह उड गये। मैं पूछता हूँ, इन सब बातो का कवि के जीवन से क्या सबध ? क्या उपर्युक्त घटनाओ के कारण ही हम उन्हे नही भूल पा रहे है ? क्या यही उनके जीवन की असलियत है ? उनके माँ-बाप का नाम क्या था ? उनका जन्म कब और कहाँ हुआ ?..... आदि प्रश्नो का उत्तर ही उनका जीवन है ?

कवि का वास्तविक जीवन वह है जिसका वे स्वय भी वर्णन नही कर सके। आत्मदर्शियो का वही जीवन जीवन है जो कलम से टकित नही किया जा सकता। इतिहास जिसे समय और शब्दो की सीमा मे कैद नही कर सकता। ज्ञानियो के उस परमार्थ जीवन को देखने के लिए वे नेत्र चाहिए, जो उनके पास थे।

रूपवान शरीर और जड रागादि मेरा स्वरूप नही है। एकमात्र ब्रह्मस्वरूप ही मै हूँ। अपना यह परिचय कवि ने स्वय दिया है—

वरनादिक रागादि यह, रूप हमारौ नाहि।
एक ब्रह्म नहिं दूसरौ, दीसै अनुभव माहि ।।1

सयोग और तन्निमित्तक चिद्‌विकार से भिन्न अपने चैतन्य का परिचय देने-वाले बनारसीदासजी का जीवन वृत्तान्त अति पृथक् तत्त्व के परिचय से पूर्ण करना उनके सत्य जीवन का आवरण होगा, उद्‌घाटन नही।

कविवर के बाह्य जीवन मे उन पर अनेक विघ्न-बाधाओ प्रतिकूलताओ और विपत्तियो के पहाड टूटे, परन्तु उन बाधाओ ने ज्ञानगढवासी बनारसीदास की अकृत्रिम ज्ञानरज निर्मित अमूर्त काया को छू तक न पाया था।

जैन दर्शन वस्तुमात्र के जिस मूल इतिहास की विवेचना करता है, उसमे जन्म और मृत्यु स्थान नही पाते। किसी सत्ता मे ऐसी कुछ न्यूनता नही, जिसमे अन्य किसी की

१ समयसार नाटक, अजीव द्वार, छन्द ५

आवश्यकता हो तथा किसी वस्तु-सत्त्व मे इतनी अधिकता भी नही जो वह किसी की सहायता कर सके फिर ये कथन कि "उनको बहुत कुछ इष्ट सयोग मिले और छूट गये" अर्थपूर्ण और सार्थक नही लगते।

सत्य तो यह है कि आत्मा ज्ञानधातु से रचित है। वह ज्ञानधातु इतनी घन है कि उसमे किसी भी परतत्त्व और परभाव का प्रवेश नही है तथा किसी स्वतत्त्व की निकासी नही। अनन्त अक्षय गुणरत्नो से भरचक चैतन्यतत्त्व विपदाओ से अति दूर बिल्कुल अलग-अलग पडा है। उस परमतत्त्व मे अनुकूलताओ और प्रतिकूलताओ के आवागमन के लिए अवकाश नही है। ऐसे अनुपम अव्याबाध चैतन्यसदन-वासी बनारसीदासजी के व्यक्तित्व को बाह्य सयोगो से अनुमापित नही किया जा सकता।

यावज्जीवन उद्घाटित सत्य को जीनेवाले कविवर को बाल्यकाल से ही इधर एक शान्ति की प्यास सता रही थी। और वहाँ वासना की मोहक आदत और यौवन के अतिरेक ने उन्हे अच्छा खासा आशिक बना दिया। फलत प्रेम-पाश मे बँधकर भी सता रही शान्ति की प्यास को क्षय करने का प्रयत्न करते रहे। शृगारिक साहित्य सृजन भी किया। इसी बीच देह मे घृणित और कष्टदायक कोढ अ ग-प्रत्यगो से फूटने लगा।

तत्समय स्वार्थी पुत्र-कलत्र, मित्र, परिजन और पुरजन सभी कवि की अवस्था देखकर अपना-अपना मुँह फेरने लगे। तब सौभाग्य से इनका विवेक पथ भी परिवर्तन करने लगा। उनका मन अब अनित्य-अशरण सयोगो से कतराने लगा। सवत्र ससार मे असारता और क्षणभगुरता का ही साम्राज्य दृष्टिगत होने लगा। सच, इन सयोगो ने कभी किसी के विश्वास को आदर नही दिया। अनचाहे इनका आवागमन सदा जीव की त्रासदी का कारण बना रहा।

शान्ति की प्यास शान्त करने की अन्तर्वेदना अन्वेषक को उस गहराई मे जाकर छोडती है, जहाँ सुख सिन्धु की गगन-स्पर्शी तरंगे उछाला मार रही हो।

प. बनारसीदास जी को जब एक सबल मार्गदर्शक का योग मिला तब निज बलवती योग्तानुसार अथक् और अविराम द्रुतगति से गमन करते हुए नोकर्म, द्रव्यकर्म और भावकर्म की पर्तो को चीरकर ज्यो ही उस सुख-सिन्धु का अवलोकन किया, त्यो ही आनन्द के फव्वारे छूट पडे, उनके चैतन्यसदन मे चौतरफा मगलाचार छा गया। उपशम रस के झरने झरने लगे। अ जुलि भर आचमन से ही अनादिकालीन प्यास शान्त होने लगी।

"जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ" वाली उक्ति को चरितार्थ करनेवाले कविवर ने जिस सत्य को पाकर आजीवन उस सत्य को जिया है, ज्ञान और घनानन्द को भोगते ही जिन्होने जीवन यापन किया है। कवि के उस परमार्थ जीवन एव प्रेरक प्रसगो से प्रेरणा पाकर मर्त्य लोक वासी हम सब मानव अपनी प्यास बुझाकर शान्त जीवन जिएँ। □

लेखक-परिचय :—उम्र २३ वर्ष। शिक्षा शास्त्री, एम ए (सस्कृत)। भूतपूर्व स्नातक—श्री टोडरमल दि० जैन सि० महाविद्यालय, जयपुर। सहायक अध्यापक, विद्यालय, गुना। सम्पर्क-सूत्र : C/o सम्भव ट्रेडर्स, गुना (म० प्र०)

# बनारसीदास का प्रदेय और मूल्यांकन

— डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति'

☐

महाकवि बनारसीदास १७वी शताब्दी के एक अध्यात्मिक सत और भक्त कवि थे। अध्ययन, मनन, प्रतिभा स्वभावगत निश्छलता, विषयचयन की मार्मिक दृष्टि एव तदनुकूल मार्मिक भावभिञ्जना का समीकरणात्मक व्यक्तित्व कवि श्री बनारसीदास को हिन्दी-जैन-साहित्यकारो की अग्रिम पक्ति मे स्थान दिलाता है। कवि-व्यक्तित्व के गुण उनके कृतित्व मे पूर्णत: परिलक्षित है। 'अर्द्ध कथानक' उनके सरल, कर्मठ एव निश्छल जीवन को, 'समयसार नाटक' उनके ज्ञान-गम्भीर्य, काव्य-प्रतिभा, विद्वत्ता और सर्वोपरि उनकी उदात्त अध्यात्म दृष्टि को; 'नाममाला' उनके विवध भाषा-प्रेम एव जन-भाषा मे पद्यबद्ध शब्दकोश प्रस्तुत करने की उदात्त सेवावृत्ति को तथा 'बनारसी विलास' उनके दार्शनिक, अध्यात्मिक, आचारिक तथा धार्मिक सिद्धान्तमय दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। डॉ० रवीन्द्रकुमार जेन अपने शोधप्रबन्ध मे लिखते है कि "बनारसीदासजी बोधितबुद्ध कम ही थे, व वास्तव मे स्वयबुद्ध थे। ज्योतिष, छन्द शास्त्र, अलकार, धर्म-शास्त्र, कोष और व्याकरण का साधारण अध्ययन तो उन्होने गुरुमुख से किया था। आगे चलकर समय-समय पर अपने स्वाध्याय, सत्सग और देशाटन द्वारा अपना उक्त ज्ञान विस्तृत और परिपक्व किया तथा जीवन का व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी अध्ययन किया।[1]"

श्रद्धा, ज्ञान और आचरण के समन्वय का ही नाम सर्व-अर्थ-सिद्धि है। यह 'मोक्ष' संज्ञा से सज्ञायित है। ज्ञान के भार से भक्त का हृदय और अधिक विनम्र हो जाता है तथा भक्ति ज्ञान को सरसता एव माधुर्य प्रदान करती है। महाकवि बनारसीदास के काव्य मे ज्ञान और भक्ति दोनो का सुन्दर समन्वय है। कविश्री ने काव्य का सृजन स्वान्त सुखाय किया था किन्तु पर्वतो के वक्षस्थल फोडकर जो निर्झर स्वत: ही फूट पडते है वे जन-जन को तृप्त करते है। कवि-काव्य मे चिर तृप्त करने की शक्ति-समर्थता निहित है। उन्होने स्व-आत्मा को नाम दिया है 'चेतन' और उसकी प्रबोधना ही उनके काव्य का अभीष्ट है। यहाँ कविश्री के काव्य का मूल्याकन इसप्रकार करेगे कि कविश्री का प्रदेय सम्यक् रूप से मुखर हो जाए।

---

1 कविवर बनारसीदास, पृष्ठ ३०२

**धार्मिक प्रदेय**—कवि-काव्य मे धर्म की बलवती एव वेगवती धारा प्रवहमान है। आपने मनुष्य के आत्मकल्याण के लिए आवश्यक आचार पालन के साथ विचार का बड़ी विद्वत्ता के साथ प्रतिपादन किया है। इनका 'समयसार नाटक' आध्यात्म मे एक युगान्तर उपस्थित करता है। इस महाकृति मे कर्म सिद्धान्त का सरल और सरस स्पष्टीकरण हुआ है। जैनधर्म के गूढ एव आधारभूत सिद्धान्तो को उन्होने सोधी सरल हिन्दी मे जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त धर्म के सिद्धान्तो को उन्होने व्यावहारिक रूप प्रदान किया है। सामान्य जनता के लिए धर्म का सैद्धान्तिक विवेचन उतना महत्त्व नही रखता, जितना उसका व्यावहारिक रूप। कविश्री ने आध्यात्म के नीरस और शुष्क सैद्धान्तिक विवेचन को सरस रूप प्रदान किया है।

धर्म का सच्चा सम्बन्ध आत्मा और हृदय से है। कविश्री धर्म मे भावना का अद्वितीय मूल्याकन स्वीकारते हैं।[1] बनारसीदासजी कोरे अध्यात्मी नही है, आत्म निर्मलता के लिए चारित्र की अनिवार्यता पर भी जोर देते है। उनकी मान्यता है कि मिथ्या धारणाओ को त्याग कर उज्ज्वल क्षमा भाव की स्थापना करना, तृष्णा और रागभाव पर विजय प्राप्त करना और साहस के साथ अन्याय मार्ग का उन्मूलन करना ही जिनवाणी का सार है। कविश्री की कृतियो मे अध्यात्म की चर्चा पदे-पदे अत्यन्त सरसता एव युक्तिमत्ता से हुई है। आप शुद्धात्मानुभव को ही मुक्ति का साधन मानते हुए दो पक्तियो मे अपना मथित भाव देते है—

शुद्धातम अनुभौ क्रिया, सुद्ध ग्यान द्रिग दौर।
मुकति-पथ साधन यहै, वागजाल सब और ॥[2]

अर्थात् शुद्ध आत्मा का अनुभव ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। यही मुक्तिपथ है, शेष सब वाग्जाल है।

'अर्द्धकथानक' कवि का मानवीय दुर्बलताओ पर विजय पाता हुआ उज्ज्वल धार्मिक व्यक्तित्व दर्शाता है। 'नाममाला' के आरम्भ मे मगलाचरण एवं तीर्थकरो, सिद्धो को नामावलियो से कवि की धार्मिक रुचि का परिचय परिलक्षित है। कविश्री की प्रत्येक रचना मे धार्मिकता के अभिदर्शन होते है। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल कहते है कि "बनारसीदासजी जैन शास्त्रो के पारदर्शी विद्वान थे। उनका गम्भीर अध्ययन था। 'बनारसीविलास' मे सगृहीत जैन सिद्धान्त विषय से सम्बन्धित रचनाओ मे जैनधर्म के गहन तत्त्वो का परिचय दिया गया है। वह उनके जैन सिद्धान्त विषयक गम्भीर ज्ञान का स्पष्ट प्रमाण है। सिद्धान्त की गहन चर्चाओ को उदाहरण देकर समझाना उन्हे अच्छी तरह आता था।[3]"

इसप्रकार जैन अध्यात्म के पुरस्कर्ता कवि श्री बनारसीदास के काव्य मे अध्यात्ममूला भक्ति का उत्कर्ष है।

---

1 बनारसी विलास, पृष्ठ ५४
2 समयसार नाटक, सर्वविशुद्धि द्वार, छद १२६
3 बनारसी विलास, पृष्ठ ३६

सामाजिक प्रदेय—मनुजता और सामाजिकता का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। कविकालीन समाज की स्थिति सतोषजनक नही थी। निर्धन और धनवान प्रत्येक के जीवन का प्रत्येक कार्य ज्योतिष के अनुसार ही होता था।[1] देश मे स्थित प्रत्येक वर्ग के लोग घोर अन्धकार मे पडे हुए थे। धार्मिक पुरुषो को इतनी भक्ति होती थी कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके स्मारको की भी पूजा की जाती थी। अधविश्वास और अधानुसरण व्यक्ति की विवेक बुद्धि को दिग्भ्रमित/हतप्रभ कर देती थी। कवि का युग धार्मिक अन्धविश्वासो का युग था। कविश्री बनारसीदास के निजी जीवन की एक घटना से तत्कालीन अधविश्वासो का परिचय मिल जाएगा। एक साधु ने कवि को एक मत्र का आश्चर्यपूर्ण चमत्कार सुनाया। उस मत्र की एक वर्ष की सिद्धि के पश्चात् एक दीनार प्रतिदिन द्वार पर पडी मिला करेगी - यह भी कहा। बनारसीदास ने तत्काल साधु के चरण पकड लिए और मत्र लिख लिया। एक वर्ष बडी श्रद्धा से मत्र का जाप किया परन्तु अन्त मे जब कुछ न मिला तो बडे दु.खी हुए। घर वालो ने समझाया कि यह भ्रम है। मिथ्यात्वी लोग भोले प्राणियो को इसी भाँति छल से लूटते है। इससे कवि को सान्त्वना मिली और वे फिर आत्मस्थ हो अपने कार्य मे लग गए।[2]

महाकवि बनारसीदास ने इसीप्रकार एक साधु के कहने से धन के लोभ मे शिवजी की प्रतिमा की पूजा आरम्भ की परन्तु अन्त मे फल और रक्षा न पा उसे भी छोड दिया। आगे चलकर जब कवि पर सकट आया और शिव ने रक्षा न की तो कवि फिर सचेत हो बोल उठा—[3]

बैठौ मन मे चिन्तै एम। मैं सिव पूजा कीनी केम ।।
जब मैं गिरयौ परयौ मुरझाय। तब सिव कछू न करी सहाय ।।
यहु विचार सिव पूजा तजी। लखी प्रगट सेवा मैं कजी ।।
तिस दिन सौ पूजा न सुहाय। सिव-सखोली धरी उठाय ।।

धर्म मे आडम्बर और क्रियाकाण्ड की निरर्थक व्यस्त योजनाओ के कविवर बनारसीदासजी विरोधी थे। उनका सम्पूर्ण जीवन विविध धर्मो की एक 'प्रयोगशाला' थी। डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन खुलासा करते है कि "कभी वैष्णव, कभी शैव, कभी तान्त्रिक, कभी क्रियाकाण्डी, कभी नास्तिक, कभी श्वेताम्बर तो कभी दिगम्बर जैन के रूप मे कविश्री ने सभी धर्मो का अनुभव किया और इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि धर्म का सम्बन्ध यदि बाह्य प्रदर्शन क्रियाकाण्डादि से रखा जाएगा तो उसमे व्यक्तिगत स्वार्थ, क्षुद्रता और स्वैराचार पनप उठेगे। धर्म के नाम पर सभी अमानवीय तत्त्व भी पुष्ट होगे। अत धर्म का नाता अन्तस् से, आत्मा से होना चाहिए। यदि हम निश्चिन्त रूप से अन्दर से शुद्ध है तो ससार की कोई भी शक्ति हमारा पतन कदापि नही कर सकती।[4]"

इसप्रकार अन्धविश्वास, बहुधर्मिता, निरक्षरता, अरक्षा और अज्ञान से भी समाज पीडित था। आचरण के कोई मापदण्ड न थे, अनैतिकता का बोलबाला था, धर्म के नाम

1 भारतवर्ष का इतिहास, डॉ विश्वेश्वर प्रसाद
2 अर्द्धकथानक, छद २०९-२१८
3 अर्द्धकथानक, छद २६२-२६३
4 कविवर बनारसीदास, पृष्ठ ३३

पर बाह्य आडम्बर ही शेष रह गए थे। ऐसे समय मे कविश्री ने जै
धर्म का वास्तविक स्वरूप रखने का प्रयास किया। उन्होने अपनी स चना
जीव को मिथ्याबुद्धि का त्याग करके आत्मकल्याण की ओर अग्रसर ह
है। महाकवि बनारसीदास ने समाज को धर्म के बाह्य नही, अपि
अवगत कराने का प्रयास किया है।

सांस्कृतिक प्रदेय—अध्यात्म-सन्त बनारसीदास एक मनीषी विचारक एवं सुकवि होने के साथ-साथ उत्साही, सामाजिक एव राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता भी थे। कविश्री ने धर्म और सस्कृति के उदात्त तत्त्वो से जनमानस उद्वेलित किया। कवि-काव्य मे अध्यात्म-प्रधान भारतीय सस्कृति का उज्ज्वल रूप दर्शित है। अपने पूर्व सन्तो से इस देश की जो सस्कृति-निधि प्राप्त की उसे अत्यन्त विकसित, परिमार्जित एव जनग्राह्य रूप मे जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। अनेक मौलिक उद्‌भावनाओ द्वारा सास्कृतिक इतिहास मे नवीन जीवन का सचार कर दिया।

मानव की आत्मिक उठान को ही उसका वास्तविक अभ्युदय मानागया है।[1] कविश्री की सास्कृतिक देन और अध्यात्म मत के प्रभाव के सम्बन्ध मे महापडित अगरचन्द नाहटा लिखते है कि "यहाँ के श्रावको का अध्यात्म की ओर इतना अधिक प्रेम कब से एव कैसे हुआ – यह अन्वेषणीय है। मेरे नम्र मतानुसार १७वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे दिगम्बर समाज मे कविवर बनारसीदासजी ने जो आध्यात्मिक लहर लहरायी थी, सम्भव है मुल्तान तक वह पहुँचकर वहाँ के श्रावको को प्रभावित करने मे समर्थ हुई। आध्यात्मिक विषय का साहित्य श्वेताम्बर समाज की अपेक्षा दिगम्बर समाज मे अधिक है। अत. श्वेताम्बर मुनियो मे श्रावको के अनुरोध से ज्ञानार्णव और परमात्मसार नामक दिगम्बर ग्रथो की अनुवाद रूप मे (या आधार से) रचना भी की है।...... कविवर बनारसीदासजी के अध्यात्म प्रेम ने जैन समाज मे नवजीवन का सचार किया।[2]"

कविवर बनारसीदास ने आज से तीन सौ वर्ष पूर्व ही सम्प्रदाय, जाति एव रूढियो की दलदल से ऊपर उठकर सर्वधर्म-समन्वय की आदर्श घोषणा की थी :—

एक रूप 'हिन्दू तुरक', दूजी दशा न कोय।
मन की द्विविधा मानकर, भये एक सौ दोय ॥७॥
दोऊ भूले भरम मे, करे वचन की टेक।
'राम-राम' हिन्दू कहै, तुर्क 'सलामालेक' ॥८॥
इनके पुस्तक बाचिए, वेहू पढें कितेब।
एक वस्तु के नाम द्वय, जैसे 'शोभा' 'ज़ेब' ॥९॥
तिनको द्विविधा जे लखे, रगबिरगी चाम।
मेरे नैनन देखिए, घट घट अन्तर राम ॥१०॥

---

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृष्ठ ९०
2. मुल्तान के श्रावको का अध्यात्म प्रेम, जैन सिद्धान्त भास्कर, जुलाई १९४९, पृष्ठ ५७-५८

डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है कि 'बीकानेर जैन लेख सग्रह मे अध्यातमी सम्प्रदाय का उल्लेख भी ध्यान देने योग्य है। वह आगरे के ज्ञानियो की मण्डली थी जिसे 'सैली' कहते थे। अध्यातमी बनारसीदास इसी के प्रमुख सदस्य थे। ज्ञात होता है कि अकबर की 'दीन-ए-इलाही' प्रवृत्ति भी इसी प्रकार की आध्यात्मिक खोज का परिणाम थी।[1]' वस्तुत कविश्री अध्यातम शेली के प्रमुख सदस्य थे, जैन थे तथा परम सहिष्णु और विचारो मे उदार थे।

इस प्रकार आध्यात्मिक एव राष्ट्रीय भावना के लिए कविश्री बनारसीदास परवर्ती कवियो – भैया भगवतीदास, सत आनन्दघन, भूघरदास, द्यानतराय एव दौलतराम – के प्रेरणास्रोत रहे है। कविश्री के व्यक्तित्व, और साहित्य से समाज और देश को बहुमुखी सास्कृतिक चेतना प्राप्त हुई है। यही कविश्री का अनुपम सास्कृतिक प्रदेय है।

**साहित्यिक प्रदेय**—अनुभूति का काव्यात्मक बाह्य प्रकाशन अभिव्यक्ति की जिस पर्याय मे हुआ करता है, वस्तुत कालान्तर मे वही काव्यरूप बन जाता है।[2] विभिन्न काव्य रूपो, छदो तथा नाना राग-रागिनियो मे अभिव्यक्ति, नीति-उपदेश तथा आत्म-कल्याण परक उपयोगी बातो का प्रतिपादन कविश्री बनारसीदास के काव्य मे उपलब्ध है। डॉ रवीन्द्रकुमार जैन इस सन्दर्भ मे कहते है कि "अध्यातम सन्त कविवर बनारसी दासजी ने प्राय पद, पद्य, गीत, गोति (उर्मिगीत), महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि सभी काव्य-विधाओ मे रचनाएँ प्रस्तुतकर हिन्दी माँ की अभूतपूर्व सेवा की है। जिनमे सवाद सौन्दर्यादि नाटकीय तत्त्वो की अनुपम छटा है। कोष, आत्मकथा तथा गद्य एव पद्य मे दार्शनिक आध्यात्मिक निबन्ध, विविध सुन्दर एव स-सार रचनाएँ आपकी लोकातिशायी काव्य-प्रतिभा एव विद्वत्ता से प्रसूत हुई है।[3]"

**नवरस** —कविश्री की यह सबसे पहली रचना थी जिसे उन्होने स्वय अपने ही हाथ से गोमती नदी मे जल समाधि दे दी थी। यह एक हजार दोहा-चौपाइयो मे लिखी गई और नवरस युक्त थी, परन्तु इसमे शृगारिकता का प्राधान्य था—

पोथी एक बनाई नई। मित हजार दोहा चौपई।।
तामैं नवरस रचना लिखी। पै बिसेस बरनन आसिखी।।
ऐसे कुकवि बनारसी भए। मिथ्या ग्रन्थ बनाये नए।।

इसकी रचना वि स १६५७ मे हुई जब कविश्री की अवस्था १४ वर्ष की थी। दुर्भाग्य से कविश्री ने सवत् १६६२ मे इस रचना को गोमती मे जल समाधि दे दी।

---

1 मध्यकालीन नगरो का सास्कृतिक अध्ययन, जैन सदेश, जून १६५७
2 जैन कवियो के हिन्दी काव्य का काव्यशास्त्रीय मूल्याकन, डॉ० महेन्द्रसागर प्रचण्डिया डी लिट् का शोधप्रबन्ध, १६७४, पृष्ठ १३
3 कविवर बनारसीदास, पृष्ठ २७५

**नाममाला** :—बनारसीदासजी की उपलब्ध रचनाओ मे यह सबसे पहला रचना है जो आश्विन सुदी दशमी सवत १६७० को जौनपुर मे समाप्त की गई थी। अपने परम मित्र नरोत्तमदास खोबरा और थानमल बदलिया के कहने से इसमे प्रवृत्ति हुई थी—

मित्र नरोत्तम थान, परम विचच्छन धरम निधि।
तास वचन परवान, कियौ निबध विचार मन ।।
सोरह सै सत्तरि समै, असो मास सित पच्छ।
विजैदसमि ससिवार तह, स्रवन नखत परतच्छ ।।

वस्तुत: यह एक हिन्दी मे लिखा तथा पद्यबद्ध शब्दकोष है जो १७५ दोहो का है, ये दोहे सुबोध है। धनजयकृत 'नाममाला' और अनेकार्थनाममाला इस कोश के प्रेरणा स्रोत कहे जा सकते है परन्तु इस कृति का प्रणयन पूर्णरूप से स्वतत्र हुआ है। कवि की शैली और शब्दगठन की मौलिकता के साथ-साथ प्राकृत और हिन्दी के शब्दो का आवश्यक सम्मिलित उपादेय सिद्ध हुआ है तथा यह कठस्थ करने योग्य है।

**समयसार नाटक**—'समयसार नाटक' जीव की आद्यन्त व्याख्या करने वाला शास्त्र है। आचार्य कुन्दकुन्द का 'समय प्राभृत' उसकी अमृतचन्द्राचार्य कृत आत्मख्याति नामक संस्कृत टीका और पडित राजमल्ल कृत बालबोध भापा टीका - इन तीनो के आधार से इस छदोबद्ध महाग्रन्थ का प्रणयन हुआ है। यह स्वतत्र न होते हुए भी एक मौलिक ग्रन्थ है। कही भी क्लिष्टता, भावदीनता और परमुखापेक्षा नही दिखलाई देती। ऐसा लगता है मानो कविश्री ने मूलग्रंथ के भावो को बिल्कुल आत्मसात् करके, अपने ही अनुभवो के रूप मे प्रकट किया है। कवित्व की दृष्टि से भी यह रचना अपूर्व है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय, अडिल्ल, कुण्डलिया और कवित्त छदो का इसमे उपयोग किया गया है।

महाकवि बनारसीदास ने इस ग्रन्थरत्न के माध्यम से नवरसो के सन्दर्भ मे मौलिक आध्यात्मिक उदात्त दृष्टि दी है। उन्होने शात रस को रसनायक स्वीकार किया है। नवरसो के लौकिक स्थानो की चर्चा को अत्यन्त सक्षेप एव स्पष्टता के साथ कविश्री ने एक ही छद मे निबद्ध कर दिया है—

सोभा में सिंगार बसै वीर पुरुपारथ मै,
कोमल हिए मै रस करुना बखानिये।
आनन्द मे हास्य रुण्ड मुण्ड मैं बिराजै रुद्र,
बीभत्स तहाँ जहाँ गिलानि मन आनिये ।।
चिन्ता मे भयानक अथाहतामै अद्भुत,
माया की अरुचि तामैं सान्त रस मानिये।
एई नवरस भवरूप एई भावरूप,
इनकौ विलेछिन सुद्रिष्टि जागै जानिये ।।१३४।।

कवि की मान्यता है कि अध्यात्म जगत मे भी साहित्यिक रसो का आनन्द लिया जा सकता है, केवल रसास्वादन की दिशा बदलनी होगी। कविश्री बनारसीदास ने

आत्मा के विभिन्न गुणो की निर्मलता और विकास मे ही नवरसो की परिपक्वता का अनुभव किया है—

गुन विचार सिंगार, वीर उद्यम उदार रुख।
करुना सम रस रीति, हास हिरदै उछाह सुख।
अष्ट करम दल मलन रुद्र, वरतै तिहि थानक।
तन विलेछ वीभच्छ, दुन्द मुख दसा भयानक।
अद्भुत अनन्त वल चिन्तवन, सात सहज वैराग ध्रुव।
नव रस विलास परगास तव, जब सुबोध घट प्रगट हुव ।।१३५।।

आश्विन सुदी १३ स० १६९३ मे शाहजहाँ वादशाह के समय मे आगरे मे इसका सृजन सम्पन्न हुआ—

सुख-निधान सक वध नर, साहव साह किरान।
सहस-साह सिर-मुकुट मनि, साहजहाँ सुलतान ।।३७।।
जाकै राज सुचन सौं, कीनौ आगम सार।
ईति-भीति व्यापी नही, यह उनकौ उपगार ।।३८।।

**बनारसी विलास**— इसमे महाकवि बनारसीदास की ४८ रचनाओ का उनके वाणी-भक्त आगरावासी जगजीवन ने चैत्र सुदी २ वि १७०१ को सकलित किया। जगजीवन ने ही इस कृति का नामकरण किया बनारसी-विलास। पण्डित नाथूराम प्रेमी ने इस सकलन मे उनकी ५७ रचनाओ का उल्लेख किया है।[1] कविश्री ने वि स १७०० फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को 'कर्म प्रकृति विधान' नामक कृति की रचना की थी। यह रचना भी इस सग्रह मे सगृहीत हे। 'बनारसो विलास' मे कविश्री की ४८ रचनाएँ सर्वमान्य रूप से सकलित हैं—[2] १–जिनसहस्रनाम, २–सूक्ति मुक्तावली, ३–ज्ञान बावनो, ४–वेद निर्णय पंचाशिका, ५–शलाकापुरुषो की नामावली, ६–मार्गणा विचार, ७–कर्म प्रकृति विधान, ८–कल्याण मन्दिर स्तोत्र, ९–साधु वन्दना, १०–मोक्ष पैडी, ११–करम छत्तीसी, १२-ध्यान वत्तीसी, १३–अध्यात्म बत्तीसी, १४–ज्ञान पच्चीसी, १५–शिव पच्चीसी, १६–भव सिन्धु चतुर्दशी, १७–अध्यात्म फाग, १८–सोलह तिथि, १९–तेरह काठिया, २०–अध्यात्म गीत, २१–पचपद विधान, २२-सुमति देवी के अष्टोत्तरशत नाम, २३–शारदाष्टक, २४–नव-दुर्गा विधान, २५–नाम निर्णय विधान, २६–नवरत्नकवित्त, २७–अष्ट प्रकारी जिन पूजा, २८–दशदान विधान, २९-दशबोल, ३०–पहेली ३१–प्रश्नोत्तर दोहा ३२–प्रश्नोत्तर माला, ३३–अवस्थाष्टक, ३४–षट्दर्शनाष्टक, ३५–चातुर्वर्ण, ३६–अजितनाथ के छद, ३७–शाति-नाथ स्तुति, ३८–नवसेना विधान ३९–नाटक समयसार के कवित्त, ४०–फुटकर कवित्त, ४१–गोरखनाथ के वचन, ४२–परमार्थ वचनिका, ४३–वैद्य आदि के भेद, ४४–उपादान निमित्त की चिट्ठी, ४५–उपादान निमित्त के दोहे, ४६–अध्यात्म पद, ४७–परमार्थ हिडोलना ४८–अष्टपदी मल्हार।

प्रस्तुत कृति काव्यरूप की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस सग्रह की रचनाओ मे महाकवि की बहुमुखी प्रतिभा, काव्य कुशलता एव अगाध विद्वत्ता के दर्शन होते है।

---

1 अर्द्ध कथानक, भूमिका, प नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ २९
2 तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, खण्ड ४, डॉ० नेमीचन्द्र, पृष्ठ २५४-२५५

धार्मिक मुक्तकों में कवि ने उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अनुप्रास आदि अलंकारों की योजना की है। सैद्धान्तिक रचनाओं में विषय-प्रधान वर्णन शैली है। इन रचनाओं में कवि, कवि न रहकर तार्किक हो गया है। अतः कविता तर्कों, गणनाओं, उक्तियों और दृष्टान्तों से भर गई है। कवि ने सभी सिद्धान्तों का समावेश सरल शैली में किया है।

महाकवि बनारसीदास के सरस और हृदयग्राही पद आत्मकल्याण में बड़े सहायक हैं। ये पद आत्मानुभूति के आलोक हैं। बुद्धि, राग और कल्पना तत्त्व का समावेश है। अनुभूति का सतुलन, भाव और भाषा का एकीकरण, लय और ताल की मधुरता बनारसीदास के पदों की विशेषता है।

कविश्री की प्रतिभा गद्य में भी मुखरित हुई है। उनकी 'परमार्थ वचनिका', 'उपादान निमित्त की चिट्ठी' नामक कृतियाँ इसके उदाहरण हैं। हिन्दी भाषा के विकास में इनका ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्त्व है।

मोह-विवेक युद्ध—यह खण्ड काव्य है। इसमें ११० दोहा-चौपाई हैं। इसका नायक मोह है और प्रतिनायक है विवेक। दोनों में विवाद होता है और दोनों ओर की सेनाएँ सजकर युद्ध करती हैं। कवि की शैली प्रसन्न और गम्भीर है। उन्होंने अध्यात्म की बड़ी बड़ी बातों का संक्षेप में सरलता पूर्वक गुम्फित कर दिया है। कतिपय विद्वान इस कृति को कविश्री-प्रणीत नहीं मानते हैं।

अर्द्धकथानक—इसमें कविश्री के ५५ वर्षों का यथार्थ जीवन वृत्त अंकित है। हिन्दी का तो यह सर्वप्रथम आत्मचरित है परन्तु अन्य भाषाओं में इसप्रकार की इतनी प्राचीन पुस्तक मिलना दुर्लभ है। स्वनामधन्य श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का कहना है—"इसमें वह सजीवनी शक्ति विद्यमान है जो इसे अभी कई सौ वर्ष और जीवित रखने में सर्वथा समर्थ होगी। सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता, निरभिमानता और स्वाभाविकता का ऐसा जबरदस्त पुट इसमें विद्यमान है।[1]"

इस रचना में कविश्री ने अपने गुणों के साथ-साथ दोषों का भी उद्घाटन किया है। 'अर्द्धकथानक' की भाषा कवि ने 'मध्य देश की बोली' कहा है—

मध्यदेश की बोली बोलि। गरभित बात कहौं हिय खोलि ॥७॥

प्रो. हीरालाल जैन ने इस ग्रंथ की भाषा के विषय में कहा है—'अर्द्धकथानक का जितना महत्त्व उसके साहित्यिक गुणों और ऐतिहासिक वृत्तान्त के कारण है उतना ही और सम्भवतया उससे भी अधिक उसकी भाषा के कारण है।[2] इसमें उर्दू, फारसी और संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है परन्तु मुख्यतया उस समय की प्रचलित जन-भाषा ही प्रयुक्त हुई है। वस्तुतः 'अर्द्धकथानक' की भाषा खड़ी बोली के आदिम काल का एक उल्लेखनीय निदर्शन है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह कृति बड़ी [illegible] है। कविश्री ने जैन परम्परा के अन्तर्गत रहकर ही साहित्य सेवा की है।

मूल्यांकन इसप्रकार महाकाव्य, [illegible], मुक्तककाव्य, [illegible] गद्य एवं [illegible] आदि विधाओं की दृष्टि से कविश्री ने बहुमुखी कवित्व और कृतित्व के

1 [illegible] अर्द्धकथानक, पृष्ठ ॥
2 [illegible] हीरालाल जैन, [illegible] पृष्ठ ३४

अभिदर्शन होते है। भावप्रकाशन और विषयचयन मे कविश्री की सफलता दर्शनीय है। सामजिक, धार्मिक, सास्कृतिक प्रदेय के साथ-साथ कविश्री की साहित्यिक देन महनीय है। डॉ कस्तूरचन्द्र कासलीवाल कहते है–"बनारसीदास प्रतिभा सम्पन्न एव धुन के पक्के कवि थे। हिन्दी साहित्य को इनकी देन निराली है। कवि की वर्णन करने की शक्ति अनूठी है। इनकी प्रत्येक रचना मे अध्यात्म रस टपकता है इसलिए इनकी रचनाएँ समाज मे अत्यधिक आदर के साथ पढी जाती है।[1]"

डॉ रवीन्द्रकुमार जैन के शब्दो मे "बनारसीदासजी इस सदी के ही नही, वरन् सपूर्ण हिन्दी जैन साहित्य के शिरोमणि कवि है। ....जो स्थान वैष्णवधर्म की सरल एव पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या मे, मानव को एक निश्चित समार्ग दिखाने मे तथा सगुणभक्ति की पुन स्थापना करने मे महाकवि तुलसीदास का हो सकता है, ठीक वही स्थान कविवर बनारसीदासजी का हिन्दी जेन साहित्य मे है।[2]" वस्तुत. महाकवि बनारसीदास ने अपनी भास्वर प्रतिभा, ज्ञानगरिमा और ससार के अनुभवो द्वारा साहित्य की अक्षय समृद्धि की है। वे जैन-साहित्य-गगन के श्रेष्ठ कवि-नक्षत्र है।

☐

लेखक-परिचय:—उम्र ३६ वर्ष। शिक्षा एम ए. (स्वर्णपदक प्राप्त), पीएच डी, डी लिट् के शोध मे प्रवृत्त। कवि, लेखक और समीक्षक। सम्पर्क सूत्र मगल कलश, 394-सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ (उ० प्र०)

1 हिन्दी पद सग्रह, पृष्ठ ५३। 2 कविवर बनारसीदास, पृष्ठ ७६।

यहाँ पर स, च, क, ज वर्णों की आवृत्ति तीन या इससे अधिक बार होने से वृत्यानुप्रास है।

अन्त्यानुप्रास — ग्यानकला जिनके घट जागी। ते जगमाहि सहज वैरागी ।।
ग्यानी मगन विषै सुख माही। यह विपरीत सभवै नाही ।।[1]

यहाँ पर प्रत्येक छन्द के प्रथम चरण के अन्तिम वर्ण की आवृत्ति द्वितीय चरण के अन्तिम वर्ण मे हो रही है, अत अन्त्यानुप्रास अलकार है। अब छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास एव अन्त्यानुप्रास की मिली-जुली छटा का अवलोकन कीजिए।

कीच सौ कनक जाके नीच सो नरेस पद,
मीचसी मिताई गरवाई जाके गारसी।
जहरसी जोग-जाति कहरसी करामाति,
हहरसी हौस पुद्गल-छवि छारसी ।।
जाल सौ जगन्विलास भाल सौ भुवन-वास,
काल सौ कुटम्ब-काज लोक-लाज लारसो।
सीठ सौ सुजस जानै बीठ सो बखत मानै,
ऐसी जाकी रीति ताहि वन्दत बनारसी ।।[2]

यहाँ पर क, न, म, ग, क, ह, छ, ज, भ, व वर्ण की आवृत्ति तीन वार हुई है तथा प्रत्येक चरण का अन्तिम "स" आवृत्त हुआ है।

उपमा:—कवि ने अनुप्रास के बाद उपमा अलकार का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है। उनके ग्रन्थ मे इसका द्वितीय स्थान है।

उपमेय तथा उपमान का भेद होने पर उनके साधर्म्य का वर्णन उपमा कहलाता है।[3] कवि ने अपनी कृति मे अनेक उपमाएँ प्रयुक्त की है, किन्तु उन सब का स्पष्टीकरण करना सम्भव नही। उपमा के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है जो कवि की उपमाप्रियता के द्योतक है —

ज्यौ वरषै वरषा समै, मेघ अखडित धार।
त्यौ सद्गुरु वाणी खिरै, जगत जीव हितकार ।।[4]

यहाँ सद्गुरु को मेघ की उपमा दी गई है। सद्गुरु उपमेय, मेघ उपमान है। वर्षा होना, वाणी खिरना साधारण धर्म है और "समै" शब्द उपमावाचक है।

ऐसौ सुविवेक जाकै हिरदै प्रगट भयौ,
ताकौ भ्रम गयौ ज्यौ तिमिर भागै भानसौ ।।[5]

---

1 समयसार नाटक, निर्जरा द्वार, छन्द ४१
2 समयसार नाटक, बन्ध द्वार, छन्द १९
3. काव्यप्रकाश, १०/१२५
4 समयसार नाटक, साध्य-साधक द्वार, छन्द ६
5 समयसार नाटक, कर्ता कर्म क्रिया द्वार, छन्द ५

यहाँ पर भेदविज्ञान को सूर्य की उपमा दी है। भेदविज्ञान, उपमेय, सूर्य उपमान मिथ्या अंधकार का नष्ट होना साधारण धर्म 'ज्यो' उपमावचक शब्द है। एक अन्य उपमा देखिए—

जाके उर अन्तर निरन्तर अनन्त दर्व,
भाव भासि रहे पै सुभाव न टरतु है।
निर्मल सौ निर्मल सु जीवन प्रगट जाके,
घट मे अघट रस कौतुक करतु है।।
जागै मति श्रुत औधि मनपर्यै केवल सु,
पचधा तरगनि उमगि उछरतु है।
सो है ज्ञानउदधि उदार महिमा अपार,
निराधार एक मे अनेकता धरतु है।।[1]

यहाँ पर सम्यग्ज्ञान को समुद्र को उपमा दी गई है। सम्यग्ज्ञान उपमेय, समुद्र उपमान, अपने स्वभाव को न छोडना, तरगो का उठना आदि साधारण धर्म तथा "सो" उपमावाचक शब्द है।

रूपक —जहाँ उपमान और उपमेय को एक दूसरे से नितान्त अभिन्न वर्णन किया जाय वहाँ रूपक अलकार माना जाता है।[2] भेदज्ञान के महत्त्व विपयक रूपक का सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है—

भेदग्यान साबू भयौ, समरस निरमल नीर।
धोबी अन्तर आतमा, धोवै निजगुन चीर।।[3]

यहाँ अभेद द्वारा भेदज्ञान को साबुन, समता को निर्मल जल, सम्यग्दष्टि जीव को धोवी और आत्मगुण को वस्त्र कहा गया है। एक अन्य उदाहरण देखिए—

पूर्वबध नासै सो तो सगीत कला प्रकासै,
नव बध रुधि ताल तोरत उछरिकै।
निसकित आदि अष्ट अग सग सखा जोरि,
समता अलाप चारी करै सुख भरिकै।।
निरजरा नाद गाजै ध्यान मिरदग बाजै,
छक्यौ महानद मै समाधि रीझि करिकै।
सत्ता रगभूमि मै मुकत भयो तिहु काल,
नाचै सुद्धदिष्टि नट ग्यान स्वाग धरिकै।।[4]

यहाँ अभेद द्वारा सम्यग्दृष्टि को नट कहा गया है।

1 समयसार नाटक, निर्जरा द्वार, छन्द २०
2 काव्य प्रकाश, १०/९३
3. वही, निर्जरा द्वार, छन्द ६१
4 वही, सवर द्वार, छन्द ९

उत्प्रेक्षा.—कवियो ने किसी नई सूझ या कल्पना का चमत्कार दिखाने के लिए उत्प्रेक्षा अलकार का सबसे अधिक आश्रय लिया है। सादृश्य के आधार पर प्रस्तुत वस्तु मे अनेको (एक के बाद दूसरी) अप्रस्तुत वस्तुओ की योजना करना कुशल कवियो का उद्देश्य रहा है। अत अनेक आचार्यो ने उत्प्रेक्षा का विस्तार के साथ विवेचन किया है। मम्मट ने प्रकृत (उपमेय) के समान (उपमान) के साथ एक्य को सम्भावना को उत्प्रेक्षा कहा है।[1] कवि बनारसीदास ने भी उत्प्रेक्षा को महत्त्व दिया है। उनकी कृति मे अर्थालकारो मे मात्रा की अपेक्षा उपमा का तथा चमत्कार की दृष्टि से उत्प्रेक्षा का स्थान सर्वोपरि है। उत्प्रेक्षा के उदाहरण देखिए—

ऊचे-ऊचे गढ के कगूरे यौ विराजत है,
मानौ नभलोक गीलिवेकौ दाँत दियो है।
सोहै चहू ओर-उपवन की सघनताई,
घेरा करि मानौ भूमिलोक घेरि लीयौ है॥[2]

एक अन्य उदाहरण देखिए—

प्रथम नियत नय दूजी विवहारनय,
दुहूकौ फलावत अनत भेद फले है।
ज्यौ ज्यौ नय फलै त्यौ-त्यौ मन के कल्लोल फलै,
चचल सुभाव लोकालोक लौ उछले है॥[3]

दृष्टान्त—जहाँ दो वाक्यो मे एक उपमेय वाक्य होता है तथा दूसरा उपमान वाक्य। दोनों वाक्यो मे उपमान, उपमेय, साधारण धर्म आदि का परस्पर बिब-प्रतिबिम्ब भाव प्रतीत हो वहाँ दृष्टान्त अलकार होता है।[4] कवि ने आत्मा की बात को समझाने के लिए अनेक दृष्टान्तो द्वारा अलकार का प्रयोग किया है। भेदविज्ञान की प्राप्ति मे धोबी के वस्त्र का दृष्टान्त प्रस्तुत है—

जैसै कोऊ जन गयौ धौबी कै सदन तिन,
पहिर्यौ परायौ वस्त्र मेरौ मानि रह्यौ है।
धनी देखि कह्यौ भैया यह तौ हमारौ वस्त्र,
चीन्है पहिचानत ही त्यागभाव लह्यौ है।
तैसै ही अनादि पुद्गलसौ सजोगी जीव,
सग के ममत्व सौ विभाव तामै बह्यौ है।
भेदज्ञान भयौ जब आपौ पर जान्यौ तब,
न्यारौ परभावसौ स्वभाव निज गह्यौ है॥[5]

यहाँ छन्द का पूर्वार्द्ध उपमान वाक्य, उत्तरार्द्ध उपमेय वाक्य का प्रतिबिम्ब रूप है। इस दृष्टान्त मे धर्म एक न होकर साधर्म्यता है। एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है—

---

1 काव्यप्रकाश १०/१३७
2 समयसार नाटक, जीव द्वार, छन्द २८
3. समयसार नाटक कर्ता कर्म क्रिया द्वार, छन्द २७
4 काव्यप्रकाश १०/१५५
5 समयसार नाटक, जीवद्वार छन्द ३२

अभिदर्शन होते है । भावप्रकाशन और विषयचयन मे कविश्री की सफलता दर्शनीय है । सामजिक, धार्मिक, सास्कृतिक प्रदेय के साथ-साथ कविश्री की साहित्यिक देन महनीय है । डॉ कस्तूरचन्द्र कासलीवाल कहते है–"बनारसीदास प्रतिभा सम्पन्न एव धुन के पक्के कवि थे । हिन्दी साहित्य को इनकी देन निराली है । कवि की वर्णन करने की शक्ति अनूठी है । इनकी प्रत्येक रचना मे अध्यात्म रस टपकता है इसलिए इनकी रचनाएँ समाज मे अत्यधिक आदर के साथ पढी जाती है ।[1]"

डॉ रवीन्द्रकुमार जैन के शब्दो मे "बनारसीदासजी इस सदी के ही नही, वरन् सपूर्ण हिन्दी जैन साहित्य के शिरोमणि कवि है । "'जो स्थान वैष्णवधर्म की सरल एव पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या मे, मानव को एक निश्चित समार्ग दिखाने मे तथा सगुणभक्ति की पुन स्थापना करने मे महाकवि तुलसीदास का हो सकता है, ठीक वही स्थान कविवर बनारसीदासजी का हिन्दी जेन साहित्य मे है ।[2]" वस्तुत. महाकवि बनारसीदास ने अपनी भास्वर प्रतिभा, ज्ञानगरिमा और ससार के अनुभवो द्वारा साहित्य की अक्षय सामृद्धि की है । वे जैन-साहित्य-गगन के श्रेष्ठ कवि-नक्षत्र है ।

□

*लेखक-परिचय:—उम्र ३६ वर्ष । शिक्षा एम ए (स्वर्णपदक प्राप्त), पीएच डी, डी लिट् के शोध मे प्रवृत्त । कवि, लेखक और समीक्षक । सम्पर्क सूत्र मगल कलश, 394-सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ (उ० प्र०)*

---

1 हिन्दी पद सग्रह, पृष्ठ ५३ । 2 कविवर बनारसीदास, पृष्ठ ७६ ।

यहाँ पर स, च, क, ज वर्णों की आवृत्ति तीन या इससे अधिक बार होने से वृत्यानुप्रास है।

अन्त्यानुप्रास – ग्यानकला जिनके घट जागी। ते जगमाहि सहज वैरागी॥
ग्यानी मगन विषै सुख माही। यह विपरीत सभवै नाही॥[1]

यहाँ पर प्रत्येक छन्द के प्रथम चरण के अन्तिम वर्ण की आवृत्ति द्वितीय चरण के अन्तिम वर्ण मे हो रही है, अत अन्त्यानुप्रास अलकार है। अब छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास एव अन्त्यानुप्रास की मिली-जुली छटा का अवलोकन कीजिए।

कीच सौ कनक जाके नीच सो नरेस पद,
मीचसी मिताई गरवाई जाकै गारसी।
जहरसी जोग-जाति कहरसी करामाति,
हहरसी हौस पुद्गल-छवि छारसी॥
जाल सौ जगविलास भाल सौ भुवन-वास,
काल सौ कुटम्ब-काज लोक-लाज लारसी।
सीठ सौ सुजस जानै बीठ सो बखत मानै,
ऐसी जाकी रीति ताहि वन्दत बनारसी॥[2]

यहाँ पर क, न, म, ग, क, ह, छ, ज, भ, व वर्ण की आवृत्ति तीन बार हुई है तथा प्रत्येक चरण का अन्तिम "स" आवृत्त हुआ है।

उपमा:—कवि ने अनुप्रास के बाद उपमा अलकार का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है। उनके ग्रन्थ मे इसका द्वितीय स्थान है।

उपमेय तथा उपमान का भेद होने पर उनके साधर्म्य का वर्णन उपमा कहलाता है।[3] कवि ने अपनी कृति मे अनेक उपमाएँ प्रयुक्त की है, किन्तु उन सब का स्पष्टीकरण करना सम्भव नही। उपमा के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है जो कवि की उपमाप्रियता के द्योतक है.—

ज्यौ वरषै बरषा समै, मेघ अखंडित धार।
त्यौ सद्गुरु वाणी खिरै, जगत जीव हितकार॥[4]

यहाँ सद्गुरु को मेघ की उपमा दी गई है। सद्गुरु उपमेय, मेघ उपमान है। वर्षा होना, वाणी खिरना साधारण धर्म है और "समै" शब्द उपमावाचक है।

ऐसौ सुविवेक जाकै हिरदै प्रगट भयौ,
ताकौ भ्रम गयौ ज्यौ तिमिर भागै भानसौ॥[5]

1 समयसार नाटक, निर्जरा द्वार, छन्द ४१
2 समयसार नाटक, वन्ध द्वार, छन्द १९
3. काव्यप्रकाश, १०/१२५
4 समयसार नाटक, साध्य-साधक द्वार, छन्द ६
5 समयसार नाटक, कर्ता कर्म क्रिया द्वार, छन्द ५

यहाँ पर भेदविज्ञान को सूर्य की उपमा दी है। भेदविज्ञान, उपमेय, सूर्य उपमान मिथ्या अंधकार का नष्ट होना साधारण धर्म 'ज्यो' उपमावचक शब्द है। एक अन्य उपमा देखिए—

जाके उर अन्तर निरन्तर अनन्त दर्व,
भाव भासि रहे पै सुभाव न टरतु है।
निर्मल सौ निर्मल सु जीवन प्रगट जाकै,
घट मे अघट रस कौतुक करतु है।।
जागै मति श्रुत औधि मनपर्यै केवल सु,
पचधा तरगनि उमगि उछरतु है।
सो है ज्ञानउदधि उदार महिमा अपार,
निराधार एक मे अनेकता धरतु है।।[1]

यहाँ पर सम्यग्ज्ञान को समुद्र की उपमा दी गई है। सम्यग्ज्ञान उपमेय, समुद्र उपमान, अपने स्वभाव को न छोडना, तरगो का उठना आदि साधारण धर्म तथा "सो" उपमावाचक शब्द है।

रूपक —जहाँ उपमान और उपमेय को एक दूसरे से नितान्त अभिन्न वर्णन किया जाय वहाँ रूपक अलकार माना जाता है।[2] भेदज्ञान के महत्त्व विषयक रूपक का सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है—

भेदग्यान साबू भयौ, समरस निरमल नीर।
धोबी अन्तर आतमा, धोवै निजगुन चीर।।[3]

यहाँ अभेद द्वारा भेदज्ञान को साबुन, समता को निर्मल जल, सम्यग्दृष्टि जीव को धोबी और आत्मगुण को वस्त्र कहा गया है। एक अन्य उदाहरण देखिए—

पूर्वबध नासै सो तो सगीत कला प्रकासै,
नव बध रुधि ताल तोरत उछरिकै।
निसकित आदि अष्ट अग सग सखा जोरि,
समता अलाप चारी करै सुख भरिकै।।
निरजरा नाद गाजै ध्यान मिरदग बाजै,
छक्यौ महानद मै समाधि रीझि करिकै।
सत्ता रगभूमि मै मुकत भयो तिहु काल,
नाचै सुद्धदिष्टि नट ग्यान स्वाग धरिकै।।[4]

यहाँ अभेद द्वारा सम्यग्दृष्टि को नट कहा गया है।

---

1 समयसार नाटक, निर्जरा द्वार, छन्द २०
2 काव्य प्रकाश, १०/६३
3 वही, निर्जरा द्वार, छन्द ६१
4 वही, सवर द्वार, छन्द ६

उत्प्रेक्षा.—कवियो ने किसी नई सूझ या कल्पना का चमत्कार दिखाने के लिए उत्प्रेक्षा अलकार का सबसे अधिक आश्रय लिया है। सादृश्य के आधार पर प्रस्तुत वस्तु मे अनेको (एक के बाद दूसरी) अप्रस्तुत वस्तुओ की योजना करना कुशल कवियो का उद्देश्य रहा है। अत अनेक आचार्यो ने उत्प्रेक्षा का विस्तार के साथ विवेचन किया है। मम्मट ने प्रकृत (उपमेय) के समान (उपमान) के साथ एक्य को सम्भावना को उत्प्रेक्षा कहा है।[1] कवि बनारसीदास ने भी उत्प्रेक्षा को महत्त्व दिया है। उनकी कृति मे अर्थालकारो मे मात्रा की अपेक्षा उपमा का तथा चमत्कार की दृष्टि से उत्प्रेक्षा का स्थान सर्वोपरि है। उत्प्रेक्षा के उदाहरण देखिए—

ऊचे-ऊचे गढ के कगूरे यौ विराजत है,
मानौ नभलोक गीलिवेकौ दाँत दियो है।
सोहै चहू ओर उपवन की सघनताई,
घेरा करि मानौ भूमिलोक घेरि लीयौ है ।।[2]

एक अन्य उदाहरण देखिए—

प्रथम नियत नय दूजी विवहारनय,
दुहूकौ फलावत अनत भेद फले है।
ज्यौ ज्यौ नय फलै त्यौ-त्यौ मन के कल्लोल फलै,
चचल सुभाव लोकालोक लौ उछले है ।।[3]

दृष्टान्त:—जहाँ दो वाक्यो मे एक उपमेय वाक्य होता है तथा दूसरा उपमान वाक्य। दोनो वाक्यो मे उपमान, उपमेय, साधारण धर्म आदि का परस्पर बिब-प्रतिबिम्ब भाव प्रतीत हो वहाँ दृष्टान्त अलकार होता है।[4] कवि ने आत्मा की बात को समझाने के लिए अनेक दृष्टान्तो द्वारा अलकार का प्रयोग किया है। भेदविज्ञान की प्राप्ति मे धोबी के वस्त्र का दृष्टान्त प्रस्तुत है—

जैसै कोऊ जन गयौ धौबी कै सदन तिन,
पहिर्यौ परायौ वस्त्र मेरौ मानि रह्यौ है।
धनी देखि कह्यौ भैया यह तौ हमारौ वस्त्र,
चीन्है पहिचानत ही त्यागभाव लह्यौ है।
तैसै ही अनादि पुद्गलसौ सजोगी जीव,
सग के ममत्व सौ विभाव तामे बह्यौ है।
भेदज्ञान भयौ जब आपौ पर जान्यौ तव,
न्यारौ परभावसौ स्वभाव निज गह्यौ है ।।[5]

यहाँ छन्द का पूर्वार्द्ध उपमान वाक्य, उत्तरार्द्ध उपमेय वाक्य का प्रतिबिम्ब रूप है। इस दृष्टान्त मे धर्म एक न होकर साधर्म्यता है। एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है—

---

1 काव्यप्रकाश १०/१३७
2 समयसार नाटक, जीव द्वार, छन्द २८
3. समयसार नाटक कर्ता कर्म क्रिया द्वार, छन्द २७
4 काव्यप्रकाश १०/१५५
5 समयसार नाटक, जीवद्वार छन्द ३२

जैसे फिटकडी लौद हर्डे की पुट बिना,
स्वेत वस्त्र डारिये मजीठ रग नीर मे ।
भीग्यौ रहै चिरकाल सर्वथा न होइ लाल,
भेदे नही अन्तर सुफेदी रहै चीर मे ।।
तैसे समकितवत राग द्वेप मोह बिनु,
रहै निशि वासर परिग्रह की भीर मे ।
पूरब करम हरै नूतन न बध करे,
जाचै न जगत-सुख राचै न सरीर मे ।।[1]

यहाँ भी छन्द का पूर्वार्द्ध उपमान वाक्य उत्तरार्द्ध उपमेय वाक्य का प्रतिबिम्बरूप है, अत दृष्टान्त अलकार है ।

छन्द —लोक मे गतिरहित जीवन असम्भव है । जिसतरह सासारिक प्राणी को उनके चरण गतिशील बनाते है उसीतरह कविता को उसमे प्रयुक्त छन्दो के चरण गति प्रदान करते है । गति का सयम नियम ही छन्द है । प्रत्येक प्रवाह या गति मे कुछ नियम अवश्य होता है । प्रवाह या गति के साथ छन्द का सम्बन्ध है । गति देने का कार्य छन्द का है ।[2] जहाँ भी कविता की गति बँधती है वहाँ पर छन्द अवश्य होता है । गति कविता का प्राण है अत कविता छन्द को छोड नही सकती ।[3]

छन्द मे वाणी की अनियमित साँसे नियन्त्रित हो जाती है । उसके स्वर मे प्राणायाम, रोओ मे स्फूर्ति आ जाती है, राग की असम्बद्ध झकारे एक वृत्त मे बँध जाती है, उनमे परिपूर्णता आ जाती है । छन्दबद्ध शब्द चुम्बक के पार्श्ववर्ती लौहचूर्ण की तरह अपने चारो ओर एक आकर्षण क्षेत्र (मेगनेटिक फील्ड) तैयार कर लेते है, उनमे एक प्रकार का सामञ्जस्य, एक रूप, एक विन्यास आ जाता है, उनमे राग की विद्युत्धारा बहने लगती है, उनके स्पर्श मे एक प्रभाव तथा शक्ति पैदा हो जाती है ।[4]

कवि की प्रतिभा का निर्णय उपयुक्त छन्द के चुनाव मे और उसके स्वाभाविक निर्वाह मे हो जाता है । छन्द का सम्बन्ध जीवन की मनोवृत्तियो मे है और उन्ही का स्वाभाविक ज्ञान कवि को होता है । छन्द जीवन की स्वाभाविक गति से सम्बन्ध रखता है ।[5]

यहाँ पर छन्द का तात्पर्य ऐसे श्लोक या कविता से है जो श्रोता को आनन्दित कर सके । सस्कृत साहित्य मे छन्द को दो भागो मे बाँटा गया है – (१) वर्णिक छन्द – वृत्तछन्द (२) मात्रिक छन्द – जातिछन्द ।

---

1 समयसार नाटक, निर्जरा द्वार, छन्द ३४
2 हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास, पृष्ठ ४१४
3 वही, पृष्ठ ४१२
4 (क) वल्लभ, भूमिका, पृष्ठ ३४
(ख) सस्कृत शतक परम्परा और आचाय विद्यासागर के शतक, पृष्ठ ५५३
5 हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास, पृष्ठ ३३१

छन्दो को जब चरणो, वर्णो और मात्राओ के आकर्षक बन्धन मे निबद्ध किया जाता है तब उसमे प्रवाह, सौन्दर्य और ज्ञेयता आ जाती है। ऐसे छन्दो को जब पाठक या श्रोता पढता या सुनता है तो उसे मधुर सगीत का आनन्द प्राप्त होता है।

प्राय देखा जाता है कि प्रत्येक कवि के अपने विशेष छन्द होते है जिनमे उसकी छाप-सी लग जाती है, जिनके ताने-बाने मे वह अपने उद्गारो कुशलतापूर्वक बुन सकता है।

कविवर बनारसीदास ने समयसार नाटक मे निम्नाकित नौ प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है। इनमे दोहा, सोरठा की सख्या सर्वाधिक है। विशिष्ट छन्दो मे प्रवीणता कवि को साधना का परिणाम है।[1]

| छन्द-नाम | सख्या |
|---|---|
| १. दोहा-सोरठा | ३१० |
| २ इकतीसा सवैया | २४५ |
| ३ चौपाई | ८६ |
| ४ तेइसा सवैया | ३७ |
| ५ छप्पय | २० |
| ६ कवित्त (घनाक्षरी) | १८ |
| ७. अडिल्ल | ७ |
| ८ कुंडलिया | ४ |

गुण:—"गुण" शब्द का अभिप्राय है - वृद्धि करने वाला। लौकिक जगत् मे गुणवान व्यक्ति मे शौर्य, औदार्य, सरलता, धैर्य आदि गुण विशेष रूप से पाये जाते है और काव्य (साहित्य) मे माधुर्य, ओज, प्रसाद गुण देखे जाते है। साहित्यजगत् मे माधुर्यादि गुण जिस रूप मे प्रयुक्त किये जायेगे, रसाभिव्यजना उसी अनुपात मे होगी।

**समयसार नाटक मे माधुर्य गुण:**—मन को द्रवीभूत करनेवाला सयोग शृ गार मे विद्यमान आह्लादस्वरूप गुण ही माधुर्य गुण है। सयोग शृ गार के अतिरिक्त इस गुण का चमत्कार करुण, विप्रलम्भ और शान्तरस मे क्रमिक अतिशयता से देखा जा सकता है। समयसार नाटक अध्यात्मग्रन्थ है। यह कृति शान्तरस-प्रधान है। इसमे करुणरस भी मिलता है, अत इसमे माधुर्यगुण की प्रचुरता है। इसके उदाहरण द्रष्टव्य है—

परमपुरुष परमेसुर परमज्योति,
परब्रह्म पूरन परम परधान है।
अनादि अनत अविगत अविनाशी अज,
निरदुन्द मुकत मुकुद अमलान है।।

1 समयसार नाटक, अन्तिम प्रशस्ति, छन्द ३९

निरावाध निगम निरजन निरविकार,
निराकार ससारसिरोमनि सुजान है।
सरवदरसी सरवज्ञ सिद्ध स्वामी सिव,
घना नाथ ईस जगदीस भगवान है ।।[1]

इस उदाहरण मे शातरस प-त-वर्ग का प्रयोग तथा समासरहित रचना हाने से माधुर्यगुण है।

**समयसार नाटक मे ओजगुण** —वीर, वीभत्स एव रौद्ररस मे क्रमशः अतिशय से रहनेवाली चित्त के विस्तार की कारणरूप दीप्ति को ही ओज कहते है। शातरस प्रधान इस कृति मे ओजगुण कम हीदृष्टिगोचर होता हैं। इस कृति मे दीर्घ समासयुक्त पदावली का तो पूर्ण अभाव ही है। इसमे कही कही वीभत्स रस एव ट-वर्ग का प्रयोग मिलता है। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है –

ठौर ठौर रकत के कुड केसनि के झुड,
हाडनि सौ भरी जैसे थरी है चुरैल की।
नैकुमे धकाके लगै ऐसै फटि जाय मानौ,
कागदकी पूरी किधौ चादरि है चैल की।
सूचै भ्रम वानि ठानि मूढनि सौ पहिचानि,
करै सुख हानि अरु खानि वदफैल की।
ऐसी देह याही के सनेह याका सगति सौ,
ह्वै रही हमरी मति कोल्हूकेसे बैल की ।।[2]

वीभत्स रस के इस उदाहरण मे ट-वर्ग का प्रयोग एव ठ, क वर्णों की (एक ही अक्षर की) आवृत्ति हुई है अत ओजगुण है।

**समयसार नाटक मे प्रसाद गुण** — सव रसो मे स्थिर रहनेवाले गुण को प्रसाद गुण कहा जाता है। जिस रचना को पढते ही उसका अर्थ स्पष्ट हो जाये वहाँ प्रसादगुण होता है। कवि की आध्यात्मिक कृति प्रसाद गुणोपेत है। इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–

जो पूरवकृत करम-फल, रुचि सौ भुजै नाहि।
मगन रहै आठो पहर, सुद्धातम पद माहि ।।
सो बुध करमदसा रहित पावै मोख तुरत।
भुजै परम समाधि सुख, आगम काल अनत।।[3]
माया छाया एक है, घटै बढै छिनमाहि।
इन्हकी सगति जे लगै, तिन्हहि कहू सुख नाहि ।।[4]

1 समयसार नाटक, उत्थानिका, छन्द ३६
2 वही, वन्ध द्वार, छन्द ४१
3 वही, सर्वविशुद्धि द्वार, छन्द १०४-१०५
4 वही, साध्य-सावक द्वार, छन्द ८

इस छन्द को पढते ही अर्थ स्पष्ट हो जाता है, अत यहाँ पर प्रसाद गुण है ।

**भाषा** —विचारो की अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन भाषा है । योद्धा के हाथ मे जो महत्त्व तलवार का होता है, काव्यकार के काव्य मे वही महत्त्व भाषा का है । कला-पक्ष मे भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

महाकवि बनारसीदास के समयसार नाटक की लौकिक भाषा मे प्रौढता, मधुरता, प्रासादिकता, अलकारिकता, सरलता नदी के समान प्रवाहशीलता आदि गुण एक साथ ही दृष्टिगोचर होते है । समस्त पदो का अभाव होने से भाषा सरल, बोधगम्य हो गयी है । कवि अपने समीपस्थ वातावरण, पाठक एव श्रोता की बौद्धिक क्षमता तथा विषय की निस्सीमता से अपरिचित नही है, अतः वह विषय को सहज बोधगम्य, उदाहरणमयी भाषा मे रखता है । कवि ने अपनी कृति मे देश-काल एव विषयवस्तु के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है, दार्शनिक तत्त्वो को माधुर्य एव प्रसादपूर्ण भाषा में समझाया है ।

**शैली** — भावपक्ष और कलापक्ष को जोडने का साधन शैली है । यह एक ऐसा तत्त्व है जिससे कवि की मौलिकता की परीक्षा पाठक कर सकता है । शैली का अभिप्राय है – ढग, तरीका । साहित्य के क्षेत्र मे कवि या लेखक अपने विचारो को व्यक्त करने का जो तरीका अपनाता है वही उसकी शैली कहलाती है । प्रत्येक कवि की अपनी-अपनी शैली होती है । किसी की शैली भावपक्ष की अभिव्यजना कराती है तो किसी की शैली उसके पाडित्य प्रदर्शन की साधक होती है ।

काव्यशास्त्र मे शैली के तीन प्रकार है – वैदर्भी, गौडी और पाचाली ।

समयसार नाटक मे प्रमुखतः वैदर्भी शैली दृष्टिगोचर होती है । गौडी शैली का सर्वथा अभाव है । अर्थ की स्पष्टता, भावव्यक्ति एव शब्दविन्यास का सौन्दर्य उनकी शैली के विशिष्ट गुण है ।

विषय वस्तु को स्पष्ट करने के लिए वे विविध शैलियो का प्रयोग करते है । कही प्रश्नोत्तरो के रूप मे अपने विषय को स्पष्ट करते है तो कही तर्कों द्वारा तथ्यो को सिद्ध करते है । जैसे कवि को मोक्ष का उपाय समझाना है तो पहले उन्होने आत्मस्वरूप मे स्थिरता को मोक्ष का उपाय बतलाया, तत्पश्चात् शुभाशुभ कर्मों को आत्मा का विभाव स्पष्ट किया । विभाव भाव को मोक्ष मे बाधक बताकर प्रश्न उठाये । प्रश्नो का समाधान कर अपने विषय को स्पष्ट किया ।[1] इसी प्रकार कवि ने पुण्य-पाप को बध का कारण स्पष्ट किया है । पहले पुण्य-पाप दोनो मे कारण, रस, स्वभाव, फल का भेद बतलाया, तदनन्तर दोनो मे समानता बतलाकर बन्ध का कारण कहा ।[2]

---

1 समयसार नाटक, पुण्य-पाप एकत्व द्वार, छन्द १०-१२
2 वही, वही, छन्द ४-६

प्रस्तुतिकरण जिज्ञासोत्पादक है । प्रत्येक छन्द अपने अग्रिम छन्द की भूमिका तैयार करता है । सम्यक्त्व का वर्णन करते हुए वे कहते है —

> समकित उतपति चिह्न गुन, भूपन दोप विनास ।
> अतीचार जुत अष्ट विधि, वरनौ विवरण तास ।।[1]

इस दोहे को पढते हा पाठक के मन मे सम्यक्त्व के स्वरूप, उसकी उत्पत्ति, चिह्न, आठ गुण, पाँच भूपण, दोप, नाश और अतिचार, सम्यक्त्व के आठ विवरण के विपय को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है । पाठको को जिज्ञासा उत्पन्न कराते हुए अग्रिम छन्दो की भूमिका प्रस्तुत करना शैली की विशेपता है ।

विपय को स्पष्ट करने के लिए अनेक उदाहरणों का प्रयोग किया है। उदाहरणो द्वारा विवेचित विपय को पाठक सहज ही हृदयगम कर लेते है । विपय को समझने के लिए बौद्धिक व्यायाम नही करना पडता । विवेचित विपय को पूर्णरूप से स्पष्ट करने के वाद ही अन्य वात कहते है । इसप्रकार हम कह सकते है कि कवि की शैली भावपक्ष के अनुरूप है ।

कवि ने कलापक्ष के सभी भेदो का प्रयोग अपनी कृति मे किया है। उनका यह कला-प्रयोग भावपक्ष को सवल वनाता है । उनकी कृति पूर्णत अलकृत है । अनुप्रास की व्यापक एव नवीन परपरा निभाने के कारण "उपमा कालिदासस्य" के समान ही "अनुप्रासा वनारसीदासस्य" की उक्ति भी असगत नही होगी । प्राय शब्दालकारो के प्रयोग के कारण कवियो के काव्य दुरूह हो जाते है, जवकि हमारे कवि की कृति अन्त्यानुप्रास के सुष्ठु प्रयोग से और अधिक प्रभावमयी हो गई है । गुण, भापा, शैली, सवाद आदि के प्रयोग मे कवि को स्पृहणीय सफलता मिली है । उनका कलापक्ष पाडित्य-प्रदर्शन का साधन नही वना है । यदि कहा जाये कि कवि ने भावपक्ष और कलापक्ष के मणिकाचन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है तो अतिशयोक्ति नही होगी ।

□

लेखिका-परिचय —शिक्षा वी एससी , एम ए (सस्कृत), शोधकार्य-रत । सम्पर्क सूत्र D/o ज्ञानचन्द जैन 'स्वतन्त्र', श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, घूसरपुरा, मु० पो० गजवासौदा, जिला – विदिशा (म० प्र०) ।

---

1 समयसार नाटक, चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, छन्द २६

# विविध विधाओं के विधायक कविवर बनारसीदास

– बाबूलाल बॉझल 'सहयोगी'

□

हिन्दी जगत के मूर्धन्य जैन कवियो मे कविवर बनारसीदास का स्थान सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित है। आप अद्वितोय प्रतिभा के धनी अनूठे साहित्यकार थे। हिन्दी साहित्य के विकास मे आपकी रचनाओ का योगदान विशेषरूप से रहा है। आपकी सृजनशील काव्य प्रतिभा अद्‌भुत थी। आपने अपने समय की साहित्यिक परम्पराओ का निर्वाह करते हुए कई नई साहित्यिक विधाओ को जन्म दिया है।

आप हिन्दी के प्रथम आत्मचरित-लेखक के रूप मे तो सर्वमान्य है ही, साथ ही आपकी लेखनी ने अन्य विविध विधाओ को सृजन के नये आयाम दिये है। आपके समकालीन साहित्यकारो मे ऐसा अन्य कोई नही है, जिसने साहित्य की इतनी विधाओ पर अधिकारपूर्वक अपनी लेखनी चलाई हो। आपकी रचनाओ मे अध्यात्म और साहित्य का सहज सुन्दर समन्वय स्पष्ट परिलक्षित होता है।

बनारसीदास की रचनाओ को उनके शास्त्रीय अध्ययन और साहित्यिक कसौटियो के आधार पर साहित्य की निम्न विधाओ मे अधिकारपूर्वक प्रतिष्ठित किया जा सकता है :—

(१) मुक्तक पद और गीत (२) खण्ड काव्य (३) पद्यात्मक नाटक (४) कोष (५) निबन्ध और अनुवाद (६) आत्मकथा (७) भक्ति के स्रोत और गीत (८) सुभाषित और प्रेरणा गीत।

विक्रम की १७वी शताब्दी मे हिन्दी की उक्त विधाओ पर कविवर बनारसीदास का सजनशील व्यक्तित्व सुखद आश्चर्य का प्रतीक है।

बनारसीदास द्वारा रचित साहित्य निम्नप्रकार से पुस्तकाकार रूप से प्रकाशित होकर उपलब्ध है। जिसमे वर्णित सभी विधाओ की रचनाएँ समाविष्ट है। रचनाक्रम के क्रमिक विकास के आधार पर उन्हे निम्न क्रम से रखा जा सकता है।

(१) मोह-विवेक युद्ध (२) बनारसी नाममाला (३) बनारसी विलास (४) नाटक समयसार (५) अर्द्धकथानक।

बनारसीदास का प्रारभिक जीवन अत्यन्त मनमौजी और आसिख-मिजाज रहा है। अनग का रग उन्हे अल्प वय मे ही लग गया था जिसका प्रमाण वि सवत् १६५७ मे केवल १४ वर्ष की आयु मे रचित उनकी रचना "नवरस" है, जो शृगार के शिखर को स्पर्श करती हुई एक हजार पदो से युक्त नवरसो के शास्त्रीय वर्णन की अद्वितीय, विशद और ललित रचना थी। इसका उल्लेख उन्होने अपने आत्मचरित "अर्द्ध कथानक" मे स्पष्ट रूप मे किया है।

पोथी एक बनाई नई। मित हजार दोहा चौपई ॥१७८॥

तामैं नव रस रचना लिखी। पै विसेस बरनन आसिखी ॥
ऐसे कुकवि बनारसी भये। मिथ्या ग्रथ बनाये गये ॥१७९॥

पर हिन्दी साहित्य का यह दुर्भाग्य रहा कि इस नवरसो के अद्वितीय लक्षण-ग्रथ को कवि ने स्वय अपने हाथो से गोदावरी नदी मे प्रवाहित कर दिया। इस ग्रथ को गोदावरी मे समर्पित करने का कारण भी रहा है, क्योकि बिना कारण के कोई काय कभी होता ही नही। "नवरस" रचना पूर्ण होते ही यत्र तत्र सर्वत्र उसकी चर्चा और प्रशसा होने लगी। रसिक मित्रमण्डली इस रचना के छन्दो को सुनने सदैव बनारसीदास को घेरे रहती थी। इसी समय बनारसीदासजी की भेट अध्यात्मरसिक पडित और समर्थ कवि राजमल्लजी से हुई। उन्होने बनारसीदास को श्री अमृतचन्द्राचार्य देव के समयसार कलशो पर लिखी हुई अपनी "बालबोध टीका" पढने को दी। उसके अध्ययन और चिन्तन से बनारसीदास के हृदय-कपाट खुल गये, उनके विचारो मे अभिनव विचार-क्रान्ति हुई। आसिख मिजाज कवि अध्यात्म-रसिक हो गये। पूर्व जीवन-वृत्त पर पटापेक्ष हुआ और नये जीवन ने जन्म लिया। परिणामस्वरूप "नवरस" रचना को सदा-सदा के लिये गोदावरी की गोद मे सोना पडा।

"नवरस" के अतिरिक्त बनारसीदासजी की उपलब्ध और प्रकाशित रचनाओ का सक्षिप्त विवरण यहाँ दे रहा हूँ जो उनकी प्रतिभा और सृजनात्मक प्रवृत्ति पर प्रकाश डालने मे सहायक होगा।

**मोह-विवेक युद्ध** —यह नवरस के जल-समाधि देने के पश्चात् बनारसीदासजी की पहली रचना प्रतीत होती है, जो सवाद शैली मे लिखी हुई पद्य रचना है। इस रचना मे वासनामयी मनोवृत्ति की खुलकर निन्दा की गई है। "विवेक" और "मोह" इस रचना के नायक और प्रतिनायक है। दोनो ही अपने-अपने तर्कों और उक्तियो से अपनी-अपनी महत्ता प्रतिपादित करने का प्रयत्न करते है, किन्तु अन्त मे मोह विवेक के तर्कों और उक्तियो से परास्त हो जाता है और विवेक को विजयश्री प्राप्त होती है। एक सौ दस छन्दो मे निबद्ध यह रचना कवि की नई विचारधारा को दिग्दर्शित करती है।

इस रचना को बनारसीदास की मानने मे विद्वान और अन्वेषक एक मत नही है। प नाथूराम प्रेमी इसे बनारसीदास की रचना मानने को सहज सहमत नही है तो

जैन जगत के प्रसिद्ध और समर्थक शोधक श्री अगरचन्द नहाटा ने इसे बनारसीदास की रचना स्वीकार करते हुए अपने अनेक तर्क प्रस्तुत किये है। बनारसीदास पर शोध करने-वाले विद्वान डॉ रविन्द्रकुमार जैन ने अपने शोध प्रबध "कविवर बनारसीदास" मे इस रचना की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की है किन्तु ठोस प्रमाणो के अभाव मे वह इसे बनारसीदास की रचना मानने का साहस नही कर सके है। पर रचना की विषयवस्तु एव प्रस्तुतीकरण और तर्कों के आधार पर मेरी मान्यता नाहटाजी के अधिक निकट है।

**नाममाला** —यह बनारसीदासजी की उपलब्ध रचनाओ मे पहली प्रमाणिक रचना है। जो अश्विन शुक्ल दसमी सोमवार वि स १६७० मे पूर्ण हुई थी। यह पद्यमय हिन्दी शब्द-कोष है। यह रचना सस्कृत के प्रसिद्ध कवि धनजय की "सस्कृत नाममाला" एव "अनेकार्थ नाममाला" से प्ररणा लेकर लिखी गई है। यह अत्यन्त सुबोध और सरल रचना है। इस कोष मे हिन्दी, सस्कृत और प्राकृत के पर्यायवाची शब्दो को बडे सुन्दर ढग से सजाया गया है जो कवि की शब्द-सामर्थ्य और प्रतिभा का प्रत्यक्ष रूप से दर्शन कराती है। इसमे १७५ दोहा छन्द है जो सहज रूप से शब्द के अनेक और पर्यायवाची शब्दो का परिचय कराते है। कुछ उदाहरण देखिये – "सुन्दर" शब्द के अनेक और पर्यायवाची शब्द .—

सुन्दर सुभग मनोहरन, कल मजुल कमनीय।
रुचिर चारु अभिराम वर, दरसनीय रमनीय ।।

इसीप्रकार "विद्वान" शब्द के विषय मे देखिये :—

विवुध सूर पडित सुधी, कवि कोविद विद्वान।
कुशल विचक्षण निपुन पटु, क्षम प्रवीन धीमान ।।

**बनारसी विलास** :—बनारसी द्वारा रचित प्रारभ से अन्त तक की स्फुट और विविध विधाओ की रचनाओ का सुन्दर सकलन है। यह सकलन एक ऐसी रत्नमजूषा है जिसमे चुने हुए रत्नो को इसप्रकार सँजोया गया है जो एक ही दृष्टि मे अपने द्रष्टा को अभिभूत कर देता है। कविवर बनारसीदास के स्वर्गारोहण के तुरन्त पश्चात् ही उनके अभिन्न मित्र प श्री जगजीवनजी ने उनकी उपलब्ध रचनाओ का सकलन प्रारभ कर दिया था। यह सकलन चैत्र शुक्ला द्वितीया वि.स १७०१ मे पूर्ण हो गया था।

संकलन के आदि मे ही तीन इकतीसा सवैयो द्वारा सकलन मे सम्मिलित ५७ रचनाओ के नामो का उल्लेख कर दिया गया है। इन रचनाओ के अतिरिक्त प श्री नाथूराम प्रेमी ने ३ तथा डॉ कस्तूरचदजी कासलीवाल ने २ नये पद खोजे है। उनका सकलन भी बनारसी विलास मे कर दिया गया है। इसप्रकार 'बनारसी विलास" मे बनारसीदासजी की ६२ स्वतत्र रचनाओ का सकलन किया गया है। इस सकलन मे उनकी पद्य-रचनाओ के साथ ही "परमार्थवचनिका" और "उपादान-निमित्त की चिट्ठी" गद्य रचनाओ को भी समाविष्ट किया गया है। इन रचनाओ के अतिरिक्त भी यदि जैन साहित्य भण्डारो मे कोई शोधार्थी खोज करे तो अन्य रचनाओ की उपलब्धि की सम्भावनाओ को नकारा नही जा सकता।

**नाटक समयसार** :—कविवर बनारसीदासजी की सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक और साहित्यिक रचना है। जो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो ही सम्प्रदायो मे समादरणीय मान्यता प्राप्त है। कलिकाल सर्वज्ञ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के महान आध्यात्मिक ग्रन्थराज "समयसार" प्राभृत के हार्द को आचार्य भगवान अमृतचद्र देव ने "आत्मख्याति" नामक टीका के द्वारा सुस्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। जिन गाथाओ के हार्द को वह अपनी टीका मे सुस्पष्ट न कर सके उन पर स्वतन्त्र और मौलिक "कलशो" की रचना कर गाथाओ के सूक्ष्मतर भावो को समझने मे सफल हुए है।

इन्ही कलशो के भावो को सर्वसाधारण को हृदयगम कराने के लिये प. प्रवर राजमल्लजी पाण्डे ने ढु ढारी भाषा मे बालबोधिनी टीका लिखी है। इस टीका के आधार पर ही "समयसार कलशो" का भावानुवाद बनारसीदासजी ने "समयसार नाटक" मे किया है। नाटक समयसार मात्र भावानुवाद ही नही है अपितु कविवर बनारसीदास के स्वतन्त्र और मौलिक चिन्तन का सर्वोत्कृष्ट सुपरिणाम है। अमृतचन्द्राचार्य द्वारा रचित कलशो की सख्या तो मात्र २७८ ही है, पर 'नाटक समयसार' मे ७२७ विभिन्न छन्दो का समावेश है। जो छन्दशास्त्र की दृष्टि से पूर्णरूपेण निर्दोष रचना है।

हिन्दी साहित्य के विकास मे इस रचना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। "नाटक समयसार" कविवर की प्रतिभा, भावाभिव्यक्ति और मौलिक सृजनशीलता का जीवन्त उदाहरण है। इस रचना के द्वारा विश्व की वस्तुस्थिति का वास्तविक दिग्दर्शन कराते हुए आत्मा की परम शुद्ध अवस्था को हाथ पर रखे हुए आँवले के समान स्पष्ट दर्शन कराने का समर्थ प्रयास किया गया है। इसकी रचना आश्विन शुक्ला त्रयोदशी वि. स १६९३ को मुगल सम्राट शाहजहाँ के शासनकाल मे आगरा मे पूर्ण हुई थी।

"नाटक समयसार" अध्यात्म रसिक व्यक्तियो को सर्वप्रिय रहा है। वर्तमान युग के महान आध्यात्मिक सत कानजी स्वामी को यह रचना बहुत प्रिय थी तथा उन्हे इसके प्रचार-प्रसार मे बहुत प्रमोद आता था। मेरे हृदय मे कविवर बनारसीदास और उनके समयसार नाटक की महत्ता को प्रदर्शित करने वाले भाव सहज ही प्रस्फुटित हुए हैं—

"नभ का छोर मिला है किसको, मन की गति को मापा किसने ?
अन्तर की गहराईयो को, नापा है अब तक किस-किसने ?
कवि बनारसी की कविता मे, गागर मे सागर लहराता—
'नाटक समयसार' सी रचना, मुझे बताओ की है किसने ?"

**अर्द्धकथानक** :—यह कविवर बनारसीदास द्वारा प्रणीत हिन्दी साहित्य का ही नही, अपितु सभी भारतीय भाषाओ का प्रथम पद्यमयी आत्मचरित है, जिसने हिन्दी साहित्य मे अपना नवीन कीर्तिमान स्थापित किया है। यह रचना बनारसीदास की दूरदृष्टि और साहित्यिक सजगता का मूर्त प्रमाण है।

आत्मचरित लेखन की विधा हिन्दी साहित्य की आधुनिक विधा मानी जाती है किन्तु लगभग ३५० वर्ष पूर्व लिखा गया कविवर बनारसीदासजी का "अर्द्धकथानक" आज भी आत्मकथा साहित्य की शास्त्रीय कसौटी पर खरा सिद्ध हुआ है।

इस कृति मे कवि ने अपने यथार्थ जीवन का निःसकोच आत्मविश्वास के साथ अपनी कमजोरियो का निश्छलता के साथ स्पष्ट अंकन किया है। जो कुछ भी जैसा है, सब कुछ खुली किताव के समान सामने है। कही कुछ दुराव-छिपाव नही। अर्द्धकथानक मे कवि का अपना जीवन चरित्र तो है ही साथ ही तत्कालीन ऐतिहासिक राजनैतिक और सामाजिक स्थितियो/परिस्थितियो का भी सफल चित्रण हुआ है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि कविवर बनारसीदास ने हिन्दी साहित्य मे नई विधाओ को जन्म देकर उसके उन्नयन मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। साहित्य, सस्कृति और अध्यात्म का सुन्दर समन्वय उनकी रचनाओ मे भरपूर है। पर यह दुखद आश्चर्य है कि हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो ने उनके साथ न्याय नही किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उनके नाम मात्र का ही उल्लेख मिलता है। उन्हे सम्प्रदाय विशेष का कवि मानकर उपेक्षित कर दिया गया है। अब समय आ गया है कि हम उनकी साहित्यिक विशेषताओ से हिन्दी-जगत को परिचित कराते हुए हिन्दी साहित्य मे उन्हे अपने यथोचित स्थान पर प्रतिष्ठापित कराने का प्रयत्न करे। उनके साहित्य पर शोध की बहुत अधिक आवश्यकता है।

लेखक-परिचय.—उम्र ५३ वर्ष। शिक्षा एम ए (हिन्दी)। अभिरुचि धार्मिक अध्ययन, मनन एव सामाजिक कार्य। योगसार के पद्यानुवादक। सम्प्रति प्रधानाध्यापक, माध्यमिक विद्यालय। सम्पर्क-सूत्र जयप्रकाश मार्ग, गुना (म० प्र०)-473001 ☐

# बाना-रसी बनारसी

– बाल ब्र० कल्पना जैन

बाना का अर्थ है – वेष, रूप, आकार, प्रकार, दशा, हालत, अवस्था, पर्याय। उनमे जो रसीला है, आनन्दित है, लीन है, उसे बाना-रसी कहते है। हिन्दी साहित्य की प्रत्येक विधा को अपनी लेखनी से सुशोभित करनेवाले अध्यात्म-रसिक कविवर बनारसी दासजी वास्तव मे अपने पूर्वार्द्ध मे बाना-रसी ही थे। जीवन मे घटित हर घटना मे प्रसन्नचित्त रहनेवाले बनारसीदासजी जैसा विचित्र जीवन (एक ही भव मे) शायद ही किसी का रहा हो। धनी भी, निर्धन भी, शृगारिक वासनायुक्त भी, वासनामुक्त भी, रूढियो तथा अधविश्वासो के जितने पक्षधर, बाद मे उससे भी अधिक सुधारक अर्थात् उन्ही रूढियो के विनाशक भी, शिवभक्त भी एव जिनभक्त भी, ईश्वर-कर्तृत्व के पोषक भी तथा शोषक भी, सुत-दारा का बहुल सयोग भी तथा एकदम वियोग भी, भुक्षित कचौड़ी का मूल्य देने मे असमर्थ कर्जदार भी तथा ब्राह्मणो का गया धन देने मे समर्थ साहूकार भी, कपडे का जनेऊ तथा मिट्टी का तिलक कर चोरप्रमुख को ब्राह्मण बनकर आशीर्वाद देते हुए छलिया भी तथा हृदय के सरल तथा पवित्र होने से निश्छल भी, टीकाकर्ता भी तथा स्वतत्रग्रन्थकर्ता भी इत्यादि न जाने कितने परस्पर विरोधी रूप उनके जीवन मे दिखाई देते है।

कार्यक्षेत्र भी ऐसी ही विविधताओ से भरा है। समयसार नाटक जैसे महाकाव्य तथा मोह-विवेक युद्ध और कर्मप्रकृति विधान जैसे खण्डकाव्य के आप सजक है। हिन्दी साहित्य के गद्य तथा पद्य दोनो ही आपकी तूलिका से समलकृत है। जहाँ एक ओर उपादान-निमित्त की चिट्ठी तथा परमार्थवचनिका जैसे प्रबध काव्यो के आप स्रष्टा है, वही दूसरी ओर ज्ञानपच्चीसी, ध्यानबत्तीसी, शिवपच्चीसी अध्यात्मगीत, पचपदविधान, षोडस तिथि, तेरह काठिया आदि अनेक मुक्तक काव्यो के स्रष्टा है। यदि अर्द्धकथानक लिखकर हिन्दी साहित्य की आत्मकथा विधा को प्रस्फुटित किया है तो वही बनारसी नाममाला लिखकर कोष विधा को भी। कल्याणमन्दिर स्तोत्र, अजितनाथ के छद, शान्तिनाथ छद, जिनसहस्रनाम जैसे यदि भक्तिपरक साहित्य को वृद्धिगत किया तो

षट्दर्शनाष्टक के द्वारा दशनपरक साहित्य को भी। 'वेदनिर्णय पचासिका" के द्वारा यदि निराय प्रधान ग्रन्थ ग्रथित किये तो "गोरखनाथ के वचन" रचना से समन्वयात्मक ग्रथ भी। "सूक्त मुक्तावली" द्वारा नीति का प्रदर्शन किया तो "अध्यात्मगीत" आदि के द्वारा आत्मस्वरूप का भी। 'त्रेसठ शलाका पुरुषो की नामावली" से यदि हमे प्रथमानुयोग से अवगत कराते है तो मार्गणाविधान, कर्मप्रकृतिविधान, कर्मछत्तीसी द्वारा करणानुयोग से भी। "नाटक समयसार" के माध्यम से यदि हमे आध्यात्मिक बनाते है तो दशदानविधान, पचपदविधान, अष्टप्रकारी जिनपूजन से सत्य-साधक श्रावक भी। यदि "नवसेनाविधान", "वैद्य आदि के भेद" के रूप मे ज्ञेय सामग्री प्रस्तुत करते है तो "अध्यात्मफाग", "पहेली" आदि के रूप मे अह्लादकारक सामग्री भी।

कविवर बनारसीदासजी की लेखनी हर विषय को अति स्पष्ट, सरल, सुबोध भाषा मे व्यक्त करनेवाली है। विविध विषयो के चित्रण स्वरूप भी कही भी कविवर भाषाहीन अथवा भावहीन नही हुए। टीका ग्रन्थो मे भी विषय को सर्वांगीण हृदयगम करके व्यक्त करने के कारण स्वतत्र ग्रन्थो की तरह आनन्द प्रदान करने मे अति सफल हुए है। रस, छद, अलकार, व्याकरण सभी की दक्षता समान रीति से उभर कर सामने प्रस्तुत हुई है। अति गम्भीर से गम्भीर सिद्धान्तो को भा अति सरल, सुबोध शैली मे प्रस्तुत किया है। प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक विधा, प्रत्येक विषय मे समभावपूर्वक कार्य करने वाला व्यक्ति आत्मज्ञानी ही हो सकता है, अन्य नही। नित्य एक स्वरूप से भलीभाँति परिचित प्राणी ही विविधताओ मे समता कायम रख सकता है। यह कथन अतिशयोवितपूर्ण न होगा कि बनारसीदास का जीवन सर्वजन-असुलभ एव अति विषमताओ मे समता-समाहित रहा है।

आपकी हर कृति आध्यात्मिक रस से ओत-प्रोत, आत्महित की प्रेरणादायक, वैराग्यप्रेरक, सदुपदेशमय, तत्त्व तथा वस्तु की पारमार्थिक स्थिति का सम्यग्दर्शन कराने वाली है। "अर्द्ध कथानक" जैसा कथा प्रधान ग्रन्थ भी इनसे ओतप्रोत है।

नवाब किलाच खा के द्वारा जौनपुर-निवासी सर्व जौहरियो पर उत्पात किये जाने से आतकित, भागे हुए पिता खरसेन को साहजादपुर निवासी वणिक करमचन्द के द्वारा प्रश्रय के प्रसग को उद्घाटित करते हुए कवि लिखते है—

> खरगसेन तहा सुख सौ रहै। दसा बिचारि कवीसुर कहै ॥
> वह दुख दियो नवाब किलीच। यह सुख साहिजादपुर बीच ॥१२७॥
> एक दिष्टि बहु अन्तर होइ। एक दिष्टि सुख-दुख सम दोइ ॥
> जो दुख देखै सो सुख कहै। सुख भुजै सोई दुख सहै ॥१२८॥
>
> सुख मै मानै मै सुखी, दुख मै दुखमय होइ।
> मूढ पुरुप की दिष्टि मै, दीसै सुख दुख दोइ ॥१२९॥
> ग्यानी सम्पति विपति मै, रहै एकसी भाति।
> ज्यौ रबि ऊगत आथवत, तजे न राती काति ॥१३०॥

कविवर जिसप्रकार विद्वत्ता आदि अन्यान्य गुणो मे विशिष्ट्य है, उसीप्रकार भावुकता मे भी। इष्ट राजा, सम्बन्धियो आदि के विछोह मे मूर्च्छा उनकी सहज वृत्ति थी। इन प्रसगो को व्यक्त करते हुये उन्होने जो निदान हेतु मूल कारणो की चर्चा की है वह इसप्रकार हे —

लोभ मूल सब पाप को, दु ख को मूल सनेह ।
मूल अजीरन व्याधि को, मरन मूल यह देह ।।५५१।।

इसीप्रकार तृतीय पुत्र के वियोग सम्बन्धी दु ख को व्यक्त करते हुए लिखते है—

जग मे मोह महा बलवान । करहि एक सम जान अजान ।
बरष दोय बीते इस भाति । तऊ न मोह होइ उपशाति ।।

अपनी बात कहते हुए तत्त्वज्ञान का निरूपण कितनी सरल, सुगम शैली मे हुआ है, यह दर्शनीय हे—

कही पचावन बरस लौ, बानारसि की बात ।
तीनि विवाही भारजा, सुता दोइ सुत सात ।।६४२।।
नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नर दोइ ।
ज्यो तरवर पतझार ह्वै, रहे ठूँठ से होइ ।।६४३।।
तत्त्वदृष्टि जो देखिए, सत्यारथ की भाँति ।
ज्यौ जाकौ परिगह घटै, त्यौ ताकौ उपसाति ।।६४४।।
संसारी जानै नही, सत्यारथ की बात ।
परिग्रह सौ मानै विभौ, परिगह बिन उतपात ।।६४५।।

नाटक समयसार तथा अर्द्धकथानक ग्रथ मे पुरुष की तीन कोटियाँ बताते हुए हमे आत्मनिरीक्षण करने के लिए अद्भुत सामग्री प्रस्तुत की है।

मानव-मनोविज्ञान निरूपित करके हमे व्यर्थ के सकल्प-विकल्पो से मुक्ति की कितनी अद्भुत सामग्री प्रदान की है—

कहैं दोष कोउ न तजै, तजै अवस्था पाइ ।
जैसै बालक की दशा, तरुन भए मिटि जाइ ।।२७२।।

औदयिक भाव सभी कर्माधीन – पराधीन है, उनमे परिवर्तन करने का प्रयास व्यर्थ है, अत उनसे उदासीन रहने की प्रेरणा देते हुए कवि लिखते है—

"उदै होत शुभ करम के, भई अशुभ की हानि ।
तातै तुरित बनारसी, गही धरम की बानि ।।२७३।।
पूरब कर्म उदै सजोग । आयो उदय असाता भोग ।।
तातै कुमत भई उतपात । कोऊ कहै न मानै बात ।।
जब लौं रही कर्मवासना । तबलौ कौन विथा नासना ।।
अशुभ उदै जब पूरा भया । सहजहिं खेल छूटि तब गया ।।"

मूढजनो पर माध्यस्थ भाव रखने की प्रेरणा देते हुए लिखते है—

सुनी कहै देखी कहै, कलपित कहै बनाय ।
दुराराधि ये जगत जन, इन्हसो कछु न नसाय ।।

विषयाभिलाषा से व्यक्ति अतिशीघ्र अन्यान्य कल्पित अथवा रागी-द्वेषी देवी देवताओ की उपासना मे तत्पर हो जाता है, जबकि फल मिलता है अपने कृतकर्मों का । ऐसे भोले-भाले प्राणियो के लिये कवि के जीवनागत कई प्रसग अति प्रेरणास्पद है । धन के लोभ मे सन्यासी द्वारा प्रदत्त मत्र का गुप्त गदे स्थान पर बैठकर जाप तथा शिवपूजा के प्रकरण अति शिक्षाप्रद है । शिवपूजा के सम्बन्ध मे लिखते है—

"एक दिवस बानारसिदास । एकाकी ऊपर आवास ।।
बैठ्यो मन मै चिन्तै एम । मैं सिवपूजा कीनी केम ।।२६२।।
जब मैं गिर्यो पर्यो मुरछाइ । तब सिव किछु न करी सहाइ ।।
यहु बिचारि सिवपूजा तजी । लखी प्रगट सेवा मैं कजी ।।२६३।।

इसीप्रकार शृगारिक जीवन तथा असत्य की भयावहता भी प्रेरणादायी है —

"एक झूठ जो बोलै कोइ । नरक जाइ दुख देखै सोइ ।।
मै तो कलपित बचन अनेक । कहे झूठ सब साचु न एक ।।
कैसे बनै हमारी बात । भई बुद्धि यह आकसमात ।।
यहु कहि देखन लाग्यौ नदो । पोथी डार दई ज्यौ रदी ।।

सम्पूर्ण अर्द्ध कथानक ऐसे ही प्रेरक, शिक्षाप्रद तथा तत्त्वज्ञान परक, वस्तुस्वातत्र्य की शिक्षा देनेवाले प्रसगो से भरपूर है । सुख-दु ख दोनो फिरती छाह, जैसी मति तैसी गति होइ, जैसा कातै तैसा बुनै, जैसा बोवै तैसा कुनै, इत्यादिक वाक्य उदाहरण है । समग्र जानकारी तो स्वय अध्ययन-मनन के आधार पर ही सभव है ।

समयसार नाटक तो हिन्दी साहित्य की आध्यात्मिक विधा का सर्वप्रथम अपूर्व ग्रन्थ है ही । विषववस्तु अलौकिक आत्मतत्त्व, तथा प्रतिपादन शैली अति सुगम, सरल, सक्षिप्त, सौष्ठवपूर्ण है । इसकी महिमा कवि ने स्वयं इन शब्दो मे वर्णित की है —

"नाटक सुनत, हिये फाटक खुलत है ।"
"समयसार नाटक अकथ, अनुभवरस भडार ।
याको रस जो जानही, सो पावै भवपार ।।"

प्रस्तुत अध्यात्मप्रधान ग्रन्थ मे वैराग्यप्रेरक प्रसग आदि भी उतनी ही रसपरिपक्वता के साथ वर्णित है । आप ही चार पुरुषार्थो का वास्तविक स्वरूप, चौदह भाव रत्न, नव रसो का आत्मिक स्वरूप, द्रव्य तथा भाव सप्तव्यसन, सुकवि-कुकवि के लक्षण, श्रोता का स्वरूप, निश्चयभक्ति का स्वरूप, व्यवहारभक्ति का यथार्थ स्वरूप तथा भेद, सुमति-कुमति का लक्षण, ससार-शरीर-भोगो का स्वरूप, भेदविज्ञान तथा आत्मानुभूति की अद्भुत कला विशिष्ट प्रतिभा के साथ प्रस्तुत की गई है । स्याद्वाद जैसा क्लिष्ट विषय भी अति सुगम तथा विशद रूप मे आपकी तूलिका से अद्भुत हुआ है ।

मात्र समताभाव मे सुख है, इसके स्पष्टीकरण को प्रोज्ज्वल शैली इसप्रकार है :—

"हासी मैं विषाद बसै विद्या मैं विवाद बसै,
काया मैं मरन गुरुवर्तन मैं हीनता।
सुचि मैं गिलानि बस प्रापति मे हानि बसै,
जै मैं हारि सुन्दर दसा मैं छवि छीनता ॥
रोग बसै भोग मैं सजोग मैं वियोग बसै,
गुन मैं गरब बसै, सेवा माहि हीनता।
और जगरीति जेती गर्भित असाता सेती,
साता की सहेली है अकेली उदासीनता ॥[1]

नाटक समयसार के बधद्वार मे सरल, सक्षिप्त, सोदाहरणिक भाषा मे वर्णित बध के यथार्थ कारण का विवेचन कविवर की विलक्षण प्रतिभा तथा विषय की आत्मसात्‌ता का प्रतीक है। वह इसप्रकार है —

कर्मजाल-वर्गना सौ जग मैं न बधे जीव,
बध न कदापि मन-वच काय-जोग सौं।
चेतन अचेतन की हिंसा सौ न बधै जीव,
बधै न अलख पच-विषै-विष-रोग सौ ॥
कर्म सौ अबध सिद्ध जोग सौ अबध जिन,
हिंसा सौ अबध साधु ग्याता विषै-भोग सौं।
इत्यादिक वस्तु के मिलाप सौ न बधै जीव,
बधै एक रागादि असुद्ध उपयोग सौ ॥[2]

इस कथन को पढकर कोई स्वच्छन्द होकर विषयो मे प्रवृत्त न हो जाये, अत: सावधान करते हुए ज्ञानी की प्रवृत्ति बताते है —

कर्म-जाल-जोग-हिंसा भोग सौ न बंधै पै,
तथापि ग्याता उद्दिमी बखान्यौ जिनबैन मैं।
ज्ञान दिष्टि देत विषै-भोगनि सौं हेत दोऊ,
क्रिया एक खेत यौ तो बने नाहि जैन मै ॥
उदै-बल उद्दिम गहै पै फल कौ न चहै,
निरदै दसा न होइ हिरदै के नैन मैं।
आलस निरुद्दिम की भूमिका मिथ्यात माहि,
जहा न सभारै जीव मोह नीद सैन मैं ॥[3]

धन सम्पत्ति का स्वरूप तथा कौटुम्बिक जनो का स्वरूप बताकर पग-पग पर उनसे विरक्त होने को सीख दी है।

---

1 समयसार नाटक, साध्य-साधक द्वार, छन्द ११
2 वही, बधद्वार, छन्द ४
3 वही, वही, छन्द ६

विविध रीतियो से रत्नत्रय का वर्णन, जीव का स्वरूप, मिथ्यात्व का यथार्थ स्वरूप अति भावभीना प्राञ्जल शैली मे वर्णित है, जो स्वत ही आद्योपात पठनीय, मननीय एव आचरणीय है। ज्ञान के बिना मुक्तिमार्ग सभव नही, इसका विशद विवेचन इस ग्रन्थ मे उपलब्ध है। चतुर्थ गुणस्थानाधिकार तो अपूर्व अधिकार है ही। ग्यारह प्रतिमाओ का अति स्पष्ट विवेचन इसमे वर्णित है। सम्यक्त्व के ९ भेद तथा श्रावक के २१ गुण भी इसी मे वर्णित हैं। सर्वप्रथम बाईस अभक्ष्यो का उल्लेख भी इसी अधिकार मे उपलब्ध है। नव रसो के पारमार्थिक स्थान एक आत्मा को निरूपित करते हुए कवि लिखते है –

गुन विचार सिगार, वीर उद्यम उदार रुख।
करुना समरस रीति, हास हिरदै उछाह सुख ।।
अष्ट करम दल मलन, रुद्र वरतै तिहि थानक।
तन विलेछ वीभच्छ, दुद मुख दसा भयानक ।।
अद्‌भुत अनत बल चितवन, सात सहज वैराग ध्रुव।
नव रस विलास परगास तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव ।।[1]

इसीप्रकार भक्ति के नानारूप प्रदर्शित करते हुए कविवर लिखते है –

"कबहूँ सुमति ह्वै कुमति को विनास करै,
कबहूँ विमल ज्योति अतर जगति है।
कबहूँ दया ह्वै चित्त करत दयाल रूप,
कबहूँ सुलालसा ह्वै लोचन लगति है ।।
कबहूँ आरति ह्वै कै प्रभु सनमुख आवै,
कबहूँ सुभारती ह्वै बाहरि बगति है।
धरै दसा जैसी तब करै रीति तैसी ऐसी,
हिरदै हमारै भगवत की भगति है ।।[2]

निष्कर्ष यह है कि साहित्य की कोई भी विधा, कोई भी विषय पडितजी की लेखनी से अछूता नही रहा। अत्यन्त मनमोहक शैली मे, नवीनतम विचारो के साथ अति गम्भीर सिद्धान्त का भी प्रतिपादन कर देना आपके बाये हाथ का खेल था। उनका जीवन तथा उनकी रचनाये हमारे लिये प्रेरणास्पद बन, इसी मगल भावना के साथ उन ज्ञानी सन्मार्गद्रष्टा कविवर बनारसीदास के प्रति श्रद्धाजलि समर्पित करती हूँ।

लेखिका-परिचय .—उम्र ३५ वर्ष। शिक्षा एम.ए (सस्कृत। अभिरुचि आध्यात्मिक और सैद्धान्तिक विषयो का अध्ययन, मनन, चिन्तन एव न्याय व सिद्धान्त के शिक्षण कार्य मे वैशिष्ट्य। सम्पर्क-सूत्र : ए-४, बापूनगर, जयपुर–३०२०१५

1 समयसार नाटक, सर्वविशुद्धि द्वार, छन्द १३५
2 वही, उत्थानिका, छन्द १४

# कवि बनारसीदास : एक प्रेरक प्रसंग

– देवेन्द्रकुमार पाठक 'अचल' रामायणी

□

गहन अमा की काली रजनी ओढे काला अम्बर।
काली धरा दिशा भी काली काला था नीलाम्बर ।।
नीरवता छाई थी केवल भीगुर स्वर होता था।
किसी गंल के कोई घर मे नन्हा शिशु रोता था ।।१।।

कंदराओ मे यती तपस्वी योगी नग्न उघारे।
साधनाओ को साध रहे थे निज-निज मत से सारे ।।
भौ-भौ ही वस सुन पडती थी कभी-कभी कूकर की।
राही, राह नही दिखती थी कृष्ण रात्रि ऊपर थी ।।२।।

उसी समय अवसर पा करके पाकर गली अकेली।
चला चोर चोरी करने ले चौर्य कला अलबेली ।।
द्वार-द्वार पर जाकर उसने अपने कान लगाये।
भीनी-भीनी आहट हर घर स्वर बिन गेह न पाये ।।३।।

धीरे धीरे कवि बनारसी के द्वारे पर आया।
सोता हुआ गाढ निद्रा मे उसने घर भर पाया ।।
तत्क्षण उठा विचार अरे ! पागल मत देर लगाओ।
छोड कल्पना कवि की पीछे चमत्कार दिखलाओ ।।४।।

युक्ति युक्त लगाकर वह कविजी के भीतर जाकर।
स्वर्णादिक को उठा बाँधने लगा चित्त हर्षाकर ।।
आज सम्पदा जितनी पाई मिली न वह जीवन मे।
व्यय न कर सकूँ किसी तरह भी इस धन को निजपन मे ।।५ ।

कवि बनारसी महापुरुष थे वे क्या जाने सोना।
जगे-जगे से सोते थे ये जो सचमुच अनहोना ।।
देख रहे थे चोर घुसा घर भीतर निर्भय होकर।
चोर सोचता था गृह स्वामी सोता सुध-बुध खोकर ।।६।।

तृष्णा इतनी बढी कि उसने अपना आपा खोकर।
बाँध लिया बोझा अनकूता जल्दी जल्दी ढोकर ॥
जोर लगाकर लगा उठाने हार गया बेचारा।
खाली करने कुछ थोडा-सा खोला बन्धन सारा ॥७॥

छोड बिछौना दौडे कविजी निकट चोर के जाकर।
बोले प्रियवर अलग रखो क्यो सचित द्रव्य उठाकर ॥
चोर सहम करके बोला अपराध क्षमा कर दीजे।
अब न आउँगा चोरी करने जो चाहे सो कीजे ॥८॥

आँखो मे आँसू ले करके अतिशय गद्गद् होकर।
कहा सदय ले जाओ दे रहा अपने हाथ उठाकर ॥
वह धन मेरा नही लगी हो जिस पर दृष्टि तुम्हारी।
यह तेरा धन, धन यह तेरा सम्पत नही हमारी ॥९॥

बिन कुछ बोले भार शीश रख चला स्वगृह हर्षाता।
एक मूर्ख के घर से लाया इसे सँभालो माता ॥
मूर्ख इसलिए रखा उसी ने मेरे शिर उठवाकर।
कहना नही किसी से बोला बार बार समझाकर ॥१०॥

अश्रु बहे छाये कपोल पर चीख कहा माता ने।
क्यो न तुझे सद्बुद्धि लेश भर दी उस जगत्राता ने ॥
तू बनारसीदास सुकवि के घर से धन लाया है।
दानवीर है वही उसी ने सादर उठवाया है ॥११॥

जाओ देकर उन्हे चरण पर शिर रख क्षमा मँगाना।
उनके ही सन्मुख अपनी इस दुर्गति पर पछिताना ॥
माता की ले सीख गया बेटा कविवर के द्वारे।
उठो रखो यह सभी सम्पदा हम लेने से हारे ॥१२॥

मुझे क्षमा दो अब जीवन मे चोरी नही करूँगा।
श्रम से धन उपार्जन करके अपना पेट भरूँगा ॥
उठा पोटरी भीतर रख दी आँसू बरस रहे थे।
खडे देखने वाले धन लख मन मे तरस रहे थे ॥१३॥

कविजी ने दरवाजे बाहर वह गठरी सरका दी।
मुझे क्षमा दो कहा चोर ने फिर गठरी खिसका दी ॥
छप्पर भीतर कवि बनारसी बाहर चोर खडा था।
दोनो के ही बीच गेद जैसा यह खेल मडा था ॥१४॥

वाहर भीतर, भीतर वाहर, ना भीतर, ना वाहर ।
दोनो प्रेमी खेल रहे थे अपना खेल उजागर ।।
वहुत किया कविवर बनारसी उसने एक न मानी ।
धम हेतु धन रखो, लिखो जीवन की नई कहानी ।।१५।।

बन्धन रहित हुआ पहिले से मैं अपनी जाया से ।
वन्धु आज फिर छुटकारा दिलवाया इस माया से ।।
धन वैभव सारे थोथे हैं क्या धरती क्या अम्बर ।
अवसर मिला मुझे रहने दो वनकर सत्य दिगम्बर ।।१६।।

लेखक-परिचय '—शिक्षा मैट्रिक । साहित्येन्दुशेखर एव साहित्यप्रभाकर आदि उपाधियो से समय-समय पर सम्मानित । सहस्राधिक कविता-लेख आदि प्रकाशित । अभिरुचि चिन्तन, लेखन, सम्पादन । सम्पर्क - सूत्र मु० पो० छाना, जिला – सागर (म० प्र०)

---

## 'समयसार' नाटक की महिमा

**– राजमल पवैया**

'समयसार नाटक' की महिमा, समयसार सम अद्भुत है ।
समयसार कलशो पर मानो, समयसार छवि अकित है ।।
छदो के द्वारा हिन्दी भाषा मे, कलशो का अनुवाद ।
अति निर्दोष सरल रचना है, इसमे किंचित् नही विवाद ।।

सयोजित हैं भाव अनूठे, शुद्ध भावना से भरपूर ।
इसको हृदयगम करने पर, मिथ्या भ्रम होता चकचूर ।।
आत्मस्वरूप बतानेवाला, काव्य नही काव्यामृत है ।
'समयसार नाटक' की महिमा, समयसार सम अद्भुत है ।।

अप्रतिवुद्ध सरल जोवो को, पढकर हो जाता निज भान ।
भेदज्ञान की कला प्राप्त कर, पाते वीतराग-विज्ञान ।।
नवतत्त्वो से श्रेष्ठ आत्मा, के दर्शन हो जाते है ।
सम्यग्दर्शन की पावन महिमा, पाकर हर्षाते हैं ।।

श्री वनारसीदास इसे रच, अमर हुए यह निश्चित है ।
'समयसार नाटक' की महिमा, समयसार सम अद्भुत है ।।

लेखक-परिचय —उम्र : ७० वर्ष । शिक्षा माध्यमिक विद्यालय । सहस्राधिक भजन एव शताधिक पूजनो के रचयिता । 'अपूर्व अवसर' के पद्यानुवादक । सम्पर्क-सूत्र ४४, इब्राहीमपुरा, भोपाल (म. प्र ) ४६२००१

# 'समयसारनाटक' में कलापक्ष

— कु० आराधना जैन

□

कविवर बनारसीदास द्वारा रचित 'समयसार नाटक' अध्यात्म का अपूर्व ग्रन्थ है। इसमे सात तत्त्व, नव पदार्थ, चौदह गुणस्थान का प्रमुखता से वर्णन है।

यद्यपि शातरस प्रधान 'समयसार नाटक' मे भावपक्ष प्रधान है, किन्तु कृति को हृदयग्राही बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमे यथासभव कलापक्ष का भी सामजस्य हो। भावपक्ष यदि काव्य का प्राणतत्त्व है तो कलापक्ष उसका शृगार। कविराज बनारसीदास ने अपनी उक्त कृति मे भावपक्ष द्वारा प्राण देकर कलापक्ष द्वारा उसे शृगारित भी किया है। प्रस्तुत लेख मे कवि का कलापक्ष विवेच्य है।

"कला" शब्द "कल" धातु से कच् एव टाप् प्रत्यय के सयोग से निष्पन्न हुआ है।[1] अत "कला" का शाब्दिक अर्थ हुआ — पदार्थ को सँवारनेवाली चेष्टा।

कला के विषय मे अनेक भारतीय एव पाश्चात्य मनीषियो ने अपने विचार व्यक्त किये है, जिनका साराश इस प्रकार है—

किसी अमूर्त पदार्थ की सुरुचि के साथ सुन्दर एव मूर्तरूप प्रदान करनेवाली चेष्टा का नाम कला है। जब व्यक्ति इस जगत् के अव्यक्त सत्य को अपनी चेष्टाओ से व्यक्तरूप प्रदान करता है तब वह कलाकार कहलाता है और उसकी चेष्टा कला। भारतीय विद्वानो के अनुसार कलाएँ चौसठ है[2]। पर पाश्चात्य विद्वानो ने कला को दो वर्गों मे विभाजित किया है — ललित कला और उपयोगी कला। ललित कलाएँ हमारे जीवन मे सरसता लाती है एव उपयोगी कलाएँ हमारी दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति करती हैं। ललित कलाओ मे काव्यकला, सगीतकला, चित्रकला, मूर्तिकला तथा वास्तुकला प्रसिद्ध है। इनमे भी काव्यकला सर्वश्रेष्ठ है। अपने मनोभावो को लेखनी और काव्यात्मक वाणी के माध्यम से सुन्दर रूप मे अभिव्यक्त करना ही काव्यकला है। अपनी लेखनी को सुन्दरतम रूप देने वाली काव्यकला के प्रमुख अग है — अलकार, छन्द, गुण, भाषा और शैली।

---

1 सस्कृत-हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ२५६
2 वात्स्यायन कामसूत्रम् ३/१५

समयसार नाटक एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है । अतः इसमे लौकिक रुचि वालों का चित्त रमना सामान्यतया सभव नही था । एतदर्थ कवि ने अपनी वात को जन-जन तक आसानी से पहुँचाने के लिए अलकारो का प्रयोग करके सरस बनाने का सफल प्रयत्न किया है । ससारी प्राणी अलकार, दृष्टान्त के माध्यम से आत्मा जैसी कठिन वात भी शीघ्र समझ सकते है । आध्यात्मिक ग्रन्थ का लक्ष्य पाठक या श्रोता को शान्तरस की (आत्मा की) आनन्दानुभूति कराना है । कवि द्वारा प्रयुक्त अलकार इस अनुभूति मे साधक ही है, बाधक नही । कविवर बनारसीदास द्वारा समयसार मे प्रयुक्त कला के प्रमुख अग इस प्रकार है—

अलंकार:—अलकार शब्द का तात्पर्य है – कविता-कामिनी को सुसज्जित करनेवाले अनुप्रास, उपमादि उपकरण । कवि ने प्रस्तुत ग्रन्थ मे अनेक अलकारो का प्रयोग किया किया है जिनमे प्रमुख हैं – अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि । इनमे भी अनुप्रास, उपमा और दृष्टान्त कवि के विशेष प्रिय अलकार हैं ।

अनुप्रास — वर्णों (अक्षरो) की समता को अनुप्रास कहते हैं । वैसे तो कवि ने अनुप्रास के सभी भेदो का प्रयोग किया है, परन्तु अत्यानुप्रास पूरे ग्रन्थ मे मिलता है । यहाँ छेकानुप्रास के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

जाके घट समता नही ममता मगन सदीव ।
रमता राम न जानई, सो अपराधी जीव ॥[1]

परम प्रतीती उपजाइ गनधर की-सी,
अन्तर अनादि की विभावता विदारी है ।[2]

पाप-पुन्न की एकता, वरनी अगम अनूप ।[3]

इह विधि जे जागै पुरुष, ते शिवरूप सदीव ।[4]

इन उदाहरणो मे क्रमश म, र, प, अ, व, प, अ, ज, श वर्ण दो बार आये है, अत. छेकानुप्रास अलकार है ।

वृत्यानुप्रास.—स्वारथ के साचे परमारथ के साचे चित्त,
साचे सांचे वैन कहै साचे जैनमती है ।[5]

करता करम क्रिया करै, क्रिया करम करतार ।[6]

एक करम करतव्यता, करै न करता दोइ ।[7]

करै करम सोई करतारा । जो जानै सो जाननहारा ॥[8]

---

1 समयसार नाटक, मोक्ष द्वार, छन्द २५
2 वही, अजीव द्वार, छन्द २
3 वही, आस्रव द्वार, छन्द १
4 वही, निर्जरा द्वार, छन्द १६
5. वही, मगलाचरण, छन्द ७
6 वही, कर्ता कर्म क्रिया द्वार, छन्द ८
7 वही, वही, छन्द ६
8 वही, वही, छन्द ३३
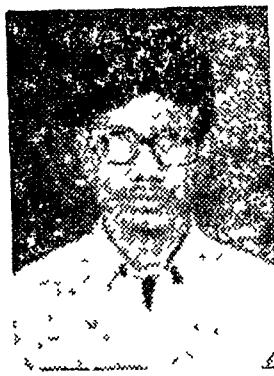
# मन्थन करो श्रुति का

– बाहुबली भोसगे

साहित्य : एक साधना मुक्ति की
अश्रुतपूर्व वचन आचार्य का–
"काम–भोग–बन्ध की कथा
श्रुत-परिचित-अनुभूत सभी का
पर नही है सुलभ श्रवण
एकत्व-विभक्त आत्मा का कथन ।"
मथता रहा मन मे
लिखा है जो तुमने आज तक
क्या है कभी सोचा उस पर ?
किया है तुमने कितना बडा अनर्थ ?
पाकर थोडा सा क्षयोपशम
जिसे कहते हो तुम कवित्वशक्ति/विद्वत्ता
पथ नरक का क्या वह नया नही है ?
अरे कामियो !
साहित्य–सृजन के बहाने
मैल अपने मन का क्यो फैलाते हो
ख्यात्यर्थ क्यो रचते हो प्रस्तर–पोत ?

पश्चात् इसके खुल गये थे
बनारसी के ब्रह्मनेत्र
पछता रहे थे,
अपनी आत्मा को धिक्कार रहे थे
भाया नही उन्हे रस के नाम पर
कीचड यो उछालना ।
सबसे फिर कहा उन्होने
साहित्य के नाम पर साथियो,
मार्ग नरक का नया बनाओ नही,
अमृत मे जहर कामियो !
घोलने का काम नही ।
मथन करो श्रुति का
अनुभव की कसौटी पर
कसो उसे बार बार
फिर भरो शब्द-कलशो मे, अर्थ ऐसा
जो बने साधक को आनन्दवर्द्धक
पाथेय – पेय मुक्ति का

लेखक-परिचय —उम्र २३ वर्ष । शिक्षा शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, शिक्षाशास्त्री (बी एड)। भूतपूर्व स्नातक, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर । संपर्क-सूत्र अध्यापक, राजकीय उच्च प्राथमिक सस्कृत विद्यालय, बड़ला बासनी (जोधपुर) राजस्थान ।

# 'समयसार नाटक' में कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार

– डॉ० राधेश्याम शर्मा

'समयसार नाटक' एक आध्यात्मिक काव्य है, जिसमे विद्वान लेखक कविवर पडित बनारसीदास ने परमार्थ (मोक्ष) को प्राप्त करने के उपाय एव तज्जन्य आनन्द के स्वरूप का विवेचन किया है। "ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष" के अनुसार सम्यग्ज्ञान मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन है। सम्यग्ज्ञान होने पर व्यक्ति जीव और अजीव के भेद को को ठीक से समझ लेता है, उसका अहकार (देह मे एकत्वबुद्धि) नष्ट हो जाता है तथा पर पदार्थों के प्रति ममत्व नही रहता। फलत साधक आत्मिक रस मे निमग्न होकर परम शान्ति का अनुभव करता है। आत्मतत्त्व में अनन्य रूप से रमण करना एक आनदपूर्ण अनुभव है। यह अनुभव परमार्थ का साधन और साध्य दोनो है। यह मोक्ष प्राप्ति का मार्ग ही नही, स्वय मोक्षस्वरूप भी है। "अनुभव मारग मोख कौ, अनुभव मोख सरूप।[1]" इस अनुभव की प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अग कर्ता-क्रिया-कर्म के स्वरूप को समझना है, जिसका विशद विवेचन 'समयसार नाटक' के कर्ता कर्म-क्रिया द्वार मे किया गया है।

कर्ता-क्रिया-कर्म के सम्बन्ध मे प्रचलित उस सामान्य धारणा से हम सभी परिचित है, जिसका विश्लेषण व्याकरण शास्त्र मे किया जाता है। जिससे किसी स्थिति (होना, करना, बढना, खाना आदि) का बोध हो, वह क्रिया है। जो क्रिया करता है, वह कर्ता है। जिस पर क्रिया के व्यापार का फल पडता है वह कर्म है। जैसे 'कुभकार घट बनाता है' – वाक्य मे 'बनाना' क्रिया है, कुभकार कर्त्ता है और "घट" कर्म है। कुभकार सजीव व्यक्ति है, घट जड पदार्थ है, अत दोनो पदार्थों की सत्ता स्पष्टतः अलग-अलग है। घट–निर्माण की विधि "बनाना" क्रिया भी इन दोनो से भिन्न है। अत व्यावहारिक दृष्टि (व्यवहार नय) से ये तीनो पृथक्-पृथक् हैं। यह भेद-विवक्षा का कथन है।

इसके विपरीत अभेद–विवक्षा से एक पदार्थ मे कर्त्ता-कर्म-क्रिया तीनो की स्थिति होती है। उपर्युक्त उदाहरण मे घट मृत्तिका से निर्मित हुआ है, अत मृत्तिका ही घट रूप मे परिवर्तित हुई है, इसलिए मृत्तिका ही कर्म है। पिण्ड-निर्माण की प्रारभिक प्रक्रिया

1 समयसार नाटक, उत्थानिका, छन्द १८

से लेकर घट-निर्माण की अन्तिम स्थिति तक की सम्पूर्ण प्रक्रिया मृत्तिकामे ही सम्पन्न हुई है, अतः मृत्तिका ही क्रिया हुई। अभिप्राय यह है कि मृत्तिका स्वय अपने परिणाम (घट) को करनेवाली है, इसलिए वह उसका कर्ता है। वह परिणाम मृत्तिका का है और उससे अभिन्न है, अत. मृत्तिका ही कर्म है। मृत्तिका ही अवस्थान्तरित हुई है और वह उस मूल अवस्था से अभिन्न है, इसलिए वही क्रिया है। निश्चयनय की दृष्टि से एक ही द्रव्य कर्ता, क्रिया और कर्म होता है। वस्तु एक है, मात्र नामभेद है। इसप्रकार नामभेद से ही वस्तु अनेक रूप होती है —

करता करम क्रिया करै, क्रिया करम करतार।
नाम–भेद बहुविधि भयौ, वस्तु एक निरधार ।।[1]

कर्ता-कर्म-क्रिया की एकता सिद्ध करने के लिए सबसे प्रबल तर्क यह दिया जा सकता है कि एक कर्म की एक ही क्रिया व एक ही कर्ता होता है, दो नही। फिर, एक परिणाम के कर्ता दो द्रव्य नही होते। जैसे घटरूप एक परिणाम के कर्ता कुभकार और मृत्तिका दोनो नही हो सकते। यहाँ घट के निर्माण मे कुभकार तो निमित्त या सयोग रूप कारण है अत उसे कर्ता समझना भूल है। घट का उपादान कारण मृत्तिका है, जो घट (वस्तु) की सहज शक्ति है, वही उसका कर्ता है। ध्यातव्य है – दो परिणाम एक द्रव्य के नही होते तथा दो क्रियाओ को भी एक द्रव्य नही करता। अतः जड पदार्थ का कर्ता जीव कैसे हो सकता है ? जीव और पुद्गल की अलग-अलग सत्तायें है तथा वे निज स्वभाव के अनुसार ही कार्य करते है। आत्मा अपने चिद्भाव कर्म और चैतन्य क्रिया का कर्ता है तथा पुद्गल पुद्गल-कर्मों का कर्ता है। "जैसा कर्म वैसा कर्ता" के सिद्धान्त के अनुसार चैतन्य स्वरूप जीव शुद्ध चैतन्य भाव और अशुद्ध चैतन्य भाव दोनो का कर्त्ता है और पुद्गल शुद्ध-अशुद्व कर्म-पुद्गल-परिणामो का कर्ता। अभिप्राय यह है कि जीव कर्म का कर्ता नही है, वह स्वभाव का कर्ता है।

जीव को कर्मो का कर्ता मानना मिथ्यादृष्टि का परिणाम है। मिथ्यादृष्टि जीव चेतन-अचेतन, जीव-पुद्गल मे भेद नही कर पाता, वह चैतन्य के साथ पुद्गल-कर्मों को मिलाकर देखता है। उसकी स्थिति उस शराबी के समान है जो नशे मे धुत्त होने के कारण श्रीखण्ड के स्वाद को न पहचान कर उसे दूध बता देता है। मिथ्यादृष्टि भ्रममूलक होती है। जैसे हरिण बालू रेत के टीलो पर गिरी हुई सूर्य की किरणो को पानी समझ बैठता है वैसे ही अज्ञानी जीव भ्रमवश अपने को कर्ता मानता है।

इस भ्रम का निराकरण ज्ञानज्योति के उदय से होता है। सम्यक्ज्ञान से आत्म-स्वरूप की पहचान होती है। ज्ञान के आलोक मे जीव, कर्म और शरीर के स्वरूप का पार्थक्य उजागर होता है। इस स्थिति पर पहुँचा हुआ भेदविज्ञानी जीव शुद्ध चैतन्य का अनुभव करता है। वह अपने को कर्ता समझने के अहकार से मुक्त होकर मात्र दर्शक बन

---

1 समयसार नाटक, कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार, छन्द ८

जाता है। यह वह स्थिति है जब हृदय खेद, चिन्ता, असत्य आदि मनोविकारो से मुक्त होकर परम शान्ति का अनुभव करता है .—

जे उद्वेग तजै घट अन्तर, सीतल भाव निरन्तर राखै ।।[1]

इस दशा मे पहुँचने पर जीव आत्मध्यान मे लीन होकर ज्ञानामृत का पान करता है।

यहाँ यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि पदार्थ किसका कर्ता है ? उत्तर है–पदार्थ अपने स्व-भाव का कर्ता है, उसे पर का कर्ता नही माना जा सकता। ज्ञानी का स्व-भाव ज्ञानभाव है और अज्ञानी का अज्ञानभाव, अत. दोनो अपने-अपने भाव के ही कर्ता हो सकते है, एक दूसरे के भाव के नही। पुद्गल द्रव्य परिणामी है, वह अपना स्वभाव न छोडकर परिणमन किया करता है। अत पुद्गल-कर्म का कर्ता पुद्गल ही है। इसप्रकार चेतन भाव का कर्ता जीव है और द्रव्यकर्म का कर्ता पुद्गल · —

ग्यान-भाव ग्यानी करै, अग्यानी अग्यान।
दर्वकर्म पुदगल करै, यह निहचै परवान ।।[2]

इस प्रकार निश्चयनय से जीव कर्म का अकर्ता है, पर व्यवहारनय से उसे कर्ता समझा जाता है। प्रथम नय से आत्मा मुक्त और कर्म-रहित कहा जाता है जब कि दूसरे नय से बद्ध और कर्म-सहित। जो व्यक्ति दोनो बातो को मानकर उनका अभिप्राय समझता है, वही आत्मा का स्वरूप ठीक से समझता है। सच तो यह है कि जो व्यक्ति इस नयवाद (निश्चयनय, व्यवहारनय) के विवाद मे न पडकर वस्तु के स्वरूप को ठीक से जान लेता है, वह समरस भाव मे विचरण कर पूर्ण आनद मे निमग्न होता है —

ऐसी नयकक्ष ताकौ पक्ष तजि ग्यानी जीव,
समरसी भए एकता सौ नहि टले है।[3]

समरस-भाव मे विचरण करने वाले ज्ञानी के समस्त कर्म निर्जरा के लिए होते है और अज्ञानी के बन्धन के लिए। दया, दान आदि पुण्य तथा विषय-कषाय आदि पाप दोनो कर्मबन्ध हैं। इन दोनो प्रकार के कर्मों को करते हुए सम्यग्ज्ञानी तथा मिथ्यात्वी एक से दिखाई देते है, फिर क्या कारण है कि ज्ञानी के भोग बन्धमुक्ति के लिए तथा अज्ञानी के बन्धन के लिए होते है ?

बात यह है कर्मफल कर्म के बाह्याचरण पर आधारित न होकर कर्म के प्रेरक भाव पर आश्रित होता है। ज्ञानी का कर्म अनासक्ति और निरहकार से प्रेरित होता है

---

1 समयसार नाटक, कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार, छन्द २४

2 समयमार नाटक, कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार, छन्द १७

3 समयसार नाटक, कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार, छन्द २७

जब कि मिथ्याज्ञानी का आसक्ति और अहकार से । इसीलिए एक का फल निर्जरा (कर्मनाश) होता है और दूसरे का बघ ।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अज्ञान की दशा मे आत्मा अपने को शुभाशुभ कर्मों का कर्ता मानता है। वस्तुत· तो कर्म पुद्गल (अचेतन) रूप है, अत· इनका कर्ता पुद्गल ही है, आत्मा नही। वैसे राग-द्वेष पुद्गल के सयोग से आत्मा मे होते है, परन्तु यह ग्रथ निश्चयनय प्रधान है, अत भेदज्ञान की दृष्टि से इन्हे पुद्गलजन्य ही बताया गया है। आत्मा के निज स्वरूप से ये पृथक् है। इसप्रकार सिद्ध होता है कि आत्मा चैतन्यभाव व क्रिया का कर्ता है, पुद्गल पुद्गल-कर्मों का। सम्यक्ज्ञान-जनित यह विवेक जीव को आत्मानुभव की ओर अग्रसर कर स्वय भी आत्मानद मे पर्यवसित हो जाता है। यह भावभूमि ही मोक्षरूप है :—

परम पवित्र यौ अनन्त नाम अनुभौ के,
अनुभव बिना न कहू और ठौर मोख है ।।[1]

लेखक-परिचय — उम्र ५३ वर्ष। शिक्षा एम ए (हिन्दी-सस्कृत), पीएच डी। सप्रति : व्याख्याता, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर। सम्पर्क-सूत्र मकान न ५०६, अवधविहारीजी की गली, गोविन्दराजियो का रास्ता, चाँदपोल बाजार, जयपुर (राज०)

1 समयसार नाटक, कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार, छन्द ३०

# मौलिक काव्य-प्रतिभा के धनी

– भरतेश पाटील,

□

कविवर बनारसीदासजी ने जैन धर्म को जो योगदान दिया है, वह चिरस्मरणीय है। एक ओर "समयसार नाटक" जैसा ग्रथ लिखकर भवनाशिनी अध्यात्म-गगा को सामान्य जनता के बीच प्रवाहित किया तो वही दूसरी ओर "अर्द्धकथानक" ग्रन्थ को लिखकर हिन्दी साहित्य की आत्मचरित्र विधा की बुनियाद रखी। साथ ही साथ 'परमार्थ वचनिका' और 'उपादान-निमित्त की चिटठी' जैसे जैन सिद्धान्तो के मर्म को खोलने वाले तथा तत्कालीन हिन्दी भाषा के उत्कृष्ट गद्य के नमूने भी प्रस्तुत किए। इतना ही नही, दिगम्बर मत मे कालदोष से आए हुए शिथिलाचारो पर प्रहार करके मूल दिगम्बर धर्म की रक्षा भी की। अस्तु।

यहाँ स्मरणीय है कि यद्यपि आपका "समयसार नाटक' अमृतचद्र के कलशो एव कलशो पर प राजमलजी द्वारा रचित बालबोधिनी टीका को आधार बनाकर अवश्य रचा गया है।[1] किन्तु यह कलशो एवं बालबोधिनी टीका का पद्यानुवाद मात्र नही है। प बनारसीदासजी अपनी काव्य-प्रतिभा और रचना-चातुर्य के साथ-साथ समयसार नाटक मे अनेक स्थलो पर उनका मौलिक चिन्तन भी प्रस्फुटित हुआ है।

जहाँ अमृतचन्द्राचार्य ने अपने टीका लिखने का उद्देश्य प्रकट करते हुए समयसार की व्याख्या से अपनी परिणति की परम विशुद्धि की भावना प्रकट की है। जैसा कि उन्होने स्वय लिखा है—

मम परमविशुद्धि शुद्धचिन्मात्रमूर्ते-
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूते॰ ॥[2]

और प बनारसीदासजी ने "समयसार नाटक" बनाने का उद्देश्य कुन्दकुन्द व अमृतचद्र द्वारा प्रतिपादित तत्त्व को सरल भाषा मे लिखकर जन-जन तक पहुँचाने का प्रगट किया है—

1 समयसार नाटक, ग्रन्थ प्रशस्ति, छन्द २१ से २५ 2 आत्मख्याति, कलश ३

"नाटक समैसार हित जीका । सुगमरूप राजमली टीका ।।
कवितावद्ध रचना जो होई । भाषाग्रन्थ पढै सब कोई ।।[1]

उपर्युक्त उद्धरण से संकेत मिल जाता है कि पं. बनारसीदासजी केवल लीक पर ही नही चले बल्कि उनके साहित्य मे मौलिक चितन के भी यथास्थान दर्शन होते है।

प. बनारसीदासजी ने अपने इस उद्देश्य को बखूबी निभाया भी है । जहाँ भी अवसर मिला तो विषय को पाठक के अन्तस्तल तक उतारने का सफल प्रयत्न किया । इस उद्देश्य की पूर्ति मे उन्होने पाठक के साथ सामीप्य स्थापित करके उस विषय को हृदयगम कराया । उदाहरण के लिए कलश न० २३ के अनुवाद को देखिए—

बनारसी कहै भैया भव्य सुनौ मेरी सीख,
कैहू भाँति कैसेंहूँ कै ऐसौ काजु कीजिए ।
एकहू मुहूरत मिथ्यात कौ विधुस होइ,
ज्ञान कौ जगाइ अस हस खोजि लीजिए ।।[2]

इससे ऐसा अनुभव होता है, जैसे प. बनारसीदासजी भव्य बालक को अपने हाथो का सहारा देखकर मोक्षमार्ग मे प्रवृत्त होने के लिये आमन्त्रण दे रहे हो ।

पं बनारसीदासजी ने अनेक स्थलो पर अमृतचन्द्राचार्य के शब्द के द्वारा सकेत मात्र पाकर उसका विशेष विस्तार भी किया है । जैसे ३२वे कलश मे अमृतचद्राचार्य ने विभ्रमरूपी चादर को चूर करने का उपदेश दिया है । "विभ्रमरूपी चादर" की व्याख्या बनारसीदास ने इस प्रकार की—

जैसे कोऊ पातुर बनाय वस्त्र आभरन,
आवति अखारे निसि आडौ पट करि कै ।
दुहू ओर दीवटि सवारि पट दूरि कीजै,
सकल सभा के लोग देखै दृष्टि धरि कै ।
तैसे ग्यान सागर मिथ्याति ग्रन्थि भेदि करि,
उमग्यौ प्रकट रह्यौ तिहू लोक भरि कै ।।[3]

इसी प्रकार ३४वे कलश मे जो "विरम् किमपरेणाकार्यकोलाहलेन" से प्रारभ होता है, इसी कलश मे "हृदय-सरसि" (हृदयरूपी सरोवर मे) शब्द आया है । इस शब्द से बनारसीदासजी ने सकेत पाकर इसका विस्तार किया, जिसको पढते समय पाठक भावविभोर हो जाता है । देखिए—

तेरौ घट सर तामै तू ही है कमल ताकौ,
तू ही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानु रे ।[4]

---

1 अन्तिम प्रशस्ति, छन्द ३४
2 समयसार नाटक, जीव द्वार, छन्द २४
3 समयसार नाटक, जीव द्वार, छन्द ३५
4 समयसार नाटक, अजीव द्वार, छन्द ३

कही-कही बनारसीदासजी ने अमृतचद्राचार्य के ही शब्दो को रखा, इसके बावजूद उसमे सजोवता की थोडी सी भी कमी नही खटकी। उदाहरण के लिए देखिए—

इदमेवात्र तात्पर्य हेय. शुद्धनयो न हि।
नास्ति बन्धस्तदत्यागात्तत्त्यागाद् बन्ध एव हि ।।[1]

इसका अनुवाद—

यह निचोर या ग्रन्थ कौ, यहै परम रसपोख।
तजै सुद्धनय बन्ध है, गहै सुद्धनय मोख ।।[2]

अमृतचंद्राचार्य ने जिस विषय को वर्णनात्मक शैली मे रखा, उस विषय को सुलभता से हृदयगम कराने के उद्देश्य से प. बनारसीदासजी ने प्रश्नोत्तर शैली को अपनाया और वे इसमे अत्यधिक सफल हुए। इसका उदाहरणभूत पुण्य-पाप एकत्व द्वार के छन्दो ने समयसार नाटक मे महत्त्वपूर्ण स्थान पा लिया। अमृतचद्राचार्य ने कहा—

हेतु स्वभावानुभवाश्रयाणा सदाप्यभेदान्नहि कर्मभेद ।
तद्बन्धमार्गाश्रितमेकमिष्टं स्वय समस्त खलु बन्धहेतु ।[3]

अर्थात् हेतु स्वभाव, रस और फल चारो की दृष्टि से पुण्य-पाप मे अभेद है।

इस विषय को बनारसीदासजी ने शका-समाधान के रूप मे इसप्रकार रखा है—

कौऊ शिष्य कहै गुरु पाही। पाप पुन्न दोऊ सम नाही ।।
कारन रस सुभाव फल न्यारे। एक अनिष्ट लगै इक प्यारे ।।[4]

इसके बाद पाप और पुण्य दोनो के स्वभाव, कारण, रस और फल के भेद को स्पष्ट करते हुए उसका समाधान दिया गया है जो कि बहुत ही युक्तिपूर्ण है।[5]

प बनारसीदासजी ने समयसार मे आए हुए सिद्धान्तो को हृदयगम कराने मे कोई कसर नही छोडी। विशेषत उन प्रसगो मे जिनमे भ्रमित होने की सभावना छिपी रहती है। इन्ही प्रसगो मे बनारसीदासजी के मौलिक चिन्तन का झलक मिलती है कही कही तो बालबोधिनी टीका मे दिये गये उदाहरणो को भी छोडकर मौलिक उदाहरण दिये गये हैं। जैसे निर्जरा अधिकार मे यह कलश है—

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्य विरागस्यैव वा किल।
यत्कोऽपि कर्मभि॰ कर्म भुञ्जानोऽपि न बध्यते ।।[6]

यहाँ कहा गया है कि ज्ञानी विराग के सामर्थ्य से भोग भोगता हुआ भी कर्मों से नही बँधता। इसको स्पष्ट करने के लिए पाडे राजमलजी ने दो उदाहरण प्रस्तुत किए—

---

1 आत्मख्याति, कलश १२२
2 समयसार नाटक, आस्रव द्वार, छन्द १३
3 आत्मख्याति, कलश १०२
4 समयसार नाटक, पुण्य-पाप-एकत्व द्वार, छन्द ४
5 वही, वही, छन्द ५ एव ६
6 आत्मख्याति, कलश १३४

(1) जिस प्रकार वैद्य प्रत्यक्ष रूप से विष खाता हुआ नही मरता।
(2) कोई शूद्र जीव मदिरा पीता है, परन्तु मतवाला नही होता।

प. बनारसीदासजी ने इन उदाहरणो मे से कोई उदाहरण न लेकर मौलिक उदाहरण ही दिये—

जैसे भूप कौतुक सरूप करै नीच कर्म,
कौतुकी कहावै तासौ कौन कहै रंक है।
जैसै विभचारिनी विचारै विभचार वाकौ,
जार ही सौ प्रेम भरता सौ चित बक है॥
जैसै धाइ वालक चु घाई करै लालिपालि,
जानै ताहि और कौ जदपि वाकै अंक है।
तैसै ज्ञानवत नाना भाति करतूति ठानै,
किरिया कौ भिन्न मानै यातै निकलक है॥[1]

इसप्रकार उन्होने अपनी काव्यप्रतिभा और अभिव्यजना चातुर्य से अध्यात्म को जन-जन का विषय बनाया। प्रतिभा का होना तो महत्त्वपूर्ण है ही, पर उस प्रतिभा का उपयोग किस क्षेत्र मे किया जाएगा – यह अधिक महत्त्वपूर्ण है। बनारसीदासजी को काव्यप्रतिभा प्राप्त थी, उसको उन्होने इस पावन कार्य मे लगा कर अपने जीवन को सार्थक बनाया।

☐

लेखक-परिचय —उम्र २३ वर्ष। शिक्षा शास्त्री, एम ए (संस्कृत), शोधकार्य-रत। भूतपूर्व स्नातक, श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर। सम्पर्क-सूत्र ' मु० पो० मुरगु डी, ता० अथणी, जिला - बेलगाम (कर्नाटक)।

1 समयसार नाटक, निर्जरा द्वार, छन्द ४

परिसवादात्मक झाँकी

# महाकवि बनारसीदास

– (श्रीमती) गुणमाला भारिल्ल

☐

विमला   अरे स्नेहा ! तुम्हे पता नही, आज महाकवि बनारसीदास की चार सौवी जन्म-जयन्ति है, क्या मन्दिर नही चलोगी ?

स्नेहा   बनारसीदास की ! कौन थे ये बनारसीदास ? यह नाम तो मैंने आज ही सुना है।

विमला : वे एक प्रसिद्ध आध्यात्मिक कवि थे, जिन्होने 'समयसार नाटक' लिखा है।

स्नेहा : समयसार नाटक का नाम भी तो मै आज तेरे मुख से ही सुन रही हूँ। श्रीपाल-मैनासुन्दरी आदि नाटक तो देखे थे, पर समयसार नाटक तो कभी देखा भी नही है। चलो, आज हम भी देखेंगी।

विमला   बहिन ! समयसार नाटक पढने का शास्त्र है, देखने का खेल नही। वह तो अध्यात्म का ग्रन्थ है, उसे कोई मन लगाकर पढे तो निहाल हो जावे।

स्नेहा . तब तो तुम हमे उन कवि के बारे मे विस्तार से बताओ। वे कहाँ हुए, कब हुए ? मै सब जानना चाहती हूँ।

विमला : कविवर बनारसीदास का जन्म वि सवत् १६४३ को जौनपुर मे हुआ था, पिता खरगसेन ने अनेक मनौतियो के बाद हुए अपने इकलौते बेटे का नाम विक्रमाजीत रखा था। एक बार जब खरगसेन ६-७ माह के बालक विक्रमाजीत को लेकर सकुटम्ब बनारस की यात्रा पर गए, तो वहाँ के एक पुजारी ने बडी चतुराई से आपका नाम बनारसीदास रख दिया, और वे विक्रमाजीत से बनारसीदास हो गये। आठ वर्ष की उम्र मे उन्होने पढाई शुरू की और ग्यारह वर्ष के होते-होते शादी कर दी गई। यह भी एक पाप-पुण्य का सयोग है कि जिस दिन आपके पुत्र की शादी हुई थी उसी दिन पुत्री का जन्म हुआ एव उसी दिन आपकी नानी का मरण हुआ। एक ही घर मे तीनो कार्य एक साथ हुए।

"नानी मरन सुता जनम, पुत्रबधू आगौन।<br>
तीनौ कारज एक दिन, भये एक ही भौन ॥"

इस तरह अनेक विघ्नो के बीच मे उन्होने चौदह वर्ष की उम्र मे प. देवदत्तजी के पास छूटी हुई पढाई फिर शुरू की किन्तु इसो बीच आसिखी मे फँस गये ।

"कै पढना कै आसिखी, मगन दुहू रस माहि ।
खान-पान की सुध नही, रोजगार किछु नाहि ।।"

स्नेहा : ये आसिखी क्या होती है ?

विमला अभी तो तुम इतना ही समझ लो कि राग-रग मे फँस गए थे, पढना-लिखना और मौज-शौक मे रहना, बस उनके दो ही कार्य रह गये थे । खाना-पीना एव घर-व्यवसाय भी छूट गया था । उसी समय उन्होने एक शृंगार रस की पुस्तक लिखी, जिसे तत्त्वज्ञान का रस लगने पर आपने गौमती मे बहा दिया था ।

विक्रम सवत् १६६७ मे आपने व्यापारिक जीवन शुरू किया । पिता ने व्यापार करने को आगरे भेज दिया और सभी सहायता दी, पर पापोदय ने कवि को कही भी न छोडा, वहाँ पर भी असफल हो गये । पिता ने व्यापार को जवाहरात, घी, तेल, कपडा आदि सब सामग्री दी, पर कुछ तो चोर लूट ले गये, कुछ खो गया और कुछ मे हानि उठानी पड गई, पर वे घबडाये नही ।

विक्रम स १६७३ मे पिता की मृत्यु हो गई । सारा भार बनारसीदास के ऊपर आ गया । आप जो भी कार्य करते, सफलता नही मिलती । पूरा जीवन ऐसे ही उतार-चढाव मे बीत गया, आखिर मे कुछ पुण्य ने जोर मारा और आखिरी समय मे आपको आर्थिक सफलता मिल गई ।

उनके सकटमय जीवन मे पापोदय के साथ तत्कालीन विषम राजनीतिक, सामाजिक स्थितियो तथा यातायात की असुविधाओ एव लूटपाट आदि की प्रशासनिक अव्यवस्थाओ का भी बड़ा हाथ है ।

बनारसीदास का धार्मिक जीवन शुरू मे परम्परागत, रूढीवादी रहा । जन्म से वे श्वेताम्बर जैन थे किन्तु आर्थिक सकट मे वे किसी एक धर्म के अनुयायी वनकर नही रह पाये । जहाँ भी थोड़ी लौकिक लाभ की सम्भावना दिखती, वही सिर झुकाये बिना नही रहते और हाथ पसारे बिना भी न रहते ।

स्नेहा · क्या देवी-दहाडी को भी मानते थे ? यदि हाँ, तो फिर उन्होने समयसार नाटक कैसे लिखा ?

विमला : यह तो उन्होने बाद मे लिखा था, जब उनको धर्म की रुचि हुई ।

स्नेहा : उन्हे धर्म की रुचि कैसे हुई ?

विमला : उन्हे अरथमल ढोर ने पाडे राजमलजी लिखित समयसार की टीका पढने को दी । उसे पढकर वे प्रभावित तो हुए, लेकिन उसका मर्म न समझ पाने से स्वच्छन्दी हो गए, इस कारण कवि की आलोचना भी बहुत हुई और उन्हे लोग

'खोसरा मति' कहने लगे। उनके साथी और भी थे, पर विशेष निन्दा उनकी हुई, क्योकि वे पडित कहलाते थे। बुराइयो से बदनामी तो सभी की होती है पर सफेदी पर धब्बा विशेष दिखता है। इसलिए तो कहते है कि विद्वानो को फूँक-फूँक कर चलना चाहिए।

ऐसी दशा बारह वर्ष तक रही। वैसे उन्होने वैसी दशा मे ही बहुत सी कविताएँ लिखी, जो बनारसी-विलास मे सगृहीत है, इसमे कवि की अडतालीस रचनाओ का सग्रह है। कवि ने अपनी दशा पर भी विचार किया है। वे लिखते है कि मेरी दशा उस समय निश्चयाभासी स्वच्छन्दी एकान्ती जैसी थी। वैसे मैने जो लिखा, वह सब स्याद्वादवाणी के अनुसार ही है।

इसके बाद आगरे मे प० रूपचन्दजी पाडे का आगमन हुआ। नकी विद्वत्ता देखकर बनारसीदास एव उनके सभी साथी उनका प्रवचन रोज सुनने लगे। उन्होने गोम्मटसार ग्रन्थ मे से गुणस्थान के अनुसार क्रिया का वर्णन किया एव निश्चय-व्यवहार का स्वरूप भी सही बताया, जिससे कवि प्रभावित हुए बिना न रहे। उन्होने स्याद्वाद को जानकर सत्य की प्राप्ति की।

आपने बहुत सी कविताएँ लिखी। समयसार नाटक और अर्द्धकथानक उसके बाद की ही रचनाएँ है।

समयसार नाटक की पक्तियो को ऐसे गुनगुनाते थे जैसे तुलसीदासजी की रामायण को गुनगुनाया जाता है।

बनारसीदास का बढता हुआ प्रभाव श्वेताम्बर और दिगम्बर भट्टारको को बरदाश्त नही हुआ। उन्होने इसका विरोध किया। जैसे-जैसे विरोध करते गए, वैसे-वैसे अध्यात्म का प्रभाव और भी बढता गया। उनकी यह आध्यात्मिक प्रगति तेरापथ के नाम से प्रचलित हुई। आगे प० टोडरमलजी का सहारा पाकर यह आध्यात्मिक क्रान्ति देशव्यापी हो गई।

महामहोपाध्याय श्वेताम्बराचार्य मेघविजय ने बनारसीदास-मत का खडन किया था। बनारसीदासजी भट्टारको को गुरु नही मानते थे, क्योकि सच्चे गुरु तो वे है जो तिल-तुषमात्र परिग्रह न रखते हो।

स्नेहा : तो क्या भट्टारक परिग्रह रखते थे ?

विमला : हाँ, रखते तो थे और वे अपने को दिगम्बर मुनि भी कहते थे, पर यह भट्टारक-वाद अधिक न चल सका।

बनारसीदासजी वैसे तो कवि थे, पर उन्होने गद्य मे भी दो रचनाएँ लिखी हैं। वे 'परमार्थवचनिका' और 'उपादान-निमित्त की चिट्ठी' के नाम से प्रचलित है। गद्य का काल शुरू होने की दृष्टि से गद्य-साहित्य मे उनकी छाप बहुत है।

बनारसीदासजी भक्ति को मुक्ति का कारण नही मानते थे। वे सर्वाधिक महत्त्व आत्मा के अनुभव को देते थे। आत्मानुभव को वे मुक्ति का मार्ग ही नही, अपितु मोक्ष स्वरूप ही मानते थे। उनका एक दोहा प्रचलित है—

अनुभव चिन्तामनि रतन, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोख को, अनुभव मोख सरूप।।

स्नेहा : और उनकी मृत्यु कब और कैसे हुई ?

विमला : वैसे उनकी मृत्यु के समय का कुछ पता नही चल पाया है, पर उस समय की एक किवदन्ती प्रसिद्ध है। कहते हैं कि मरण के समय मे उनका गला रुँध गया था, अत॰ वे बोल नही पाते थे, पर वे सजग थे। अपने मे रहकर अध्यात्म का रसपान कर रहे थे। उनको ऐसा देखकर उनके पास रह रहे लोग आपस मे चर्चा करने लगे कि क्या पता किस जगह जी अटका है। कोई बोला – मायाजाल में फँसा होगा, कोई बोला – पुत्र-पुत्रियाँ नही, अत. उनमे होगा। यह सुनकर उनसे न रहा गया और उसीसमय एक छन्द लिखा, जो इस प्रकार है—

ज्ञान कुतक्का हाथ मारि अरि मोहना।
प्रगट्यो रूप सरूप अनन्त सु सोहना।।
जा परजै कौ अन्त सत्य कर मानना।
चले बनारसीदास फेर नहि आवना।।

स्नेहा . कितना अच्छा छन्द लिखा है मृत्यु के समय मे भी; और 'अर्द्धकथानक' मे क्या है ?

विमला उसी मे तो उन्होने अपनी आधे जीवन की ५५ वर्ष तक की सारी व्यथा-कथा कही है। तभी तो उसका नाम 'अर्द्धकथानक' है। इसके विषय मे हिन्दी साहित्यकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है कि यह हिन्दी मे सबसे पहला आत्मचरित है। इसमे सत्यता, निरभिमानता, स्पष्टवादिता, स्वाभाविकता का जबर्दस्त पुट है। कवि ने अपने ऊपर घटित विकारी-अविकारी भावो का अच्छे हो, चाहे बुरे, सबको जाहिर कर दिया, छिपाया कुछ भी नही। जो किया, वह सब लिख दिया – यही 'अर्द्धकथानक' की विशेपता है।

स्नेहा बहिन! उनका जीवन तो बडी ही विचित्रताओ मे बीता। ऐसे प्रेरणात्मक जीवनचरित्र को सुनाकर आपने तो हमारी आँख ही खोल दी हैं। अब मैं भी उनके समयसार नाटक आदि ग्रन्थो का स्वाध्याय अवश्य करूँगी।

☐

लेखिका-परिचय '—उम्र ' ४७ वर्ष। शिक्षा ' प्रवेशिका, विद्याविनोदिनी, सैकण्डरी। अभिरुचि धार्मिक अध्ययन, अध्यापन। सम्पर्क-सूत्र W/o डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर (राज॰) ३०२०१५

# कतिपय किंवदन्तियाँ

– (श्रीमती) कमला भारिल्ल

□

## 1. हृदय-परिवर्तन

एक जनश्रुति है। एक बार बनारसीदासजी के घर मे एक चोर घुस आया। यद्यपि चोर अपने कार्य मे पूरी सावधानी वर्त रहा था, तथापि अँधेरे मे लगी पैर की ठोकर से बनारसीदास की नीद खुल गई। नीद खलते ही वे सब कुछ समझ गये, किन्तु उन्होने कुछ प्रतिक्रिया प्रकट नही की, क्योकि वे बडे विचार शील व्यक्ति थे। उनके विवेकी मस्तिष्क मे एक साथ कई विचार उठ खडे हुए। एक ओर तो वे करुण हृदय मे सोच रहे थे कि वेचारा बडी जरूरत वाला लगता है, वरना इतनी ठण्ड मे और इतनी रात मे जब सारा जगत चैन की नीद ले रहा है, यह अपनी जान को जोखिम मे डालकर यहाँ क्यो आता ? दूसरा विचार यह चल रहा था कि जो इसके भाग्य का होगा, वही तो ले जायेगा। अपना क्या ले जायेगा ? दाने-दाने पर खाने वाले का नाम लिखा है, ले जाने दो न ! अपने को इतनी जरूरत भी क्या है, जिसके कारण अपनी जान को जोखिम मे डाला जावे। 'मरता क्या न करता'? अत इसे अपनी जरूरत पूरी कर ही लेने दो। यदि पुलिस को पकडवाने मे सफल भी हो गये तो जो इसकी दुर्दशा होगी, वह तो होगी ही, इस बेचारे के बीबी-बच्चे भी अनाथ हो जायेगे, आदि ... !

एक ओर बनारसीदास जब यह सोच रहे थे तभी दूसरी ओर चोर धन बटोरने मे सलग्न था। चोर ने लालच मे आकर इतना अधिक सामान बाँध लिया कि वह उसे उठा भी नही पा रहा था। जब बनारसीदास ने देखा कि वेचारा परेशान हो रहा है तो दबे पाँव उसके पास गये और धीरे से बोले –"ले जल्दी कर, मैं उठाये देता हूँ और जल्दी भाग जा, वरना कोई जाग जायेगा तो पकडा जायेगा। और सुन ! यह काम बडे जोखिम का है, अच्छा भी नही है, कोई और धधा कर ले तो अच्छा रहेगा। यदि हो सके तो मेरी इस बात का विचार अवश्य करना . !

चोर ने समझा कि यह भी कोई मेरे ही जैसा दूसरा चोर आया है सो मेरी मदद कर रहा है और अपने अनुभव की बात बता रहा है, काम तो बुरा है ही।

जब यह समाचार चोर ने अपनी माँ को सुनाया तो माँ फोरन समझ गई कि – अरे ! वह कोई चोर नही बल्कि स्वय प बनारसीदास होगे। किसी चोर को क्या

पडी जो तेरी मदद करता, और ऐसे करुणा के सागर व सच्ची सलाह देने वाले तो बनारसीदास ही है। तथा सामान भी उन्हीं के घर जेसा लगता है। उसने अपने चोर बेटे को डॉटा और कहा कि बेटा! तूने यह तो बहुत ही बुरा काम किया है। यह तूने प बनारसीदास की चोरी की है उनके सिवाय ऐसा और कोई नही कर सकता था। उस धर्मात्मा का माल हमे नही पचेगा। तू यह सामान इसी समय वापिस करके आ। कहते है, चोर ने माँ की आज्ञा शिरोधाय की और उनका सारा माल वापिस तो किया ही तथा भविष्य मे कभी भी चोरी नही करूँगा–ऐसी प्रतिज्ञा भी की।

ऐसी थी उनकी अन्तरात्मा की पवित्रता और महानता जिसके निमित्त से चोर का हृदय भी परिवर्तित हो गया।

## 2. "हो सके तो इसका वेतन अवश्य बढाया जावे"

एक किंवदन्ती यह भी है। एक बार कवि बनारसीदास अनजाने मे ऐसे स्थान पर पेशाब करने बैठ गये, जहाँ पेशाब करना राजकाय कानूनीअपराध था। वहाँ ड्यूटी पर तैनात सिपाही उस नियम के उल्लघन को बर्दास्त नही कर सका, अत उसने आव देखा न ताव और बनारसीदास को चार चाँटे जड दिए।

बेचारे बनारसीदास कहते भी क्या, भूल तो उनसे हुई ही थी, अत. वे अपनी भूल पर ही पछता रहे थे। साथ ही उस सिपाही की कर्तव्यनिष्ठा व ईमानदारी पर मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे—'कौन उठाता है ऐसी जोखिम, जो उसने उठाई ?'

दूसरे दिन जब सिपाही ने उसी व्यक्ति को राजदरबार मे बादशाह के निकट उच्चासन पर बैठे देखा तो उसके होश हवाश उड गये। उसे क्या पता था कि वह व्यक्ति इतना बडा आदमी है, जिसे उसने पीटा था। उसको घबराया और सहमा हुआ देखकर बनारसीदास ने उसे अपने पास बुलाया और उसकी प्रशसा करते हुए बादशाह से कहा – 'यह सिपाही अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण सजग और ईमानदार आदमी है, हो सके तो इसका वेतन अवश्य बढाया जावे।

यह सुनकर सिपाही तो उनकी महानता से प्रभावित हुआ ही, बादशाह भी पूरा किस्सा सुनकर सिपाही की कर्तव्यपरायणता एव कविवर की महानता से बहुत प्रसन्न और प्रभावित हुए।

## 3. "तोकौ मेरी तसलीम है"

कहते है कविवर बनारसीदासजी जिनेन्द्रदेव और दिगम्बर गुरु के सिवाय किसी गुरु को नमस्कार नही करते थे। एक बार दरबारी मुसलमान ने बनारसीदास की इस बात से चिढकर बादशाह जहाँगीर से शिकायत करते हुये कहा कि — हुजूर, आपकी सल्तनत मे कुछ ऐसे भी लोग है जो आपको सलाम नही करते है।

बादशाह ने पूछा – ऐसा कौन है जो हमे तसलीम नही करता। तो बनारसीदास का नाम पेश कर दिया गया। तब बादशाह ने बुद्धिमानी से बनारसीदास एव अन्य दरबारी कवियो को बुलाया और एक समस्या की पूर्ति करने के लिये कहा। समस्या थी – बादशाह! तोकौ मेरी तसलीम है।

तब बनारसीदास ने वही तत्काल अपनी कवित्व की प्रतिभा का परिचय कराते हुये निम्नप्रकार समस्या की पूर्ति कर दी .—

"जगत के मानी जीव ह्वै रहे गुमानी ऐसे,
आस्रव असुर दुखदानी महाभीम है।
ताको परिताप खडिवे को परगट भयो,
धर्म का धरैया कर्मरोग को हकाम है ।।
जाकै परभाव आगे भागे परभाव सब,
नागर नवल सुखसागर की सीम है ।
सवर को रूप धरें साधे शिवराज ऐसो,
ज्ञानी बादशाह ! तोको मेरी तसलीम है ।।"

इस तरह कविवर की चतुराई, दृढ-सकल्प शक्ति व निर्भयता से प्रसन्न होकर बादशाह ने कवि को दण्डित करने के बजाय उनका स्वर्ण मुद्राओ से आदर सत्कार किया।

## 4. शान्तिप्रसाद या ज्वालाप्रसाद ?

एक बार की बात है – आगरा मे एक बाबाजी आये हुये थे । वे वाक्पटु तो थे ही, उन्होने अपने शान्त और क्षमाशील स्वभाव की भी धाक जमा ली थी। नाम भी उनका शान्तिप्रसाद ही था । उनकी दिन प्रतिदिन बढती लोकप्रियता से प्रभावित होकर एक बार कवि बनारसीदास के हृदय मे भी उनसे मिलने की उत्सुकता उत्पन्न हो गई । वे उनसे मिलने गये भी, परन्तु बाबा की बातचीत एव भाव-भगिमा से ऐसा कुछ भी नही लगा, जसो उनकी प्रसिद्ध थी । उनकी पैनी पकड से बाबा का अन्तर्बाह्य कुछ भी छिप न सका ।

उन्होंने अपनी सामान्य बात चीत के बीच-बीच मे बाबाजी का नाम अनेक बार पूछा । एक दो बार तो बाबा ने शान्ति से जवाब दे दिया कि भाई ! मेरा नाम शान्तिप्रसाद है शान्तिप्रसाद, किंतु जब उसी प्रश्न को बार-बार पूछा गया तो वे तम-तमा उठे, उनकी शान्ति क्रोध मे बदल गई और आग बबूला-होकर काँपते हुये होठो से गरज कर बोले, क्या तू बिल्कुल ही बहरा है ? बेवकूफ कही का ! कह दिया न !

तब मुस्कुराते हुये कवि ने कहा – समझ गया बाबा समझ गया ।

झल्लाते हुये बाबा बोले – क्या समझ गया ?

धीरे से कवि ने कहा – यह समझ गया कि तुम शान्तिप्रसाद नही, ज्वाला-प्रसाद हो, ज्वाला ‥ ‥

इस तरह बनारसीदास ने अपनी चतुराई से पल भर मे उनकी असलियत का पर्दा फास कर दिया ।

☐

लेखिका-परिचय —उम्र ४६ वर्ष । शिक्षा विशारद, एच एस सी , बी टी , एस टी , (प्रशिक्षित) । अभिरुचि धार्मिक अध्ययन अध्यापन, प्रवचन । सम्प्रति अध्यापिका, श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर । सम्पर्क-सूत्र W/o प० रतनचन्द भारिल्ल, ए-४, बापूनगर, जयपुर (राज०) 302015

# बनारसी के जीवन के अद्भुत रंग

—(श्रीमती) अलका प्रचण्डिया 'दीति'

□

महाकवि बनारसीदासजी एक धनी और प्रतिष्ठित जैन परिवार मे उत्पन्न हुए थे। प्रपितामह जिनदासजी का साका चलता था। पितामह मूलदासजी हिन्दी और फारसी के पडित थे और वे नरवर (मालवा) मे वहाँ के मुसलमान नव्वाब के मोदी होकर गए थे। उनके पितामह मदनसिह चिनालिया जौनपुर के नामी जोहरी थे और पिता खरगसेन कुछ समय तक बगाल के सुल्तान लादी खाँ के पोतदार रहे थे और फिर वे भी जवाहरात का व्यापार करने लगे थे। इसी तरह उनके रिश्तेदार और मित्रगण भी धनी मानी थे। तथापि उनका जीवन सुख से नही बीता। चैन से बैठना शायद उनके भाग्य मे था ही नही। धन के लिए वह प्राय. जीवन भर दौड-धूप करते रहे और तरह-तरह के कष्ट झेलते रहे। दौड धूप और कष्टो का उन्होने बडा ही विशद् और हृदयग्राही वर्णन अपने आत्मचरित मे किया है।

कवि बनारसीदास का व्याह केवल ग्यारह वर्ष की उम्र मे हो गया था। आठ वर्प की अवस्था मे उन्होने पाडे के पास विद्या पढना शुरू किया और एक वर्ष मे वह व्युत्पन्न हो गए। इसके बाद चौदह वर्ष के होने पर प देवदत्त के पास उन्होने अनेकार्थ नाममाला ज्योतिष, अलकार, कोकशास्त्र और चार सौ फुटकर श्लोक पढे और मुनि भानुचन्द्रजी से पचसन्धि, छन्द, कोश और जैनधर्म के स्तवन, सामायिक, प्रतिक्रमणादि पाठ भी सीखे। इस तरह उन्होने पढा तो कुछ अधिक नही, परन्तु अपनी स्वाभाविक प्रतिभा के कारण आगे चलकर वे अच्छे विचारक और सुकवि हो गए। उनकी कवित्व-शक्ति कृत नही, अपितु प्राकृत थी। चौदह वर्ष की अवस्था मे ही उन्होने एक हजार दोहा-चौपाइयो का "नवरस" ग्रथ बना डाला था जो आगे चलकर गोमती मे बहा दिया। सस्कृत-प्राकृत के अतिरिक्त अनेक देशभाषाओं का उन्हे परिज्ञान था।

जिस तरह उनकी कवित्व शक्ति का विकास समय से बहुत पहले हो गया, उसी तरह उनका यौवन भी जल्दी ही विकसित हुआ। चौदह वष की अवस्था मे ही वे इश्क मे पड गए और इस इश्कबाजी ने उनके गार्हस्थ-जीवन को सदा के लिए अत्यन्त दु ख-पूर्ण बना दिया। अपनी ससुराल खैराबाद मे वे जिस रोग से आक्रान्त हुए, उसके विवरण

से स्पष्ट मालूम होता है कि वह गर्मीया उपदश/सिफलिस रोग था। और उसी का यह परिणाम हुआ कि उनके नौ वच्चे एक के वाद एक हुए, परन्तु उनमे एक भी नही वचा, सव अल्पायु मे ही मर गए और दो स्त्रियाँ प्रसूति-काल मे ही काल के गाल मे चली गई।

जैसे आजकल हमारे यहाँ वहमो और अन्धविश्वासो का साम्राज्य है, उसीतरह उस समय भी था और जैन समाज भी उनमे मुक्त नही था। रोहतक (पजाव) की सती उन दिनो बहुत प्रसिद्ध थी। दूर-दूर के लोग उनकी मनौती के लिए जाते थे। कवि बनारसी के पिता खरगसेन भी अपनी पत्नी सहित दो वार उसकी यात्रा के लिए गए थे। और उनकी दादी को तो पूरा विश्वास था कि बनारसी का जन्म उक्त सती के ही प्रसाद से हुआ है। उधर काशी मे पार्श्वनाथ के यक्ष ने पुजारी को प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा था कि इस लडके का नाम पार्श्व-जन्मस्थान वनारस के नाम पर रख देने से इनके लिए फिर कोई चिन्ता न रहेगी, यह चिरजीवी होगा।

अपनी पूर्वावस्था मे स्वय वनारसीदास भी इस तरह के वहमो के शिकार हुए थे। जैनधर्म के अनुयायी होते हुए भी वे एक जोगी के कहने से एक साल तक सदा शिव के शख की पूजा करते रहे और एक सन्यासी के दिए हुए मत्र का जाप उन्होने इस आशा से लगातार एक साल तक पाखाने मे वैठकर किया कि जाप पूरा होने पर हर रोज दरवाजे पर एक दीनार पडी मिला करेगी। परन्तु ऐसा कुछ होना न था, सो न हुआ।

उस समय मुगल साम्राज्य की राजधानी आगरे मे चीजे कितनी सस्ती मिलती थी, इसका अन्दाज इस वात से हो सकता है कि कवि वनारसीदास एक कचौडी वाले के यहाँ छह सात महीने तक दोनो वक्त भर पेट कचौडियाँ खाते रहे और जव उसका हिसाव किया तो उन्हे कुल केवल चौदह रुपये ही देने पडे। इस प्रकार लगभग एक आने रोज मे अच्छा भोजन कवि को मिल जाता था।

मुगल वादशाह अकवर कितने लोकप्रिय थे और उस समय प्रजा अपने राजा को कितना अपना समझती थी -- इस वात का पता इस वात से लगता है कि उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर कवि वनारसीदास को गश आ गया वे सीढी पर से लुढक पडे और उनका सिर फूट गया और रक्त बहने लगा था। नवाव किलीचखाँ का बडा वेटा चीनी किलीचखाँ बहादुर होने के साथ-साथ दानी और ज्ञानी था। कवि वनारसी को वह वहुत चाहता था। और उनसे नाममाला आदि कोश और श्रुतबोध आदि ग्रथ पढता था। उसने कविश्री का सत्कार सम्मान भी किया था।

कवि वनारसीदास के जीवन-पृष्ठ पलटते/पढते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हम कोई सिनेमा - फिल्म देख रहे हो। एक बार घोर वर्षा के समय इटावा के निकट आपको एक उदण्ड पुरुष की खाट के नीचे टाट बिछाकर अपने दो साथियो के साथ लेटना पडा था। उस गँवार धूर्त ने इनसे कहा था कि मुझे खाट के बिना चैन नही पड सकती और तुम इस फटे हुए टाट को मेरी खाट के नीचे बिछाकर उस पर शयन करो।

एक अन्य प्रसग देखिये। एक बार आगरा लौटते हुए कुर्रा ग्राम मे आप और आपके साथियो पर झूठे सिक्के चलाने का भयकर अपराध लगा दिया गया था और आपको तथा आपके अन्य अठारह साथी यात्रियो को मृत्यु-दण्ड देने के लिए शूली भी तैयार कर ली गयी थी। उस सकट का ब्यौरा भी रोगटे खडे करने वाले किसी नाटक जैसा है। इस वर्णन मे भी आपने अपनी हास्य प्रवृत्ति को नही छोडा।

एक बार बनारसीदास अपने मित्र और मित्र-ससुर के साथ पटना जा रहे थे कि एक चोरो के गाँव मे पहुँच गए। चोर ब्राह्मणो को नही सताते थे, इसलिए इन तीनो ने उसी समय सूत से जनेऊ बनाकर पहिन लिये और उन्हे आशीर्वाद दिया। फल यह हुआ कि चोरो के चौधरी ने ब्राह्मण समझकर उन्हे आराम से ठहराया और दूसरे दिन विदा कर दिया।

तत्कालीन साहित्यिक जगत मे कवि बनारसीदास को साहित्य-सृजन के कारण पर्याप्त प्रतिष्ठा मिल चुकी थी और यदि किवदतियो पर विश्वास किया जाय तो उन्हे महाकवि तुलसीदास के सत्सग का सौभाग्य ही प्राप्त नही हुआ था बल्कि उनसे यह सर्टीफिकेट भी मिला था कि आपकी कविता मुझे बहुत प्रिय लगती है। कहा जाता है कि शाहजहाँ बादशाह के साथ शतरज खेलने का अवसर भी उन्हे प्राय मिलता रहा था। इस प्रकार कवि बनारसी का जीवन भोग से योग की ओर अग्रसर रहा। जीवन के अद्भुत रग कवि बनारसी के सग मुखर है।

☐

लेखिका-परिचय·—उम्र ३१ वर्ष। शिक्षा एम. ए (सस्कृत-हिन्दी), पीएच डी के शोधकार्य मे प्रवृत्त। अभिरुचि कवित्व एव लेखन। सम्पर्क सूत्र W/o डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति' मगल कलश, 394-सर्वोदयनगर, आगरा रोड, अलीगढ (उ० प्र०)

# बनारसीदास का जीवन : सम या विष

– पूनमचन्द छाव

एक दिन वे अपनी मित्र मण्डली के साथ गोमती के पुल पर सध्या के स
टहल रहे थे और सरिता की तरल तरगो को चित्तवृत्ति की उपमा देते हुए कुछ सोच
थे। बगल मे एक शृगार रस के काव्यो की पोथी दबी हुई थी। कविवर आप ही अ
बडबडाने लगे कि लोगो से सुना है कि कोई एक बार भी जीवन मे झूँठ बोलता है,
नरक-निगोद मे अनेक दु ख सहने पडते है। मेरी क्या दशा होगी, जिसने झूँठ का
पुलदा बनाकर रखा है ? अरे मैने तो इस पुस्तक मे स्त्रियो का कपोल-कल्पित नख-शि
वर्णन कह रखा है। हाय ! मैने यह क्या किया ? अच्छा कार्य नहीं किया। मै तो
का भागी हो ही चुका, अब और लोग भी इसे पढकर पाप के भागी होगे तथा चिरक
के लिए पाप की परम्परा बढेगी। बस, इस विचार मे उनका हृदय द्रवित हो गया। कि
की कुछ राय लिये बिना ही चुपचाप वह पोथी गोमती के अथाह और प्रवाह–
जल मे प्रवाहित कर दी। उस दिन से बनारसीदासजी ने एक नवीन जीवन प्रारम्भ किय

"तिस दिन सौ बानारसी, करै धरम की चाह।
तजी आसिखी फासिखी, पकरी कुल की राह ।।२७१।।

उनके पिताजी को पुत्र के जीवन मे परिवर्तन देखकर भारी प्रसन्नता हुई—

"कहै दोष कोउ न तज, तजै अवस्था पाइ।
जैसें बालक की दसा, तरुन भए मिटि जाइ ।।२७२।।
उदै होत सुभ कर्म के, भई असुभ की हानि।
तातै तुरित बनारसी, गही धरम की बानि ।।२७३।।

जो बनारसी शृगार रस के रसिया थे वे अब जिनेन्द्र के शातरस मे मस्त रह
लगे। लोग जिन्हे गली-कूँचो मे भटकते देखते थे, उन्हे अब जिनमन्दिर मे देखने लगे
नित्य जिन-दर्शन, नियम, व्रत, सामायिक, प्रतिक्रमणादि अनेक आचार-विचार मे तन्म
देखने लगे। कविवर मे विलक्षण काव्य-शक्ति तो थी ही। कुछ वर्षों मे उन्होने सूक्त
मुक्तावली, अध्यात्म बत्तीसी, मोक्षपैडी, अध्यात्म फाग, सिन्धु भव चतुर्दशी, फुटक
कवित्त, शिव पच्चीसी, सहस्रनाम, कर्म छत्तीसी आदि कविताओ की रचना की। ये स

"सोलह सौ बानवै लौ, कियौ नियत-रस-पान ।
पैकबीसुरी सब भई, स्यादवाद-परवान ।।६२९।।

गोम्मटसार के पढ चुकने पर उनके हृदय के पट खुल गये, तब भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत समयसार का भाषा पद्यानुवाद करना प्रारम्भ किया । भाषा साहित्य मे यह ग्रन्थ अद्वितीय और अनुपम है । इसमे बड़ो ही सरलता से अध्यात्म जैसे कठिन विषय का वर्णन किया हे ।

प० बनारसीदासजी धुन के पक्के और लगन के सच्चे धनी थे । सत्य की खोज मे ही अपना जीवन लगाया । अपने जीवन मे अनेकानेक सतों का एव महान पुरुषो का समागम किया और वीतरागी सतो के ग्रन्थो का अध्ययन करके आचार्य कुन्द कुन्ददेव की हृदय मे बेठाकर कलश टीका पढकर पाडे राजमलजी की रची हुई टीका भी पढी और कहा है कि—

"पाडे राजमल्ल जिनधर्मी । समैसार नाटक के मर्मी ॥"

पण्डितजी एक भेद विज्ञानी, धर्मात्मा, सद्गृहस्थ थे । वे न्याययुक्त जीवन ही व्यतीत करना चाहते थे । शाहजहाँ बादशाह के दरबार मे नौ रत्न थे, उनमे यह भी एक प्रमुख रत्न थे । इनकी विद्वत्ता के कारण कितने ही दरबारी इनसे द्वेष करते थे कि वे तो वीतरागी देव-गुरु-धर्म के ही अनुयायी हो रहे है ।

कहते है कि उस वक्त कविवर ने एक दुर्धर प्रतिज्ञा धारण की थी कि मैं जिनेन्द्रदेव के अतिरिक्त किसी के भी आगे मस्तक नम्र नही करूँगा । जब वह बात बादशाह के कान तक पहुँची, तब वे आश्चर्ययुक्त हुए परन्तु क्रोधयुक्त नही हुए ! वे बनारसीदासजी के स्वभाव से और धर्मश्रद्धा से भली-भाँति परिचित थे । परन्तु उस श्रद्धा की सीमा यहाँ तक पहुंच गई – यह वह नही जानते थे । इसी से वे विस्मित हुए । इस प्रतिज्ञा की परीक्षा करने के लिए बादशाह को एक मसखरी सूझी । आप एक ऐसे स्थान पर बैठे जिसका द्वार बहुत छोटा था और उसमे बिना सिर नीचे किये कोई भी प्रवेश नही कर सकता था । कविवर को एक सेवक के द्वारा बुलवाया । कविवर द्वार पर आते ही ठहर गये और बादशाह की चालाकी समझ गये । वह बैठ गये । पश्चात् शीघ्र ही द्वार मे पहले पैर डाल के प्रवेश कर गये । इस क्रिया से उन्हे मस्तक नम्र न करना पडा ।

कविवर की मृत्युकाल की बात प्रसिद्ध है । अन्त समय मे उनका कण्ठ रुँध गया था । इस कारण वह बोल नही सकते थे और अपना अन्त समय जानकर ध्यानावस्थित हो गये थे । लोगो को विश्वास हो गया था कि अब यह एक-दो घटे के ही मेहमान है । लोगो के आने का ताँता शुरु हो गया । कविवर का ध्यान पूर्ण हुआ, तब रिश्तेदार तथा समाज के लोग कहने लगे कि इनके प्राण माया और कुटुम्ब मे अटक गये है । इत्यादि अनेक प्रकार की अज्ञानजन्य बाते करने लगे । परन्तु लोगो की इस अविवेकपूर्ण बात को सुनकर कविवर ने आंखो के इशारे से एक पट्टिका और लेखनी लाने को कहा । बडी कठिनता से लोगो ने इनके सकेत को समझा । जब लेखनी आ गई, उन्होने लिखा—

"ज्ञान कुतक्का हाथ मारि अरि मोहना।
प्रगट्यो रूप स्वरूप अनत सु सोहना।।
जा परजै को को अत सत्य कर मानना।
चले बनारसिदास फेर नहि आवना।।"

कविवर ने समयसार नाटक मे आत्मस्वरूप का वर्णन इसप्रकार किया है —

"चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अग, कियौ परसग महातम घेरौ।।
ग्यानकला उपजी अब मोहि, कहौ गुन नाटक आगमकेरौ।
जासु प्रसाद सधै सिवमारग, वेगि मिटै भववास वसैरो।।"

इसी प्रकार अन्यत्र भी निजात्मा का स्वरूप बताते हैं —

"कहे विचच्छन पुरुष सदा मै एक हौ।
अपने रससौ भर्‌यौ आपनी टेक हौं।।
मोहकर्म मम नाहि नाहि भ्रमकूप है।
शुद्ध चेतना सिन्धु हमारौ रूप है।।"

इसप्रकार हम देखते है कि कविवर बनारसीदास अत्यत विषम उतार-चढावो के जीवन से गुजरकर भी एकरूप, समरस और शुद्ध चेतनासिन्धुमय जीवन जीते थे। इसी मे प्रमुदित रहते थे, अन्य को भी ऐसा जीवन जीने हेतु प्रेरित करते हे। हम सब उनकी प्रेरणा को अपने जीवन मे साकार कर ले – इस पावन भावना के साथ कविवर के प्रति हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

लेखक-परिचय —उम्र ५१ वर्ष। शिक्षा मैट्रिक। सफल व्यापारी भी और समर्पित तत्त्वप्रचारक विद्वान् भी। उपमन्त्री, पडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर। सम्पर्क सूत्र · M/s महावीर एण्ड क०, मुछाल भवन, एम टी क्लॉथ मार्केट, इन्दौर (म प्र) 452002

# 'समयसार नाटक' का पुण्य-पाप-एकत्व द्वार

– नेमीचन्द पाटनी

पण्डित बनारसीदास की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना "समयसार नाटक" है। इसके विषय की गभीरता एव कवित्तो के माध्यम से सीधी-साधी भाषा मे उस गभीर विषय का स्पष्टीकरण पण्डितजी की अद्भुत प्रतिभा को उजागर करता है।

उपरोक्त ग्रन्थ के विषय को पण्डितजी ने १३ अधिकारो (द्वारो) मे विभाजित किया है। इसमे १६ सवैयो का एक छोटा सा "पाप-पुण्य-एकत्व द्वार" है। इस द्वार का नामकरण भी पण्डितजी ने 'एकत्व' विशेषण लगाकर किया है। अतः हमे यहाँ समझना है कि पण्डितजी ने ऐसा क्यो किया ?

हमारा उद्देश्य तो मात्र मोक्ष प्राप्त करना अर्थात् पूर्ण सुखी होना है, उसको प्राप्त करने के उपाय के रूप मे सप्ततत्त्व का यथार्थ श्रद्धान होना अत्यन्त आवश्यक है। इन सात तत्त्वो मे आस्रव तत्त्व तथा बधतत्त्व हेय है। उन्ही के अवयवरूप पुण्य एव पाप तत्त्व है। इन दोनो तत्त्वो का आस्रव एव बध तत्त्व की तरह सात तत्त्वो मे स्वतन्त्र स्थान नही है, वल्कि ये दोनो आस्रव-बध तत्त्व के अग ही है। ऐसा होने पर भी अज्ञानी जीव आस्रव को पुण्य और पाप के रूप मे दो भागो मे बाँटकर पुण्य को उपादेय और पाप को हेय मानकर एक प्रकार से आस्रव तत्त्व को, जो मात्र हेय तत्त्व है, उसमे उपादेय बुद्धि कर लेता है तथा आस्रव के नाश करने का पुरुषार्थ करने के बजाय आस्रव की रक्षा करने का पुरुपार्थ करता है, फलत मोक्षमार्ग की प्राप्ति के बजाय वह उसके विरुद्ध ससार मार्ग का ही पोषण करता है।

अज्ञानी जीव की इस भूल को मिटाने के लिए पण्डितजी ने पुण्य और पाप मे द्वैत नही हैं, दोनो एकत्वरूप ही है – यह समझाने का प्रयास किया है तथा इसके लिए पुण्य-पाप मे एकत्व सिद्ध किया है तथा 'एकत्व' शब्द लगाकर अज्ञानी को दोनो तत्त्वो को एक आस्रव तत्त्व ही मानने के लिए प्रेरित करने की दृष्टि से इस अधिकार को "पुण्य-पाप-एकत्व द्वार" नाम दिया है। पण्डितजी ने आस्रव द्वार के प्रारम्भ मे स्वय लिखा भी है कि–

पाप पुन्न की एकता, वरनी अगम अनूप।
अब आस्रव अधिकार कछु, कहौ अध्यातम रूप ।।१।।

यही बात आचार्य श्री अमृतचन्द्रदेव के पुण्य-पाप अधिकार की प्रारम्भिक उत्थानिका से भी सिद्ध होती है। यथा—

"अथैकमेव कर्म द्विपात्रीभूय पुण्यपापरूपेण प्रविशति।"

तात्पर्य यह है कि पुण्य-पाप मात्र एक आस्रवतत्त्व के ही दो अग हे तथा मोक्षमाग मे। दोनो ही वध के कारण होने से दोनो ही हेय तत्त्व है, उनमे किसी को हेय तथा किसो को उपादेय मानना यह आस्रव-बध तत्त्व सम्बन्धी भूल है और सात तत्त्व की यथार्थ श्रद्धा हुए विना सम्यक्त्व प्राप्त होना असम्भव है।

इस ही को पण्डितजी ने सिद्ध किया है कि पुण्य और पाप दोनो की उत्पत्ति के कारणो मे भी एकता है और उनके फल अर्थात् वध मे भी एकता है, उनके स्वाद मे भी एकता है, ससार के बढाने मे भो दोनो का फल एक सा ही है अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने मे दोनो एक ही प्रकार से बाधक है। इस ही को अमृतचन्द्राचार्यदेव ने निम्न श्लोक द्वारा स्पष्ट किया है—

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणा सदाप्यभेदान्न हि कर्मभेदः।
तद्बधमार्गाश्रितमेकमिष्ट स्वय समस्त खलु बधहेतुः ॥१०२॥

अर्थः—हेतु, स्वभाव, अनुभव और आश्रय - इन चारो का सदा ही अभेद होने से कर्म मे निश्चय से भेद नही है, इसलिए समस्त कर्म निश्चय से बधमार्ग के आश्रित है और बध के कारण है, अत कर्म एक ही माना गया है, उसे एक ही मानना योग्य है।

इस प्रकार पण्डितजी ने इस अधिकार का "पाप-पुण्य-एकत्व द्वार" नाम दिया, उसका औचित्य सिद्ध होता है। साथ ही पण्डितजी उपरोक्त कलश के उत्तर मे उपरोक्त हेतु, स्वभाव, अनुभव एव आश्रय चारो के स्वरूप का स्पष्टीकरण पाँचवे छन्द मे इस प्रकार देते हैं—

सकलेस परिनामनि सौ पापबध होइ,
विसुद्ध सौ पुन्न बध हेतु-भेद मानियै।
पाप के उदै असाता ताकौ है कटुक स्वाद,
पुन्न उदै साता मिष्ट रस-भेद जानियै॥
पाप सकलेस रूप पुन्न है विसुद्ध रूप,
दुहू कौ सुभाव भिन्न भेद यौ बखानियै।
पाप सौ कुगति होई पुन्न सौ सुगति होइ,
ऐसौ फलभेद परतच्छि परमानियै ॥५॥

इस ही सन्दर्भ मे उक्त चार भेदो को समझकर मोक्षार्थी का क्या कर्तव्य है, उसका स्पष्टीकरण स्वय छठवे छन्द मे निम्न प्रकार किया है —

पाप बध पुन्न बध दुहू मैं मुकति नाहि,
कटुक मधुर स्वाद पुग्गल कौ पेखिए।
सकलेस विसुद्ध सहज दोऊ कर्मचाल,
कुगति सुगति जगजाल मै विसेखिए।।
कारनादि भेद तोहि सूझत मिथ्यात माहि,
ऐसौ द्वैत भाव ग्यान दृष्टि मे न लेखिए।
दोऊ महा अधकूप दोऊ कर्मबधरूप,
दुहू कौ विनास मोख मारग मै देखिए।।६।।

उपर्युक्त विषय पर गम्भीरता से विचार करने पर सहज ही प्रश्न खडा होता है कि संसारी प्राणियो को बहुधा दो हा भाव देखने मे आते है और आपने दोनो ही भावो को छोडने योग्य कहा है तो हम क्या करे ? इसके सम्बन्ध मे स्वय पण्डितजी ने निम्न प्रकार आठवें छन्द मे प्रश्न उठाकर स्पष्ट किया है—

सिष्य कहै स्वामी तुम करनी असुभ सुभ,
कीनी है निषेध मेरे ससै मन माही है।
मोख के सधैया ग्याता देसविरती मुनीस,
तिनकी अवस्था तौ निरावलब नाही है।।
कहै गुरु करम कौ नास अनुभौ अभ्यास,
ऐसौ अवलब उनही कौ उन पाही है।
निरुपाधि आतम समाधि सोई सिवरूप,
और दौर धूप पुदगल परछाही है।।८।।

इसी की पुष्टि मे दसवें छन्द मे वे कहते है कि—

अंतर-दृष्टि लखाउ, निज सरूपकौ आचरन।
ए परमातम भाउ, सिव कारन येई सदा।।१०।।

इस प्रकार पण्डितजी ने दो बाते स्पष्ट रूप से सिद्ध की कि (१) पाप-पुण्य दोनो मे एकत्व है अर्थात् आस्रव-बध के कारण एव ससार-परिभ्रमण की अपेक्षा दोनो मे समानता है तथा (२) एक आत्मा का आश्रय, अवलम्बन अर्थात् अपनापन स्थापन कर लेने से अपना उपयोग आत्मा मे ही सिमटने लगता है अर्थात् अपने मे ही आचरण करने लगता है, फलत: पुण्य-पाप भाव ही उत्पन्न नही होते, इस ही को शास्त्रीय भाषा मे शुद्ध उपयोग कहा गया है।

पण्डितजी ने सातवे छन्द मे निम्न प्रकार कहा है—

सील तप सजम विरति दान पूजादिक,
अथवा असजम कषाय विषैभोग है।
कोऊ सुभरूप कोऊ असुभ स्वरूप मूल,
वस्तु के विचारत दुविध कर्मरोग है।।

ऐसी वधपद्धति बखानी वीतराग देव,
आतम धरम में करम त्याग जोग है।
भौ-जल-तरैया राग-द्वेष को हरैया महा–,
मोख को करैया एक सुद्ध उपयोग है ।।७।।

उपर्युक्त विषय स्पष्ट होने पर भी एक गम्भीर प्रश्न खडा रहता है कि साधक जीव (सम्यग्दृष्टि जीव) भी शुभ-अशुभ भाव से रहित तो नही देखने मे आते। जब वे यह मानते है कि शुभ-अशुभ दोनो भाव ही ससार के कारण है, छोडने योग्य है, फिर भी वे उन भावो मे देखे जाते है; उसका कारण क्या ? साथ ही जिनवाणी मे भी शुभ भाव को मोक्षमार्ग का कारण, परम्पराकारण कहा गया गया है, उपादेय भी कहा गया है ? ये दोनो बाते एक दूसरे के विपरीत जान पडती हैं। अत इसका समाधान अत्यन्त आवश्यक है।

समाधान स्वरूप पण्डितजी ने चौदहवे छन्द मे निम्न प्रकार कहा है—

जौलौं अष्ट कर्म को विनास नाही सरवथा,
तौलौ अतरातमा में धारा दोइ बरनी।
एक ग्यानधारा एक सुभासुभ कर्मधारा,
दुहू की प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी ।।
इतनौ विसेस जु करमधारा बधरूप,
पराधीन सकति विविध बध करनी।
गयानधारा मोखरूप मोख की करनहार,
दोख की हरनहार भौ–समुद्र–तरनी ।।१४।।

उपर्युक्त सवैया से यह स्पष्ट है कि ज्ञानी पुरुष को ज्ञानधारा तथा कर्मधारा दोनो साथ-साथ रह सकते हैं और ज्ञानधारा मोक्षमार्ग रूप है तथा कर्मधारा ससारमार्ग रूप है, लेकिन ज्ञानी कर्मधारा अर्थात् शुभाशुभ भाव दोनो को हेय मानते हुए भी उनको होने क्यो देता है—यह प्रश्न ज्यो का त्यो खडा ही रहता है।

उपर्युक्त विषय मे समझने योग्य तथ्य यह है कि किसी भी वस्तु को छोडने अर्थात् त्याग करने के पहले अनेक प्रकार से वह वस्तु मेरे लिए अहितकर है - ऐसा निर्णय किया जाता है अर्थात् सबसे पहले मान्यता मे श्रद्धा मे उस वस्तु को अहितकर अर्थात् छोडने योग्य माना जाता है तभी वह छोडी जा सकती है। ऐसा कभी देखन मे नही आता कि जिस वस्तु का त्याग हो वह पहले विचारो मे, श्रद्धा मे छोडने योग्य नही मानी जावे अर्थात् रखने योग्य मानी जावे और वह छूट जावे। ठीक इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष शुभाशुभ भावो को श्रद्धा मे छोडने योग्य मानता है, तब ही वे क्रमशः छूटते है। जिस प्रकार निर्णय और छूटना एक साथ ही नही होते, उसी प्रकार श्रद्धा मे हेय मान लेने से ही शुभाशुभ भावो का छूटना सभव नही होता। इस ही अपेक्षा उपर्युक्त सवैये मे अन्तरात्मा अर्थात् ज्ञानी को शुभाशुभ कर्मधारा एव ज्ञानधारा अर्थात् शुभाशुभ के अभावस्वरूप

ज्ञायक भाव मे प्रवृत्ति रूप धारा दोनो एक साथ अर्थात् साथ-साथ रहती है। श्रद्धा मे हेय मान लेने के बाद उत्तरोत्तर जसे-जंसे कमधारा घटती जाती है वैसे-वेसे ही ज्ञानधारा बढती जाती है। अन्ततः कर्मधारा का सम्पूर्णतया अभाव होकर मोक्ष-प्राप्ति हो जाती है।

इस प्रकार जिनवाणी मे जहाँ-जहाँ शुभभाव को हेय कहा गया हो वहाँ उस कथन को श्रद्धा की अपेक्षा कहा गया कथन समझना चाहिए, साथ ही यह भी स्वीकार करना चाहिए कि छोडने योग्य मानने पर भी मै इनका अभाव नही कर पाता हूँ --यह भी मेरा स्वय का कसूर है। ऐसा स्वीकार करने से ज्ञानी क्रमश उन भावो का भी अभाव करने का प्रयास करता रहता है। उन प्रयासो को वह छोडता नही है तथा उपादेय भी नही मानता है, ऐसी स्थिति मे वर्तनेवाले ज्ञानी के शुभाशुभ भावो को ज्ञानी को भूमिका मे घातक नही होने से अर्थात् श्रद्धा मे हेय मानते हुए भी जो-जो शुभाशुभ प्रवृत्ति मे चलते रह सकते है, उन-उन भावो को जिनवाणी मे व्यवहार चारित्र के नाम से कहा गया है। इस ही कारण उन-उन भावो को निश्चय चारित्र का सहचारी देखकर व्यवहार से परम्परा कारण भी कहा गया है।

इस सम्बन्ध मे उपर्युक्त कथन के मर्म को भली प्रकार नही समझकर उसका एकान्त पक्ष पकडकर जो व्यक्ति अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के पोषण के लिए उपर्युक्त अभिप्राय का दुरुपयोग करता है। उसको भी सचेत करने के लिए पण्डितजी पन्द्रहवे छन्द मे निम्न प्रकार कहते है—

समुझै न ग्यान कहै करम किये सौ मोख,<br>
ऐसे जीव विकल मिथ्यात की गहल मैं।<br>
ग्यान पच्छ गहै कहै आतमा अबध सदा,<br>
बरतै सुछद तेऊ बूडे है चहल मैं॥<br>
जथा जोग करम करै पै ममता न धरै,<br>
रहै सावधान ग्यान ध्यान की टहल मै।<br>
तेई भव सागर के ऊपर ह्वै तरै जीव,<br>
जिन्हि कौ निवास स्यादवाद के महल मै॥१५॥

जैसै मतवारौ कोऊ कहै और करै और,<br>
तैसै मूढ प्रानी विपरीतता धरतु है।<br>
असुभ करम बध कारन बखानै मानै,<br>
मुकति के हेतु शुभ-रीति आचरतु है॥<br>
अतर सुदृष्टि भई मूढता बिसर गई,<br>
ग्यान कौ उदोत भ्रम-तिमिर हरतु है।<br>
करनी सौ भिन्न रहै आतम-सुरूप गहै,<br>
अनुभौ अरंभि रस कौतुक करतु है॥१६॥

इस प्रकार पण्डितजी ने इस पुण्य-पाप-एकत्व द्वार के माध्यम से अज्ञानी की पाप मे हेय व पुण्य मे उपादेय रूप अनादिकालीन भूल को मिटाकर सच्चा श्रद्धान कराया है । शुभभाव एव अशुभभाव दोनो ही आस्रव के भेद होने से सदैव एव सर्वत्र हेय ही हैं—ऐसा सर्वप्रथम श्रद्धा मे स्वीकार कर क्रमश. उनके अभाव करने का पुरुषार्थ करना चाहिए, ऐसी यथार्थ श्रद्धा के द्वारा पूर्ण दशा की प्राप्ति हो जाती है ।

इस मार्ग को अपना कर सभी जीव अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करें, इसी भावना के साथ विराम लेता हूँ ।

लेखक-परिचय —उम्र ७४ वर्ष । शिक्षा मिडिल क्लास । आप लगभग ४० वर्ष पूर्व आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के सपर्क मे आए थे और तभी से निरन्तर जिनवाणी के आलोक मे जीने और जिलाने का अनुपम कार्य कर रहे हैं । आप पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के महामन्त्री हैं । श्री कुन्दकुन्द-कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं । श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के मत्री हैं । अन्य भी ऐसी ही अनेक महत्त्वपूर्ण धार्मिक सस्थाओं के उच्च पदो पर आसीन रहते हुए आप तत्त्वप्रचार मे निष्पृह भाव से ७४ वर्ष की अवस्था मे भी आश्चर्यजनक सक्रियता से कार्य कर रहे हैं । तत्त्व के प्रचार प्रसार मे आपका बहुमुखी योगदान अविस्मरणीय है । खास बात तो यह है कि इसके बावजूद आप जिनवाणी के मर्मज्ञ प्रवचनकार विद्वान् भी हैं ।

वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम ।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभौ याकौ नाम ।।

— समयसार नाटक

# उनकी जन्म-शताब्दी मनाना तब सार्थक होगा

– पण्डित ज्ञानचन्द जैन

☐

यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि अध्यात्मरसिया कविवर पण्डित बनारसीदास के चतुर्थ शताब्दी वर्ष मे जैनपथ प्रदर्शक अपना वार्षिक विशेषांक प्रकाशित कर रहा है। अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन द्वारा भी सारे देश मे उनका चतुथ शताब्दी समारोह दि. ६.२ १९८७ को मनाया जा रहा है। लाखो की तादाद मे जयपुर से छपनेवाली राजस्थान पत्रिका (दैनिक) मे भी उनकी जीवनी का वृतान्त क्रम से चल रहा है।

आखिर उनमे ऐसी कौन सी चीज है जो सारे भारतवासी जैन आज भी उनका ऐसा उपकार मानते है? उनके जीवन मे ऐसी कौन सी अलौकिकता है जिसे हम आज भी याद करते है ?

स. १६४३ को माघ शुक्ल एकादशी रविवार के दिन रोहिणी नक्षत्र के तृतीय चरण में जन्मे इस महापुरुष ने समर्थ आचार्य कुन्दकुन्द के एव आचार्य अमृतचद्र के रहस्य को 'समयसार नाटक' के माध्यम से खोलकर जगत को निहाल किया है। समयसार नाटक, परमार्थ वचनिका जैसे महान अध्यात्म के गूढ रहस्यो की प्रशसा हमने सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी से प्रत्यक्ष सुनी है। ज्ञानी की अन्तर्दृष्टि को अन्तर्दृष्टि वाले ज्ञानी गुरुदेव ने पहचाना था।

पण्डितजी ने अपने जीवनकाल मे अनेक उतार-चढाव देखे। पण्डितजी ने एक के बाद एक तीन शादियाँ की, उनसे दो पुत्री सात पुत्र हुए तथा वे सभी उनके सामने ही वियोग को भी प्राप्त हुए। ऐसी परिस्थिति बनने पर भी उन्होने मन स्थिति नही बिगडने दी।

जीवन के अन्तिम क्षणो मे भी अपने ज्ञायक का अवलबन न छोडनेवाले बनारसी दास अतिम छन्द लिखकर जगत को धर्मध्यान की प्रेरणा दे गये।

"ज्ञान कुतक्का हाथ, मारि अरि मोहना।
प्रगट्यो रूप स्वरूप, अनन्त सु सोहना ॥
जा परजै को अत, सत्य कर मानना।
चले बनारसीदास, फेर नही आवना ॥"

कविवर ने समयसार नाटक के मर्म को खोलकर भव्य जीवो को निहाल किया है। आत्मा के अनुभव को ही सच्चा सुख मानते हुए वे लिखते है—

"अनुभव चिन्तामनि रतन, अनुभव है रसकूप ।
अनुभव मारग मोख को, अनुभव मोख सरूप ।।"

वे सम्यक्त्वी की महिमा गाते अघाते नही हैं—

"भेदविज्ञान जग्यौ जिन्ह के घट, सीतल चित्त भयौ जिम चदन ।
केलि करै सिव मारग मे, जग माहि जिनेसुर के लघु नन्दन ।"

उन्होने उपादान-निमित्त की सारी कथा एक दोहे मे कह दी है —

"उपादान निज गुण जहा, तह निमित्त पर होय ।
भेद ज्ञान परवान विधि, विरला बूझै कोय ।।"

इसी तरह सम्यग्दर्शन से लेकर मोक्ष तक की सारी बात एक दोहे मे कह दी हैं—

"एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर ।
समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहि और ।"

कहाँ तक कहे, यदि हम इस चतुर्थ शताब्दी समारोह मे उनके द्वारा विरचित अर्द्ध-कथानक, समयसार नाटक नाममाला, बनारसीविलास, परमार्थ वचनिका, उपादान-निमित्त की चिठ्ठी आदि आगम ग्रन्थो का स्वाध्याय करके अपन जीवन मे सयोग व विभाव से दृष्टि हटाकर स्वभाव-सन्मुख जा सके, तो उनकी जन्म शताब्दी मानना साथक होगा ।

कविवर के जन्म दिन ६ फरवरी १९८७ से एक वर्ष तक सारे देश की स्वाध्याय शालाओ के माध्यम से सभी जीव इन ग्रन्थो का पठन, पाठन, मनन चिन्तन करके अनुभव को प्राप्त करे—इस पवित्र भावना के साथ कविवर प बनारसीदास के चरणो मे अपने श्रद्धासुमन समर्पित करता हूँ । कि जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियो मे हमारी मन·स्थिति न बिगडे तथा हम सयोगो को बदलने के बजाय दृष्टि को बदले, स्वलक्ष्मी प्रकट करने का पुरुषार्थ जगाये—इस पवित्र भावना के साथ विराम लेता हूँ ।

□

लेखक-परिचय — उम्र ५२ वर्ष । श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के समर्पित तत्त्वप्रचारक आध्यात्मिक विद्वान् । सम्पर्क-सूत्र ज्ञानानन्द निवास, किला अन्दर, विदिशा (म० प्र०) ।

# भेदविज्ञान : कविवर पं. बनारसीदास की दृष्टि मे

– वि० धनकुमार जैन

□

जैनदर्शन का मूल प्रयोजन आत्महित रहा है जो आत्मानुभूति से ही सभव है, क्योकि आत्मा की अनुभूति बिना सुख प्राप्त करना असभव है। कविवर ने स्वयं कहा है–

"अनुभव चिन्तामनि रतन, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोख कौ, अनुभव मोख सरूप ॥"

उक्त अनुभव का स्वरूप दर्शाते हुए वे लिखते है—

"वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभौ याकौ नाम ॥"

अनुभव का अभिप्राय आत्मानुभूति से है तथा रसस्वादत का भाव निजानन्द से है। जनदर्शन के समस्त ज्ञानी सतो ने अनुभूति का उपाय भेदविज्ञान को ही माना है। जब तक आपा-पर (स्व-पर) का भेदविज्ञान नही करेगे तब तक अपनी वस्तु मे अपनत्व के साथ स्वानुभूति कैसे प्रकट होगी ? अन: यह तो निश्चित है कि सुख-प्राप्ति की उपायभूत स्वानुभूति भेदविज्ञान कला से ही सम्भव है। यहाँ केवल कविवर बनारसीदास की दृष्टि से ही भेदज्ञान का विषय विवेच्य है।

महाकवि प० बनारसीदासजी एक आध्यात्मिक क्रान्ति के जन्मदाता एव अध्यात्म और काव्य दोनो मे सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त सत्रहवी शताब्दी के सुप्रसिद्ध आत्मानुभवी विद्वान थे। आप अपने जीवन मे विपुल सकटो के बीच रहकर भी निज-आत्मबल (पुरुपार्थ) द्वारा जैनेतर मान्यताओ से विरक्त होकर दिगम्बर जैन बने थे। पश्चात् आपने जिनागम एव जिनाध्यात्म से ओतप्रोत चार रचनाएँ लिखी। उनमे से "समयसार नाटक" एक सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक कृति है।

विवेचनीय विषय 'भेदविज्ञान' सवर द्वार मे विशेष स्पष्टीकरण के साथ आया है। इस सदर्भ मे जो लिखा है वह अवलोकनीय है। निम्नाकित छन्द मे कविवर ने भेदविज्ञान को साक्षात् आत्मानुभूतिरूप सवर, निर्जरा तथा मोक्ष का कारण बताया है—

"भेदग्यान सवर-निदान निरदोप है।
सवर सौं निर्जरा अनुक्रम मोक्ष है ।।
भेद ग्यान सिवमूल जगतमहि मानिये।
जदपि हेय है तदपि उपादेय जानिये ।।"

लोक मे भेदविज्ञान निर्दोष है, सवर का कारण है, सवर-निर्जरा का कारण है और निर्जरा मोक्ष का कारण है। यद्यपि वह आत्मा का निजस्वरूप नही होने से त्याज्य है तो भी उसके बिना मोक्ष एव मोक्षमार्ग नही होने से प्रथम अवस्था मे उपादेय माना है। आत्मस्वरूप की प्राप्ति हाने पर भेदविज्ञान को भी हेय कहा है—

"भेदग्यान तबलौ भलौ, जबलौ मुकति न होइ।
परम जाति परगट जहा, तहा न विकलप कोइ ।।"

भेदविज्ञान तभी तक सराहनीय है जबतक मोक्ष अर्थात् शुद्धस्वरूप ही प्राप्ति नही होती। जहाँ ज्ञानज्योति (सम्यग्ज्ञान) प्रगट हो जाती है वहाँ भेदज्ञान का भी अवकाश नही रहता। वैसे देखा जाए तो भेदविज्ञान से ही आत्मा उज्ज्वल होती है, प्राथमिक भूमिका मे भेदविज्ञान की उपयोगिता बताते हुए यह भी कहा है—

"भेदग्यान साबू भयौ, समरस निरमल नीर।
धोबी अतर आतमा, धोवै निजगुन चीर।।"

समकितो (विवेकी) रूपी धोबी, भेद विज्ञान रूप साबुन और समता रूप निर्मल जल से आत्मगुण रूप वस्त्र को साफ करते है।

अब भेदविज्ञान के स्वरूप परविचार करते है, जिसकी महत्ता ऊपर कह आए है।

समस्त परवस्तुओ से भिन्न निजात्मा को जानना ही भेदविज्ञान है। स्व और पर के बीच अन्तर (भेद) किए जानेवाले विवेक (ज्ञान) को ही भेदविज्ञान कहा जाता है। वस्तुत देखा जाए तो आत्मज्ञान (आत्मधर्म) ही भेदविज्ञान है। इसे स्व-पर विवेक नाम से भी अभिहित किया जाता है।

भेदविज्ञान से आशय यह नही कि मात्र दो पदार्थों के बीच अन्तर को जानना, अपितु जिन पदार्थो के बीच भेद (अन्तर) किया जा रहा है उनमे प्रथम पार्टी मे स्वय का, दूसरी पार्टी मे परवस्तुओ या व्यक्तियो का होना अनिवार्य है। जैसे रूस और चीन के बीच सीमा विवाद के होने मे और भारत और चीन के बीच सीमा विवाद होने मे जो अन्तर (फर्क) है, वही अन्तर इसमे समझना चाहिए।

पर को जानना भी स्व को जानने के लिए ही है। पर का त्याग और स्व का ग्रहण ही भेदविज्ञान एव उसका फल है। पर को जानना मात्र है और स्वय को जानने के साथ ही उसमे जमना-रहना है।

# बनारसीदास के समय की सामाजिक स्थिति

– डॉ० अनिल जैन

□

ग्रर्द्ध कथानक" कई दृष्टिकोणो से बहुत महत्त्वपूर्ण कृति है। यह ऐसे युग मे ा जब केवल मुगल बादशाहो के चरित ही लिखे जाते थे। यह एक स्तरीय रेत है क्योकि इसमे कवि ने अपनी सभी कमजोरियो तथा कमियो को बिना चकिचाहट के प्रस्तुत किया है। उन्होने अपने दोषो को बताने मे इस बात की ात्र भी चिन्ता नही की है कि उनकी बातो को पढकर लोग मजाक बनायेगे तथा रेगे। इस आत्मचरित मे कविवर के जीवन के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक जनैतिक स्थिति के बारे मे भी बहुत कुछ पता चलता है।

उस समय लोग बच्चो की शिक्षा पर अधिक ध्यान नही देते थे। प्राथमिक शिक्षा ा समझी जाती थी। समाज मे बालविवाह की प्रथा प्रचलित थी। दश-ग्यारह आयु मे ही शादियाँ हो जाया करती थी। समाज मे स्त्रियो की स्थिति अच्छी ।। स्त्री के मरने के समाचार के साथ ही दूसरे विवाह का प्रस्ताव आ जाया ये। चिकित्सा की अच्छी व्यवस्था नही थी। इसी कारण अधिकाश की अल्पायु मे ु हो जाया करती थी। स्त्रियाँ भी प्रसूति-काल मे मर जाया करती थी। कविवर नो बच्चे अल्पायु मे ही मर गये, दो पत्नियाँ प्रसवकाल मे ही मर गई। माता-पिता न्त के समय अपने आत्मीय जनो मे मिठाई तथा फल आदि वितरण करने की प्रचलित थी। कविवर ने स्वय उस रीति के अनुसार अपने माता पिता के स्वर्ग- होने पर फल आदि वितरित किये।

समाज मे अन्ध-विश्वास फैला हुआ था। लोग जादू-टोने तथा मन्त्रो-तन्त्रो हुत विश्वास करते थे। सती की जात आदि पर जाने की प्रथा भी प्रचलित थी।

उन दिनो सस्ते का जमाना था। कविवर ने स्वयं दो सौ रुपये से ही नये सिरे से ार प्रारभ किया। लोग एक-दूसरे पर बहुत विश्वास करते थे। कविवर ने अपने ार का सामान किसी और के हाथो जौनपुर से आगरा मँगवाया। एक कचौडीवाले ई महीने कविवर को उधार कचौडियाँ खिलाई। मकान आदि किराये पर उठाने रपरा थी। घरो मे सन्दूक आदि रखने की कोई विशेष व्यवस्था अच्छी नही थी। भी धर्म को मानने की स्वतत्रता थी तथा विद्वान लोग आपस मे बैठकर धार्मिक

भेदविज्ञानी अपने पराये की पहचान करता है। परपरणति का त्याग कर शुद्धात्मा के अनुभव मे स्थिर रहकर, निजपद को प्राप्त कर, निर्मल, विशुद्ध, स्थिर अतीन्द्रिय परमानन्द को प्राप्त करता है।

इसप्रकार हम देखते है कि धर्म का प्रारम्भ संवर (स्वानुभूति) से होता है और वह सवर भेदविज्ञानपूर्वक होता है। अत. हम सबका कर्तव्य है कि हम भेदविज्ञान कला को प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

□

लेखक परिचय —उम्र २० वर्ष। शिक्षा शास्त्री। सम्प्रति श्री टोडरमल दि जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर मे जैनदर्शनाचार्य मे अध्ययनरत। मातृभाषा आपकी तमिल है। सम्पर्क-सूत्र ए–४, बापूनगर, जयपुर ३०२०१५

## तू भ्रम भूल ना रे प्रानी

तू भ्रम भूल ना रे प्रानी, तू भ्रम भूल ना रे। टेक।।
धर्म विसारि विषय सुख सेवत, वे मतिहीन अग्यानी ।।तू०।।
तन-धन-सुत-जन जीवन जोबन, डाभ अनी ज्यौ पानी ।।तू०।।
देख दगा परतच्छ 'बनारसी' ना कर होड विरानी ।।तू०।।

– बनारसी विलास, पृष्ठ २३६

# बनारसीदास के समय की सामाजिक स्थिति

— डॉ० अनिल जैन

□

"अर्द्धकथानक" कई दृष्टिकोणो से बहुत महत्त्वपूर्ण कृति है। यह ऐसे युग मे लिखा गया जब केवल मुगल बादशाहो के चरित ही लिखे जाते थे। यह एक स्तरीय आत्म-चरित है क्योकि इसमे कवि ने अपनी सभी कमजोरियो तथा कमियो को बिना किसी हिचकिचाहट के प्रस्तुत किया है। उन्होने अपने दोषो को बताने मे इस बात की किचित्‌मात्र भी चिन्ता नही की है कि उनकी बातो को पढकर लोग मजाक बनायेगे तथा घृणा करेगे। इस आत्मचरित मे कविवर के जीवन के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति के बारे मे भी बहुत कुछ पता चलता है।

उस समय लोग बच्चो की शिक्षा पर अधिक ध्यान नही देते थे। प्राथमिक शिक्षा ही बहुत समझी जाती थी। समाज मे बालविवाह की प्रथा प्रचलित थी। दश-ग्यारह वर्ष की आयु मे ही शादियाँ हो जाया करती थी। समाज मे स्त्रियो की स्थिति अच्छी नही थी। स्त्री के मरने के समाचार के साथ ही दूसरे विवाह का प्रस्ताव आ जाया करते थे। चिकित्सा की अच्छी व्यवस्था नही थी। इसी कारण अधिकाश की अल्पायु मे ही मृत्यु हो जाया करती थी। स्त्रियाँ भी प्रसूति-काल मे मर जाया करती थी। कविवर के ही नौ बच्चे अल्पायु मे ही मर गये, दो पत्नियाँ प्रसवकाल मे ही मर गई। माता-पिता के देहान्त के समय अपने आत्मीय जनो मे मिठाई तथा फल आदि वितरण करने की रीति प्रचलित थी। कविवर ने स्वय उस रीति के अनुसार अपने माता पिता के स्वर्ग-वास होने पर फल आदि वितरित किये।

समाज मे अन्ध-विश्वास फैला हुआ था। लोग जादू-टोने तथा मत्रो-तन्त्रो पर बहुत विश्वास करते थे। सती की जात आदि पर जाने की प्रथा भी प्रचलित थी।

उन दिनो सस्ते का जमाना था। कविवर ने स्वयं दो सौ रुपये से ही नये सिरे से व्यापार प्रारभ किया। लोग एक-दूसरे पर बहुत विश्वास करते थे। कविवर ने अपने व्यापार का सामान किसी और के हाथो जौनपुर से आगरा मँगवाया। एक कचौडीवाले ने कई महीने कविवर को उधार कचौडियाँ खिलाई। मकान आदि किराये पर उठाने की परपरा थी। घरो मे सन्दूक आदि रखने की कोई विशेष व्यवस्था अच्छी नही थी। किसी भी धर्म को मानने की स्वतत्रता थी तथा विद्वान लोग आपस मे बैठकर धार्मिक

चर्चायें भी करते थे । उन दिनो व्यापार अच्छा चलता था । लोग साझे मे व्यापार करते थे, जिसमे विभिन्न शर्तें भी रखी जाती थी । साझे की समाप्ति पर कागजी कार्यवाही पूरी करना बहुत ही आवश्यक था, अन्यथा एक साझी द्वारा दूसरे पर कानूनी कार्यवाही करने का डर रहता था । कविवर बनारसीदास को साझा समाप्त होने पर मात्र कागजी कार्यवाही पूरी करने के लिए जौनपुर से आगरा आना पडा था । व्यापार धन्धे तथा सामान्य लेन-देन मे हीरे-मोती के अतिरिक्त राज्य की ओर से सिक्के भी प्रचलित थे । व्यापार के अच्छे होने मे उस समय की डाक व्यवस्था भी सहयोगी थी । यातायात मे सामान्यतया वैलगाडी का प्रयोग किया जाता था । साथ मे मजदूरो से काम लिया जाता था जो सिर पर रखकर सामान ले जाया करते थे ।

अर्द्धकथानक के अनुसार उस समय मुगलो की राजधानी आगरा थी । ५२ वर्ष राज्य के करने के पश्चात् सवत् १६६२ के कार्तिक मास मे शाह अकबर मृत्यु को प्राप्त हुए । उनके पश्चात् अकबर के ज्येष्ठपुत्र शाहजादा सलीम सिंहासन पर आरूढ हुए । सलीम ने सुल्तान नूरुद्दीन जहाँगीर की पदवी धारण की ।

सवत् १६८४ के अषाढ मास से २२ वर्ष तक राज्य करने के बाद बादशाह जहाँगीर काश्मीर से दिल्ली आते हुए रास्ते मे ही मर गया । उसकी मृत्यु के चार मास पश्चात् शाहजहाँ आगरे के सिहासन पर वैठा और साहिब खान किरान की उपाधि धारण की ।

अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ के शासनकाल को मुगलो का स्वर्णयुग कहा जाता है क्योकि इस दौरान एक स्थिर राज्य की स्थापना हुई । बाहरी आक्रमण बिल्कुल समाप्त हो गये थे तथा देश दिन-प्रतिदिन उन्नति कर रहा था । लोगो को किसी भी धर्म को मानने की छूट थी । धार्मिक यात्राओ मे राज्य की ओर से सहायता दी जाती थी । डाक-व्यवस्था भी सुन्दर थी । इस सबके बावजूद भी शासन-व्यवस्था मे बहुत सी कमियाँ थी, जिसके कारण आम जनता को कभी-कभी बहुत से कष्ट उठाने पडते थे ।

हम इस काल का ऐतिहासिक इतिवृत्त तो अन्य स्थानो से भी प्राप्त कर सकते है, लेकिन उस समय के राज्य के अन्तर्गत आम जनता किस प्रकार आतकित रहती थी तथा उसे कैसी-कैसी यातनाये भुगतनी पडती थी, इसका उल्लेख 'अर्द्धकथानक' के अतिरिक्त कही और मिलना शायद कठिन है । कारण यह है कि कवि बनारसीदासजी उस राज्य के एक सामान्य नागरिक थे, अत उन्होने उस समय की आप-वीती को ज्यो का त्यो प्रस्तुत कर दिया । 'अर्द्धकथानक' के अनुसार मुगलकाल की शासन व्यवस्था का कुछ महत्त्वपूर्ण ब्यौरा इस प्रकार है—

(१) घर के मुखिया के मरने के वाद उस घर पर मुगल सरदार की मोहर लग जाती थी । इस प्रकार वह घर मुगल सरदार के आधीन हो जाता था । ऐसा ही एक वार कवि बनारसीदास के वावा मूलचद के समय हुआ । वे उस समय मध्य-भारत के वीहोली गाँव मे रहते थे ।

(२) शासन-परिवर्तन के समय लोग बहुत ही भयभीत रहते थे। सम्राट अकबर की मृत्यु के समय देश मे जो कुछ घटित हुआ, उसके बारे मे कविवर लिखते है कि सवत् १६६२ मे वर्षाकाल शेष होने पर कार्तिक मास मे सम्राट अकबर मर गये। यह खबर आई। लोग उनके अभाव मे स्वय को पितृहीन-से असहाय समझने लगे। चारो ओर आतक फैल गया। भविष्य की चिन्ता मे मनुष्य चिन्तित हो गये। जब यह खबर आई कि राजधानी मे शान्ति है तथा नये बादशाह जहाँगीर होगे, तब उस आतक की समाप्ति हुई।

(३) शासक वर्ग तथा जनता मे बहुत भेद था। शासक वर्ग आम जनता के दु ख, तकलीफो की कोई चिन्ता नही करते थे। एक बार कवि बनारसीदास तथा उनके अन्य दो साथियो को रास्ते मे रात हो गई। सर्दी बहुत अधिक थी। वे निकट की झोपडी मे गये। उस झोपडी मे शासक वर्ग का कोई एक व्यक्ति रहता था। उसने तीनो को झोपडी मे से बाहर निकल जाने को कहा। बहुत अधिक आग्रह करने पर उसने उन तीनो को अपनी चारपाई से नीचे सोने की अनुमति दी।

(४) कभी-कभी बादशाह स्वय ऐसे सूबेदारो को नियुक्त करता था जो बहुत अधिक आतकवादी हो। ये सूबेदार जनता पर अकारण ही अत्याचार करते थे तथा धनी लोगो को लूटते थे। ऐसा ही एक सूबेदार जिसका नाम आघानूर था, को बादशाह ने जौनपुर भेजा। आघानूर के बारे मे कवि लिखते है कि आघानूर ने बनारस तथा जौनपुर मे शैतान का राज्य स्थापित किया था। उसका क्रोध महाजन और व्यवसायियो पर ही अधिक था। कितने ही व्यवसायी उनके आदेश से मार खाते-खाते मर गये। कितने ही अधमरे होकर रह गये। कितने ही व्यवसायी, कोठीवाले, सर्राफ, जौहरी, दलाल उसके आदेश से धृत होकर कारागार मे डाल दिये गये। उसने कभी यह विचार नही किया कि उन्हे सजा किस अपराध के लिए दी जा रही है। उन्हे एक शृखला मे बाँधकर चाबुक लगवाये और अन्धकार भरी कैद मे डाल दिया। कोई भी उसकी नृशसता से नही बच सका। कुछ समय बाद आघानूर आगरा लौट गया, किन्तु जो अधिक धनी थे उन्हे निर्दयतापूर्वक प्रताडित कर आगरा ले जाया गया।

(५) रिश्वत का भी खब जोर था। एक बार कविवर अन्य कई साथियो के साथ जौनपुर से आगरा जा रहे थे। रास्ते मे इटावा मे इन सभी साथियो को जिनमे कवि बनारसीदास भी शामिल थे, एक झूठे अभियोग ने फाँस लिया। इन सबो पर नकली सिक्के चलाने का अभियोग लगाया तथा जीवन के हाकिम तथा कोतवाल ने इन सबो को फाँसी की सजा देना नियत की। बहुत मुश्किल से ये सभी लोग बच पाये। स्वय कविवर ने रिश्वत के तौर पर विभिन्न पदो के हिसाब से पुलिसवालो को इत्र, फुलेल व घृत दिया।

(६) लुटेरे तथा डाकुओ का भी आतक था। यात्रा पर जाते हुए कविवर के पिता व अन्य लोगो के सामान को लुटेरो ने लूट लिया। एक बार स्वय कविवर का डाकुओ के सरदार से मुकाबला हुआ था।

इस प्रकार कविवर बनारसीदास ने 'अर्द्धकथानक' मे तत्कालीन शासन-व्यवस्था का भी सागो पाग चित्रण किया है।

इस प्रकार अर्द्धकथानक मे कवि बनारसीदास ने अपने जीवन के जिस यथार्थ को प्रस्तुत किया है, वह सघर्ष से परिपूर्ण है जो किसी भी व्यक्ति को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करने मे सक्षम है। अर्द्धकथानक उस समय की राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति पर भी समुचित प्रकाश डालता है, जिससे यह आत्म-चरित और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। साढे तीन सौ वर्ष पूर्व हिन्दी मे लिखा वह आत्म-चरित अन्य आत्म-चरितो के लिये एक आदर्श है। कविवर बनारसीदासजी ने अन्य कई अध्यात्मिक रचनाये भी की है, लेकिन अकेले अर्द्धकथानक ने ही कविवर को जहान बना दिया है। जबतक आत्म-चरित लिखने की परम्परा रहेगी, कवि बनारसीदास जैन का नाम 'अर्द्धकथानक' के साथ अमर रहेगा।

□

लेखक-परिचय :—सहायक निदेशक (आगार), तैल एव प्राकृतिक गैस आयोग, मु पो अकलेश्वर, जिला—भरूच (गुज) 301010

---

# कविर्मनीषी बनारसी

वीरेन्द्रप्रसाद जैन

अध्यातम रस रसी, जैन तुलसी, कविर्मनीषी बनारसी।
चेतना भी चाँदनी विलसी, समता सुहाई समरसी ।।टेक।।
शब्द अर्थातमा लिए, चेतना-विलास-पिए,
खुल गए कपाट हिए, जले आत्म-ज्ञान-दिए।
फैल गई ज्ञान ज्योति दिवि-सी, मिथ्या-निशि गई वेबशी ।।
भाषा शृगार सही, युक्त अलकार कई,
किन्तु सरस ओज मयी, वर्ण्य विषय आत्मजयी।
भाव-भासना उदित उरवशी, ज्ञान-दृग स्वद्रृश्य-दर्शी ।।
जड व जीव नाट्य रचे, भव अनानि नाच नचे,
पर न सत्य सत्य जँचे, जन्म-मरण क्लेश भिचे।
चेतना हीन दशा मृत्यु-सी, निपट ज्ञान चेतना नशी ।।
ज्ञान नाट्यकार जगा, बोध का प्रकाश पगा,
समयसार दृश्य उगा, अन्ध बन्ध-द्वन्द भगा।
भव्य तत्त्व-सत्व-बोधि सरसी, स्वात्मानुभव पीयूष-सी ।।
अर्द्धकथा आत्मकथा, मानव की मर्म व्यथा,
अनुभव का कोष यथा, ज्ञान का प्रकाश तथा।
अध्यात्म काव्य के शतदल-सी, कला कीर्ति-कौमुदी हँसी ।।

— सम्पादक-'अहिंसावाणी',
मु पो अलीगज जिला—एटा (उ प्र)

# बनारसीदास का लोकस्वभाव-निरूपरण

– राजकिशोर जैन, बड़ौत (म० प्र०)

□

पण्डित बनारसीदास के काव्य मे लोकस्वभाव के निरीक्षरण की पैनी दृष्टि के भी दर्शन होते है। समयसार नाटक और अर्द्ध कथानक मे उनका लोकस्वभाव-निरूपरण यत्र-तत्र देखा जा सकता है। उन्होने यद्यपि यह चित्ररण सुनियोजित नही किया है तथापि उनके तात्त्विक निरूपरण के प्रसग मे अज्ञानो जोवो की प्रवृत्ति कैसी होती है – इस बात के दिग्दर्शन कराने मे लौकिक जीवो की परिरणति, स्वभाव, चेष्टाये कैसी होती है और वे चेष्टाएँ पौद्गलिक मन-वचन-काय द्वारा किस प्रकार व्यक्त होती है, उन सबका निरीक्षरण पण्डितजी ने गहरी व पैनी दृष्टि से किया है।

मनुष्य सामाजिक प्रारणी है। वह समूह मे रहता है और समूह के साथ उसका वचन-व्यवहार और काय-व्यवहार चलता रहता है। शरीर-सत्ता को अपनी सत्ता मानकर अज्ञानी जीव उसकी सुरक्षा मे अति सावधान और चौकन्ना रहता है तथा अनजाने मे ही राजनीतिक हो जाता है। राजनीति का यह अलिखित सिद्धान्त है कि दूसरे के द्वारा अपनी सत्ता को सदा खतरे से समझो और किसी का कभी भी विश्वास मत करो। तथा दूसरा आक्रमरण करे, इसके पहले तुम स्वय आक्रमरण कर दो। काया से आक्रमरण तो सदा सभव नही होता, अतः वचन द्वारा तो तुरन्त आक्रमरण कर ही दो। वचन द्वारा किए गए आक्रमरण मे प्रत्याक्रमरण का ज्यादा खतरा रहता नही है। इस दशा का चित्ररण कवि ने सुन्दर सरल भाषा मे विस्तारपूर्वक किया है—

सरल कौ सठ कहै, वकता कौ धीठ कहै,<br>
विनै करै तासौ कहै धन कौ अधीन है।<br>
छमी कौ निबल कहै दमी कौ अदत्ति कहै,<br>
मधुर वचन बौलै तासौ कहै दोन है॥<br>
धरमी कौ दभी निसप्रेही कौ गुमानी कहै,<br>
तिसना घटावै तासौ कहै भागहीन है।<br>
जहा साधुगुन देखे, तिन्ह कौ लगावै दोष,<br>
ऐसौ कछु दुर्जन कौ हिरदौ मलीन है॥[1]

1 समयसार नाटक, वध द्वार, छन्द २३

वचन द्वारा लोक केवल कहता ही नही, वचन सुनकर तुरन्त तीखी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है—

बात सुनी चौंकि उठे बात ही सौं भौंकि उठे,
बात सौं नरम होइ, बात ही सौं अकरी ।[1]

अकडने का एक और चित्रण देखिए । अपनी सत्ता की उच्च शक्ति का प्रदर्शन कैसे किया जाता है—

आसन न खोलैं मुख वचन न बोलैं,
सिर नाये हू न डोलैं मानौ पाथर के चहे हैं ।
देखन के हाऊ, भवपथ के बढाऊ,
माया के खटाऊ अभिमानी जीव कहे है ।[2]

कल्पित सत्ता की सुरक्षा मे पागल जीव क्या-क्या नही करता ? वाचनिक आक्रमण का शीत युद्ध चलता रहता है । दूसरा आक्रमण करे, न करे, यह तो खतरे की सम्भावना से त्रस्त रहता है, अत सज्जनो को देखकर भी रोष करता है—

कुजर कौ देखि जैसै रोस करि भूसै स्वान ।[3]

जब दोष कहते-कहते थक जाता है, तब क्या करता है—

सुनी कहै देखि कहै, कलपित कहै बनाइ ।
दुराराधि ए जगत जन, इन्हसौ कछु न बसाइ ।[4]

कवि के इस निरूपण को पढकर कोई ऐसा न समझ ले कि वे पर्याय-दोष पर भार दे रहे है । कवि बता रहे है कि ये जीव ऐसे भाव क्यो कर रहे है – अज्ञान की महिमा है सब—

काया चित्रसारी मे, करम परजक भारी,
माया की सवारी सेज चादरि कलपना ।
सैन करै चेतन अचेतना नीद लियै,
मोह की मरोर यहै लोचन कौ ढपना ।।
उदै बल जोर यहै स्वास कौं सबद घोर,
विषै-सुख कारज की दौर यहै सपना ।
ऐसी मूढदशा मे मगन रहै तिहू काल,
धावै भ्रमजाल मैं न पावै रूप अपना ।[5]

---

1 समयसार नाटक , सर्वविशुद्धि द्वार, छन्द ३६
2 वही, मोक्ष द्वार, छन्द ४५
3 वही, बध द्वार, छन्द २२
4 अर्द्धकथानक, छन्द ६१०
5. समयसार नाटक, निर्जरा द्वार, छन्द १४

कोई कहे कि ये सोते भी है किन्तु प्रयत्नपूर्वक हमारा बुरा भी करते है तो उसका उत्तर कवि कोल्हू के बैल के दृष्टान्त द्वारा देते हैं—

पाटी बाधी लोचनि सौ सकुचै दबोचनि सौ,
कोचनि के सोच सौ न बंदे खेद तन कौ।
धायबो ही धंधा अरु कधा माहि लग्यौ जोत,
बार बार आर सहै कायर है मन कौ।।
भूख सहै प्यास सहै दुर्जन को त्रास सहै,
थिरता न गहै न उसास लहै छन कौ।
पराधीन घूमै जैसो कोल्हू कौ कमेरौ बैल,
तैसौई स्वभाव या जगतवासी जन कौ।[1]

कोई सोता हुआ सपने मे बडबडा ले कि मै तुम्हे मार दूँगा, तो वह हँसी का पात्र है। ऐसे ही कल्पना की चादर तान कर सोता हुआ अज्ञानी कुछ भी कहे, वह हँसी का पात्र ही है तथा कोल्हू के बैल की भाँति दु खी होता हुआ कहे कि मै तुम्हारा बुरा करूँगा तो वह करुणा का पात्र है—

धरम की बूझ नाहि उरझे भरम माहि।
नाचि-नाचि मर जाहि, मरी के से चूहे है।[2]

पण्डितजी ने इन पदो मे दैनन्दिन जीवन के वचन व्यवहार में उठनेवाली कटुता से सहज ही मुक्त करने का जो उपाय निर्देश किया है वह अद्भुत और अनूठा है। परिणामस्वरूप ज्ञानी जीवो का व्यवहार कैसा होता है—

धीर के धरैया भव नीर के तरैया भय,
भीर के हरैया बर बीर ज्यौ उमहे है।
मार के मरैया सुविचार के करैया सुख,
ढार के ढरैया गुन लौ सौ लहलहे है।।
रूप के रिझैया सब नै के समझैया सब,
ही के लघु भैया सब के कुबोल सहे है।
बाम के बमैया दुख क्षम के दमैया ऐसे,
राम के रमैया नर ग्यानी जीव कहे है।।[3]

सर्वरस प्रवीण कवि ने लोकमानस मे उठनेवाले नौ रसो का लौकिक और आध्यात्मिक वर्णन किया है। शृगार और हास्य रस के परिपाक मे ही इस अज्ञानी जीव को अद्भुतता के दर्शन होते है, इन्ही की प्राप्ति के लिए यह पुरुषार्थी वीर बनता है। प्राप्ति के सघर्ष मे रौद्र हो उठता है। दूसरे की रौद्रता अधिक हुई तो भयभीत होकर भागता है। शरीरघात या रोगादि के वीभत्स दृश्य सामने आते है। सघर्ष मे हारे हुए

---

1 समयसार नाटक, बध द्वार, छन्द ४२    2 वही, वही, छन्द ४३
3 वही, मोक्ष द्वार, छन्द ४६

अन्य पर कदाचित् करुणा करता है। कोई लौकिक तटस्थ पुरुष इन सब दैनन्दिन दृश्यो को देखता हुआ करुणामिश्रित शान्तरस का अनुभव करता है। लौकिक शान्ति मरघट या मजबूरी की शान्ति है, ग्लानि और भय का प्रतिफल है। ज्ञानियो की शान्ति मात्र नास्ति रूप नही होती, गुणो के उच्छलनरूप आनन्द के आधार सहित होती है।

पण्डितप्रवर ने बतलाया है कि अज्ञानी कर्मचक्र की चौपड खेलते है और ज्ञानी विवेकचक्र की शतरज खेलते हैं। कर्मचक्र की चौपड पर पासा पडता है और सम्यक्-पुरुषार्थ-हीन अज्ञानी जीव "अशुभ मे हार, शुभ मे जीत" की झूठी कल्पनाओ मे आकुल-व्याकुल होता रहता है, जबकि ज्ञानी विवेक (भेदविज्ञान) और निज पूर्णता के आश्रय से आनद का उपभोग करते है।

उन्होने पर्याय की तत्समय की योग्यता रूप क्षणिक उपादान का ज्ञान कराकर पर्याय के सम्बन्ध मे उठनेवाली "ऐसा क्यो, इससे ऐसा क्यो हुआ, ऐसा हो, ऐसा न हो," वृत्तियो को सहज निरस्त किया है।

कहै दोष न कोउ न तजै, तजै अवस्था पाइ।
जैसै बालक की दसा, तरुन भए मिटि जाइ ।।[1]

वस्तु की स्थिति एक सी नही रहती। जीव के भावो की दशा प्रतिसमय बदलती है, उतार-चढाव के हिडोलो मे झूलती है—

एक जीन की एक दिन, दसा होहि जेतीक।
सो कहि सकै न केवली, जानै जद्यपि ठीक ।।[2]

अतएव हम किसी जीव की किस दशा पर हर्षित हो और किस दशा पर विषाद को प्राप्त हो तथा अपनी भी किस दशा पर हर्षित हो और किस दशा पर विषाद को प्राप्त हो। हर्ष मे ही तो विषाद बसता है। कवि कहते हैं कि लोगो की दशा ही क्या, इस लोक के सभी सयोगो की ऐसी ही स्थिति है—

और जगरीति जेती गर्भित असाता सेती,
साता की सहेली है अकेली उदासीनता ।[3]

सारे लोकस्वभाव के निरूपण का उपसहार करते हुए उसमे निहित प्रयोजन को जानना चाहिए—

ए जगवासी यह जगत, इन्ह सौं तोहि न काज।
तेरैं घट मै जग बसै, तामै तेरो राज ।[4]

मेरा जगत तो मेरी ज्ञान की स्वच्छता की विवशता है, इसी मे मेरा राज्य (अधिकार) है, इसी से मै सुशोभित होता हूँ।

पण्डितराज की चौथी जन्मशती की पूर्णता पर अनेक वचनरूपी दीपक सबका मगल पथ प्रशस्त करे।

☐

---

1 अर्द्धकथानक, छन्द २७१
2 वही, छन्द ६६०
3 समयसार नाटक, साध्य-साधक द्वार, छन्द ११
4 वही, वध द्वार, छन्द ४५

शूद्र: जो मिथ्यामति आदरै, राग द्वेष की खान।
बिन विवेक करनी करै शूद्र वर्ण सो जान ॥

वर्णसकर: चार भेद करतूति सो, ऊँच-नीच कुल नाम।
और वर्णसकर सबै, जे मिश्रित परिणाम ॥[1]

इसीप्रकार वैष्णव एव मुसलमान पर टिप्पणी करते हुए उन्होने लिखा है—

वैष्णव: जो हर घट मे हरि लखै, हरि बाना हरि बोय।
हरि छिन हरि सुमरन करै, विमल वैष्णव सोइ ॥

मुसलमान: जो मन मूसै आपनो, साहिब के रुख होई।
ज्ञान मुसल्ला[2] गह टिकै, मुसलमान है सोय ॥[3]

इस सदर्भ मे डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन के विचार भी द्रष्टव्य है—

"धर्म के आडम्बर और क्रियाकाण्ड की निरर्थक योजनाओ के कविवर बनारसीदासजी विरोधी थे। उनका सम्पूर्ण जीवन यदि विविध धर्मों की एक प्रयोगशाला कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। कभी वैष्णव, कभी शैव, कभी तान्त्रिक, कभी क्रियाकाण्डी, कभी नास्तिक, कभी श्वेताम्बर तो कभी दिगम्बर जैन के रूप मे सभी धर्मों का अनुभव लिया और अन्तत· इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि धर्म का सम्बन्ध बाह्य प्रदर्शन व क्रियाकाण्ड आदि से रखा जायेगा तो उसमे व्यक्तिगत स्वार्थ, क्षुद्रता व स्वैराचार पनप उठेगा। धर्म के नाम पर भी अमानवीय तत्त्व पुष्ट होगे। अत: धर्म का नाता अन्तस्आत्मा से होना चाहिए।"[4]

डॉ. जैन ने आगे लिखा – "कविवर बनारसीदास ने सत्रहवी सदी के द्वितीयार्द्ध मे सच्चे जैनत्व की दिशा मे जनता का आदर्श मार्गदर्शन किया। धर्म के क्रियाकाण्ड की अति, आडम्बर का अभद्र प्रदर्शन और शिथिलाचार को उन्होने सर्वथा अस्वीकार किया। कविवर ने स्पष्ट कहा—

धर्म मे व्यक्ति की नही, विचारो की मान्यता होनी चाहिए। उन्होने नाटक समयसारादि ग्रन्थो मे आत्मतत्त्व का अत्यन्त मार्मिक व युक्तिसगत विवेचन किया है।[5]

भारतीय परम्परा मे साहित्य व धर्म का परस्पर अन्त.सम्बन्ध रहा है। वैदिक कालीन साहित्य तो मुख्यत. धार्मिक साहित्य ही है। इसके बाद का प्राकृत, पाली व अपभ्रंश साहित्य भी अधिकतर धर्म से ही सम्बन्धित लिखा गया है। हिन्दी साहित्य मे भी

---

1 बनारसीविलास, पृष्ठ १८७
2 नवाज पढने के लिए बिछानेवाली चादर
3 बनारसीविलास, पृष्ठ २०४
4 कविवर बनारसीदास, शोधप्रबन्ध, पृष्ठ २२
5 कविवर बनारसीदास, शोधप्रबन्ध, पृष्ठ ४२

अधिकाश साहित्य धार्मिक ही है। अत. यदि धार्मिक साहित्य को साम्प्रदायिक कहकर इसकी उपेक्षा की गई तो लगभग सभी साहित्य की सीमा से बाहर हो जायेगा।

इसी सदर्भ मे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदो ने अपनी 'हिन्दी-साहित्य का आदिकाल' नामक पुस्तक मे अपने उद्गार प्रकट करते हुए लिखा है—

"इधर जैन अपभ्रश-चरित काव्यो की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह सिर्फ धार्मिक सम्प्रदाय की मोहर लगने मात्र से अलग कर दी जाने योग्य नही है।

स्वयम्भू, चतुर्मुख, पुष्पदन्त और धनपाल जैसे कवि केवल जैन होने के कारण ही काव्य क्षेत्र से बाहर नही चले जाते। धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्य कोटि से अलग नही की जा सकती। यदि ऐसा समझा जाने लगे तो तुलसीदास का रामचरित मानस भी साहित्य क्षेत्र मे अविवेच्य हो जायगा और जायसी का पद्मावत भी साहित्य सीमा के भीतर नही घुस सकेगा। वस्तुतः लौकिक कहानियो को आश्रय करके धर्मोपदेश देना इस देश की चिराचरित प्रथा है।

केवल नैतिक और धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेशो को देखकर यदि हम ग्रन्थो को साहित्य-सीमा से बाहर निकालने लगेगे तो हमे आदि काव्य से भी हाथ धोना पडेगा, तुलसी की रामायण से भी अलग होना पडेगा और जायसो को दूर से ही दण्डवत करके बिदा कर देना होगा।[1]"

यहाँ एक बात यह भी विचारणीय है कि यदि धार्मिक साहित्य को साहित्य की सीमा से बहिष्कृत कर दिया गया तो साहित्य के नाम पर केवल अश्लीलता ही शेष रह जायगो, जिसमे साहित्यिक मूल्यो का नितान्त अभाव रहता है। और यदि कविवर बनारसीदास की केवल जैन साहित्य के लेखको के नाते साम्प्रदायिक कहकर उपेक्षा की गई तब तो समीक्षको की ही साम्प्रदायिक, सकुचित और अनुदार दृष्टि का दोष माना जायगा, क्योकि धार्मिक दृष्टि से तो अन्य हिन्दू इस्लाम सम्प्रदाय भी सम्प्रदाय ही है, फिर सूर-तुलसी-केशव-कबीर एव मीराँ आदि साम्प्रदायिक क्यो नही ? उनका साहित्य भी तो धार्मिक साहित्य ही है। धार्मिक साहित्य के कारण किसी भी कवि को साम्प्रदायिक नही कहा जा सकता। धर्म तो भारतीय सस्कृति की आत्मा है। उसके बिना साहित्य की समृद्धि सभव ही नही है।

बनारसीदास का हिन्दी साहित्य से महत्त्वपूर्ण स्थान स्वीकार करते हुए डॉ आनन्दप्रकाश दीक्षित (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) लिखते है—

"बनारसीदास मे सन्तो की सी रूपात्मकता एव अन्योक्तिमूलक युक्तियाँ, पहेली बनाकर कहने की पद्धति, लोकगीतो की सी राग ध्वनि का निर्वाह तथा भक्तो की सी विनम्रता सब एक साथ दिखाई देती है।

1 बनारसीविलास, प्रस्तावना, पृष्ठ २

सतो और भक्तो-दोनों के साथ कवि बनारसीदास का मेल मिलाया जा सकता है। उक्तियो मे वे सतो के साथ सरलता व भाव स्थिति मे तुलसी जैसे भक्त कवियो के साथ बैठाये जा सकते है।[1]"

डॉ बासुदेव सिह, अध्यक्ष हिन्दी विभाग स्नातक महाविद्यालय सीतापुर बनारसीदास के बारे मे लिखते है –

"आपकी गणना कबीर, दादू, सुन्दरदास, गुलाब साहब एवं धर्मदास आदि सत कवियो से की जा सकती है।[2]"

डॉ बासुदेवशरण अग्रवाल, हिन्दी विभागाध्यक्ष काशी विश्वविद्यालय वाराणसी ने अपने हृदयोद्गार व्यक्त करते हुए लिखा है–

आज से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व उस प्रवाहमयी शैली को देखकर आश्चर्य होता है। उनका हिन्दी साहित्य मे एक विशेष स्थान है, क्योकि एक तो वे सोलहवी सदी के अपने ढग के एक ही लेखक थे। उन्होने अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ -- इन तीनो मुगल सम्राटो के शासनकाल मे उत्तर भारत की राजनीतिक और सामाजिक दशा को निकट से देखा था और अपने साहित्य मे उसका उल्लेख भी किया है। दूसरे, वे हिन्दी आत्मकथा साहित्य के आद्यप्रवर्तक है। 'अर्द्ध कथानक' काव्य मे उन्होने जिस नये काव्यरूप को अपनाया है, उसे हिन्दी के और किसी कवि ने नही छुआ।

हिन्दी के आत्मकथा साहित्य मे 'अर्द्ध कथानक' जैसा दूसरा ग्रन्थ नही है। उसमे मनमौजी स्वभाव वाले असफल व्यापारी का हूबहू चित्र देखने को मिलता है। और पाठक को यह देखकर प्रसन्नता होती है कि वास्तव मे बनारसीदास जैसे थे, उसका यथार्थ प्रतिबिंब अर्द्ध कथानक मे आया है। लेखक व उसके शब्दो के बीच मे कोई पर्दा नही है। इसमे उन्होने जिस भाषा-शैली का उपयोग किया है वह सहज ही पाठको का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। उसकी भाषा जौनपुर और आगरा के बाजारो मे बोली जाने वाली भाषा है। उसमे मूल छटा तो हिन्दी है, पर अरबी व फारसी के भी बहुत से शब्द घुल-मिल गये है। उसका जैसा जीता-जागता सटीक नमूना बनारसीदास ने रखा है, वैसा अन्यत्र नही मिलता।

साहित्य के नाते बनारसीदास ने 'अर्द्ध कथानक' मे जो सच्चाई बरती है, उससे पाठक का मन आज भी फडक उठता है। वे बराबर हमारी सहानुभूति अपनी तरफ खीच लेते है। क्या ही अच्छा होता, 'अर्द्ध कथानक' जैसे और भी दो-चार ग्रन्थ उस युग की हिन्दी भाषा मे लिखे जाते।[3]"

अपने जीवन के पतझड मे लिखी गई इस रचना से यह आशा उन्होने यह स्वप्न मे भी नही की होगी कि यह कृति कई सौ वर्ष तक हिन्दी जगत मे उनके यश शरीर को जीवित रखने मे समर्थ होगी।

---

1 वीरवाणी, जयपुर, बनारसीदास विशेषाक १९६३, पृष्ठ ३    2 वही    3 वही

कविवर की इस कृति को आद्योपात पढने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि कतिपय तथाकथित समीक्षको की उपेक्षा के बावजूद भी इसमें वह सजीवनी शक्ति है कि जो इसे अभी कई सौ वर्षों तक जीवित रखने मे समर्थ होगी। तथा हिन्दी साहित्य मे भी इसका एक विशेष स्थान होगा।

इसमे सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता, निरभिमानता और स्वाभाविकता का ऐसा जबर्दस्त पुट विद्यमान है, तथा भाषा इतनी सरल व सक्षिप्त है कि साहित्य की चिरस्थाई सम्पत्ति मे इसकी गणना अवश्यमेव होगी, क्योकि हिन्दी का तो यह सर्वप्रथम आत्मचरित है ही, अन्य भाषाओ मे भी इस प्रकार का और इतना पुराना आत्मचरित नही है।

प्रसिद्ध समालोचक एव ससदसदस्य श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'अर्द्ध कथानक' पर अपनी टिप्पणी देते हुए लिखा है—

"बनारसीदास का आत्मचरित पढते हुए प्रतीत होता है कि मानो हम कोई सिनेमा देख रहे हो।

सबसे बडी खूबी इस आत्मचरित की यह है कि यह तीन सौ वर्ष पुराने साधारण भारतीय जीवन का एक दृश्य ज्यो का त्यो उपस्थित कर देता है। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे प्रतिभाशाली साहित्यिक इस दृष्टान्त का अनुसरण कर आत्मचरित लिख डाले।

फक्कड शिरोमणि कवि बनारसीदास ने तीन सौ वर्ष पहले आत्मचरित लिखकर हिन्दी के वर्तमान और भावी फक्कडो को न्योता दे दिया है। यद्यपि उन्होने विनम्रतापूर्वक अपने को कीटपतगो श्रेणी मे रखा है।[1] तथापि इसमे सदेह नही कि वे आत्मचरित लेखको मे शिरोमणि हैं।"

इस प्रकार हम देखते है कि बनारसीदास के साहित्य मे वे सभी काव्यगत उपादान एव विशेषतायें हैं, जिनकी एक उत्कृष्ट कवि से अपेक्षा होती है। इसके अतिरिक्त मौलिक चिन्तन, नई सूझ-बूझ, गहरी पकड एव लोकजीवन का गहन अध्ययन और अध्यात्म की पैनी दृष्टि भी उनके व्यक्तित्व मे विद्यमान है। □

लेखक-परिचय —जन्म अगहन कृष्णा अष्टमी वि स १९८९ दिनाक २१ नवम्बर सन् १९३२, जन्मस्थान ग्राम-बरौदास्वामी (ललितपुर) उ प्र। शिक्षा शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम ए, बी एड। अभिरुचि आध्यात्मिक अध्ययन-चिन्तन-मनन एव लेखन और प्रवचनादि, तत्त्व प्रचार-प्रसार करने मे सक्रिय योगदान। साहित्यिक कार्य जिनपूजन रहस्य, बनारसीदास जीवन और साहित्य, बालबोध पाठमाला भाग १ (मौलिक) गागर मे सागर, अहिंसा एक विवेचन (सम्पादित), प्रवचनरत्नाकर भाग १ से ५ तक (लगभग दो हजार पृष्ठ अनूदित) भक्तामर प्रवचन व समाधितन्त्र प्रवचन (अनुवाद सम्पादन) सम्प्रति प्राचार्य श्री टोडरमल दि जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर सम्पादक, जैनपथ प्रदर्शक (पाक्षिक) जयपुर। सम्पर्कसूत्र पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर जयपुर ३०२०१५

---

1 हम से कीट पतग की बात चलावे कौन।    2 वीरवाणी, बनारसीदास विशेषाक १९६३

# 'समयसार नाटक' : एक समीक्षात्मक विवेचन

– डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ

□

'समयसार नाटक' कविवर बनारसीदास की महत्त्वपूर्ण कृति है। जिसका मूल प्रतिपाद्य आध्यात्मिक है तथा यह आचार्य कुन्दकुन्द की महान कृति 'समयसार' पर आधृत है। आचार्य कुन्दकुन्द-रचित 'समयसार' ग्रंथ पर संस्कृत भाषा मे अनेक टीकाएँ लिखी गई है, जिनमे अमृतचद्र आचार्य कृत मूलत सस्कृत गद्य मे 'आत्मख्याति' नामक टीका है। इसमे २७५ विभिन्न छन्द भी हैं जो बाद मे 'समयसार कलश' नाम से प्रसिद्ध हुए। पाण्डे राजमल ने इस पर हिन्दी 'बालबोधिनी टीका' प्रस्तुत की है। इसी टीका के आधार पर कविवर बनारसीदास ने 'समयसार नाटक' की रचना की।

> नाटक समैसार हित जीका। सुगम रूप राजमली टीका ।।
> कवितबद्ध रचना जो होई। भाषा ग्रंथ पढै सब कोई ।।[1]

'समयसार नाटक' काव्यशास्त्रीय 'नाटक' की कसौटी पर तत्सबधी कलातत्त्वो के अनुरूप भले न हो, परन्तु यह कहना कही अधिक समीचीन होगा कि कविवर बनारसीदास ने राजमलजी की बालबोधिनी टीका का मात्र पद्यानुवाद ही प्रस्तुत नही किया है, अपितु एक मौलिक कृति के रूप मे प्रस्तुत किया है। इसकी मौलिकता के दर्शन उनके गुणस्थान अधिकार मे और ग्यारह प्रतिमाओ के निरूपण मे विशेष होते है।

कविवर बनारसीदास न केवल कुन्दकुन्दाम्नाय के रससिद्ध कवि ही हैं, अपितु क्रान्तिकारी विचारक और आध्यात्मिक दर्शन के प्रतिपादक भी रहे है। वे आत्मानुभव को ही मोक्षस्वरूप मानकर कहते है कि—

> वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम।
> रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभौ याकौ नाम ।।[2]

'समयसार नाटक' प्रकथ अनुभव रस मे परिपूर्ण है : —

---

1. समयसार नाटक, अन्तिम प्रशस्ति, छन्द ४२०
2. समयसार नाटक, उत्थानिका, छन्द १७

समयसार नाटक अकथ, अनुभव-रस-भण्डार।
याको रस जो जानही, सो पावे भव-पार ।।[1]

'समयसार नाटक' का प्रतिपाद्य काव्य रूप मे है जिसमे तीन सौ दस दोहे-सोरठे, दो सौ पैंतालीस सवैये (इकतीसा), छियासी चौपाई, सैंतीस सवैया (तेईसा), बीस छप्पय, अठारह घनाक्षरी कवित्त, सात अडिल्ल, चार कुण्डलियो सहित सात सौ सत्ताईस पद्य है। काव्यरूप के प्रतिपादन मे कविवर ने बारह पद्यो का मगलाचरण प्रस्तुत किया है। उत्थानिका मे कवि ने अपने पूर्ववर्ती आचार्य अमृतचन्द्र की टीका का उल्लेख किया है तथा कहा है कि

तैसै ज्यौ गरथ को अरथ कह्यौ गुरु त्योहि,
हमारी मति कहिवे कौ सावधान भई है ।।[2]
गुन को गरथ निरगुन को सुगम पथ,
जाको जसु कहत सुरेश अकुलत है ।।
नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है ।।[3]

इस उत्थानिका मे ५१ पद्य है। इसके पश्चात् 'समयसार नाटक' आरम्भ होता है। जिसमे कविवर ने जीव-अजीव, कर्ता-कर्म-क्रिया, पुण्य-पाप-एकत्व, आस्रव, सवर, निर्जरा, बध, मोक्ष, सर्वविशुद्धि, स्याद्वाद, साध्य-साधक द्वार का वर्णन तो किया ही है। इसके अतिरिक्त ग्यारह प्रतिमा, चौदह गुणस्थान आदि का, ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति का उल्लेख भी किया है।

शास्त्रीय पद्धति से नाटक की सधियो, अभिसन्धियो आदि का स्वरूप प्रतिपादित न होने और आधुनिक नाट्य-व्यवस्था एव नाट्यकला के प्रतिमानो का अभाव दृष्टि-गोचर होते हुए भी समयसार नाटक मे जैनागमपरक अध्यात्म का सास्वादिक स्तर पर विवेचन एव व्याख्याएँ इसे नाट्यतत्त्व प्रदान करती है। स्थान-स्थान पर कवि विभिन्न समस्याओ एव प्रश्नो का समाधान सवादो के माध्यम से प्रश्नोत्तर शैली मे ही करते हैं।

नाटक मे समयसार परमागम के अनुरूप ही कवि ने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का मौलिक परिचय भी दिया है तथा आध्यात्मिक चिन्तन को सहज वाणी मे बोधगम्य बनाने मे युगानुरूप भाषा, छन्द, अलकारादि का प्रयोग किया है। यही नही, तत्कालीन समय मे उपदेशात्मक प्रवृत्ति होते हुए भी उसमे आशिक अभिनय, ताल, वाद्य एव लय का समावेश कृतित्व को पर्याप्त रूप मे नाटकीय सिद्धता प्रदान करता था। उसी नाटकीय सिद्धता का सुरुचिपूर्ण प्रयास समयसार नाटक मे परिलब्ध है।

प्रथम सर्ग 'जीव द्वार' मे जीव के स्वरूप, तत्त्वज्ञानोपरान्त जीव की अवस्था का उल्लेख करते हुए कवि ने आत्मस्वरूप की पहचान और उनके चिन्तवन मे लगे रहने की प्रेरणा का उल्लेख किया है।

---

1 समयसार नाटक, ईडर के भण्डार की प्रति का अन्तिम अश, छन्द १
2 समयसार नाटक, उत्थानिका, छन्द, 13
3 समयसार नाटक, उत्थानिका, छन्द १५

द्वितीय सर्ग 'अजीव द्वार' मे जीव और पुद्गल के लक्षण, जड-चेतन की भिन्नता देह और जीव तथा जीव और पुद्गल की भिन्नता के निरूपण के साथ भेदविज्ञान के परिणाम का उल्लेख किया है तथा सकेतित किया है कि यह शरीर जड़, अचेतन, नाशवान एव आत्मस्वभाव से भिन्न पर पदार्थ है। इसमे अहकार करना ही मिथ्यादर्शन है। अत: स्व और पर की पहचान कर ही प्रज्ञावान बना जा सकता है।

तृतीय सर्ग मे कविवर कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार का विवेचन करते है कि भेदविज्ञान के अनुरूप जीव कर्म का कर्ता न होकर केवल निज स्वभाव का कर्ता है। शिष्य की आशकाओ का समाधान करते हुए समयसार कर्ता-कर्म अधिकार मे स्पष्ट लिखा है कि अभेदनय से क्रिया, कर्म और कर्ता एक आत्मद्रव्य मे ही होते है।

जैसै महारतन की ज्योति मै लहरि उठै
जल की तरग जैसें लीन होय जल मै।
तैसै सुद्ध आतम दरब परजाय करि,
उपजै बिनसै थिर रहै निज थल मैं।।
ऐसै अविकलपी अजलपी अनदरूपी,
अनादि अनन्त गहि लीजै एक पल मैं।
ताकौ अनुभव कीजै परम पीयूष पीजै,
बध को विलास डारि दीजै पुद्गल मै।।[1]

आत्मा को ही कर्म और चैतन्य क्रिया का कर्ता बताया गया है। अस्तु—

चतुर्थ सर्ग मे पुण्य-पाप के एकत्व पर विचार करते हुए 'समयसार नाटक' के कर्ता ने शिष्य के शका-समाधान की शैली अपनाकर मोक्षमार्ग को ही उपादेय बताया है, यह भी स्पष्टरूप मे समाधानित किया है कि मोक्ष अन्तर्दृष्टि से ही प्राप्त होता है, बाह्य दृष्टि से सभव नही है और आत्मानुभवपरक ज्ञान ही मोक्षमार्ग है। समयसार-कर्ता पुण्य को विशुद्ध भाव सम्पन्न और पाप को सश्लिष्ट भाव सम्पन्न बताकर उसकी अशुभ और शुभ परिणतियो को आत्मा के विभावरूपेण व्याख्यायित करते है :—

पाप के उदै असाता ताको है कटुक स्वाद,
पुन्न उदै साता मिष्ट रस भेद जानियै।
पाप सकलेस रूप पुन्न है विसुद्ध रूप,
दुहू कौ सुभाव भिन्न भेद यौं बखानियै।।[2]

इसप्रकार यहाँ आत्मा के विभावरूप को हेय बताया गया है क्योकि इसमे राग-द्वेष निमित्त होता है जबकि आत्मा के स्वभावरूप की परिणति वीतरागता मे निहित है, जो कि सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति से ही सम्भव होती है। लेकिन यहाँ यह भी स्पष्ट

1 समयसार नाटक, कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार, छन्द २९
2 समयसार नाटक, पुण्य-पाप-एकत्व द्वार, छन्द ५

किया गया है कि जितने आंशिक ज्ञान और निश्चय चारित्र है उतने आंशिक बंध भी नही है, इसलिए ज्ञानी के पुण्य के भी पाप के समान हेय जानकर शुद्धोपयोग की शरण लेनी चाहिए।

पचम सर्ग 'आस्रव द्वार' मे आस्रव की व्याख्या करते हुए लिखते है कि राग-द्वेष एव मोह के भाव आस्रवरूप है और जीवात्मा द्वारा गृहीत सम्यक्ज्ञान आस्रवरूप का ही अभाव है। अस्तु, जो जीव अह-निर्मूल एव विषय-विरहित रहते है, उनमे सम्यग्दर्शन व ज्ञान प्रवाहित होता है। अव्रती सम्यग्ज्ञानी भी इस राग-द्वेष-मोह के आस्रव से दूर रहता है, क्योकि यही मिथ्यात्व का मूल है। अस्तु, उससे निरास्रव होना ही सम्यक्त्व की परिणति है।

षष्ठ सर्ग 'सवर द्वार' मे सवर का विवेचन करते हुए कविवर ने स्पष्ट किया है कि ज्ञान ही सवर है। जो आत्मानुभव करके पर वस्तु के आश्रय से परे हो जाते है, वे ही परमात्मास्वरूप को पहचान पाते है। भेदविज्ञान के द्वारा स्व-पर-विवेक से जीव सम्यग्दर्शन की परिणतिरूप शुद्ध आत्मानुभव को पा लेता है।

सप्तम सर्ग 'निर्जरा द्वार' मे समयसार-कर्ता ने मोक्षप्रदायिनी निर्जरा, का विवेचन किया है तथा विस्तार से गुरूपदेश की महिमा द्वारा जागृत दशा के परिणाम, सम्यग्ज्ञानी के आचरण आदि की व्याख्या करते हुए कहा है कि जीव अपने स्वरूप को विस्मृत कर आत्महित करने मे भूले करता है तथा सत्यमार्ग के अभाव मे सासारिक कर्मबन्धनो मे बँध जाता है। अस्तु, मुक्ति का एकमात्र साधन सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति है तथा अनन्त कर्मों की निर्जरा की परिणति में अपनी आत्मा को नित्य एव निराबाध रूप मे जान लेना ही अष्टाग सम्यग्दर्शन है —

निरजरा नाद गाजै ध्यान मिरदग बाजै,
छक्यौ महानद मैं समाधि रीझि करिकै।
सत्ता रगभूमि में मुकत भयौ तिहू काल,
नाचै सुद्धदिष्टि नट ग्यान स्वाग धरिकै ॥[1]

आठवें सर्ग 'बध द्वार' मे समयसार-कर्ता मोक्षमार्ग प्रशस्त करने वाली प्रवृत्ति पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए बन्ध की व्याख्या करते हैं, क्योकि कर्मबन्ध का कारण एक अशुद्धोपयोग ही है। मनसा वाचा व काया के योग से और चेतन-अचेतन की हिंसा से तथा इन्द्रिय विषयादि से न होकर बन्ध का परिणाम रागादि से ही सम्बधित है। अस्तु, अबन्ध ज्ञानी ही पुरुषार्थी होता है तथा उसके पुरुषार्थ अर्थ, धर्म काम और मोक्ष है। उन्हे दुर्बुद्धि जीव मनमाने रूप मे और सम्यक्ज्ञानी वास्तविक रूप मे ग्रहण करते है। वस्तुतः इस आत्मा ही मे चारो पुरुपार्थ निहित होते हैं '—

---

1 समयसार नाटक, निर्जरा द्वार, छन्द ६१

धरम कौ साधन जु वस्तु कौ सुभाउ साधै,
अरथ कौ साधन विलेछ दर्व षट मैं ।
यहै काम-साधन जु सग्रहै निरास पद,
सहज सरूप मोख सुद्धता प्रगट मै ।।[1]

समयसार-कर्ता उत्तम, मध्यम, अधम और अधमाधम जीवो का विवेचन करते हैं और स्पष्ट करते है कि अज्ञानी विषयासक्त बने रहते है, पर सम्यग्दृष्टि रखनेवाले जीव आत्मस्वरूप मे स्थिर रहते है । क्योकि शरीर मे त्रिलोक के विलास गर्भित रहते है । अस्तु, सम्यग्ज्ञानी वीतरागी बनकर आत्मविलास मे लीन होता है—

कहै सुगुरु जो समकिती, परम उदासी होइ ।
सुथिर चित्त अनुभौ करै, प्रभुपद परसै सोइ ।।[2]

नवम सर्ग 'मोक्ष द्वार' मे समयसार-कर्ता ने सम्यक्ज्ञान से आत्मा की सिद्धि का सकेत किया है और बताया है कि ऐसे सम्यक्ज्ञानी चक्रवर्ती के समान होते है तथा वह नवनिधि अथवा नवभक्ति धारण करते है । सम्यक्ज्ञानी भी चक्रवर्ती के समान चौदह रत्न प्राप्त-कर्ता होते है । इस नवभक्ति मे श्रवण, कीर्तन, चिन्तवन, सेवन, वन्दना, ध्यान,लघुता, समता और एकता है। इन्हे धारण करने पर जिस आत्म-सिद्धि रूपेण चेतना प्राप्त होती है, उसको सत्ता प्रामाणिक है । अस्तु, शरीर से मिथ्या अभिमान या अहता त्यागकर अनात्मसत्ता और आत्मसत्ता का पृथक्करण करना उचित है और वही अविचल, अखण्ड, अक्षय, अभय और शुद्धरूप होता है ।

दसम सर्ग 'सर्वविशुद्धि द्वार' के नाम से अभिहित है । इसमे समयसार-कर्ता स्पष्ट करता है कि जीव ने मोहग्रसित इस जीवन में पुद्गलो के समागम से अपने स्वरूप का आस्वादन नही किया है और वह राग-द्वेषादि के मिथ्याभावो मे तत्पर रहा है । विशेष यह है कि इस द्वार मे भी 'कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार' के विषय को ही और अधिक स्पष्ट किया है ।

ग्यारहवे सर्ग 'स्याद्वाद द्वार' मे जैन धर्म के स्याद्वाद सिद्धान्त का रहस्य विवेचित है । जिसके अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि जीव न उपजा है और न मरा है अपितु यह जीवचेतना उपयोग का आदि गुण है, जो उसका ध्रुव है, तभी मनुष्यपर्याय से देवपर्याय मे जीव प्रविष्ट हो जाता है, यथा –

ज्यौ तन कचुक त्याग सौ, विनसै नाहि भुजग ।
त्यौ सरीर के नासतै, अलख अखण्डित अग ।।[3]

---

1 समयसार नाटक, बध द्वार, छन्द १५
2 समयसार नाटक, बध द्वार, छन्द ४६
3 समयसार नाटक, स्याद्वाद द्वार, छन्द २२

बारहवें सर्ग 'साध्य-साधक द्वार' मे विवेचन करते हुए समयसार-कर्ता ने जीव की साध्य-साधक अवस्थाओ का वर्णन किया है तथा सद्‌गुरु द्वारा जीवोद्धार का उल्लेख किया है कि यदि गुरु – आदेशानुसार जीव कार्यरत रहे तो पाँच प्रकार के जीव डूंगा, चूं घा, सूं घा ऊं घा, घूं गा--मोक्ष प्राप्त कर सकते है, क्योकि यह मोक्ष साधना से ही सभव है। यह इसलिये भी आवश्यक है, क्योकि अनित्य ससार मे कोई भी वस्तु अनुराग-योग्य नही है, वह पूर्णत. दु खमयी स्थितियो का कारण बनती है।

निश्चितरूप से यह कहा जा सकता है कि कविवर बनारसीदास ने अपने सामयिक चिन्तनकाल मे व्यापक महत्त्व प्राप्त करती जैनागम की तेरापथी विचारधारा के आध्यात्मिक स्वतत्त्व को परिपुष्ट करने की दिशा मे पुरातन काव्य-ग्रन्थ एव उसकी टीकाओ को आधार बनाकर तत्कालीन व्यावहारिक भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

निष्कर्ष रूपेण यह कहना समीचीन होगा कि रचनाकार के अभिव्यक्ति-कौशल से आध्यात्मिक चिन्तना-प्रधान ग्र थ भी सहज सरसता लेकर पाठकीय अभिरुचि का कारण बन गया है तथा धर्मप्राण जनो के लिए पुरातन सिद्धात-निरूपक ग्रन्थो को बोधगम्य बनाने की परपरा की प्रतिष्ठापना करता है।

□

लेखक-परिचय:–सम्पर्क-सूत्र पाठक भवन, बैंलडफेयर कपाउण्ड, नैनीताल (उ प्र) 263 001

# सही दिशा

सही दिशा बस एक है, निज आतम सो प्रीति।
पर द्रव्यनि मे प्रीति जो, मिथ्यामई अनीति ।।

(सवैया)

जामें प्रतिभाएं तो अनेक विद्यमान होवे,
पं न हो सही दिशा जो ताके उपयोग की।
ताकी प्रतिभा तो काहू को न हितकारी होय,
वृद्धि करे मात्र जन-तन मे विषे भोग की ।।
कविवर बनारसी काव्य-प्रतिभा के धनी,
रचना करी है तानें नौ रस मनोग की।
रुचि लगी आतम सो अध्यातम ग्रन्थ रचे,
कथनी कही है जामे शुद्ध उपयोग की ।।

– पं० अभयकुमार शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, जयपुर
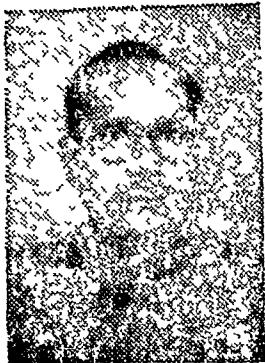
# खण्डित जीवन-नाटक : अखण्डित आत्मसाधक

– डॉ० राजेन्द्रकुमार बंसल

☐

रामायण के रचनाकार गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन आध्यात्मिक तत्त्ववेत्ता कविवर प. बनारसीदासजी ने तुलसीदास की भाँति ही अपनी अद्‌भुत काव्य-प्रतिभा से हिन्दी-साहित्य को नाममाला, अर्द्ध कथानक, बनारसी विलास एव समयसार नाटक जैसे महान ग्रन्थसुमन भेट किए। इनमे अर्द्धकथानक आत्म-कथा साहित्य का आद्यग्रन्थ है तथा समयसार नाटक जैनदर्शन का पाण्डित्यपूर्ण, अनुभतिपूर्ण, अध्यात्मपरक आद्यग्रन्थ है। परन्तु इनके साहित्य को साम्प्रदायिक नाम दे दिया गया, मात्र इसी कारण ये इतिहास मे तुलसी की पक्ति मे खडे नही हो सके।

वस्तुत समयसार नाटक की रचना कर बनारसीदासजी ने जैन साहित्य मे वही स्थान प्राप्त किया है, जो हिन्दू समाज मे गोस्वामी तुलसीदास को प्राप्त है। यह बात पृथक् है कि अध्यात्म रुचि की दुर्बलता के कारण श्री बनारसीदास जैन जन-मानस मे उतने प्रेरक प्रभावी या लोकप्रिय नही हो सके, जितने तुलसी हुए है।

जहाँ तक हिन्दी-साहित्य मे बनारसीदासजी के समुचित स्थान या सम्मान प्राप्त कर पाने का प्रश्न है, इसका एक मात्र अहम् कारण यह भी रहा कि प बनारसीदासजी की काव्य-प्रतिभा किसी व्यक्ति विशेष की चेरी न बनकर दिगम्बर जैन अल्प समुदाय के अध्यात्म दर्शन की अभिव्यक्ति मे समर्पित हुई।

लोक दृष्टि से अध्यात्म का विषय एक शुष्क विषय है, जिस ओर बिरले ही भव्य व्यक्तियो की रुचि होती है। दूसरे, जैन समाज द्वारा इस ग्रन्थ को अपने भण्डारो तक ही सीमित रखा गया, जिस कारण हिन्दी-साहित्य मे वह अपना अपेक्षित स्थल नही पा सका, अन्यथा अभी तक अनेक आलोचनाये, समालोचनाये एव शोधग्रन्थ उनके ऊपर लिखे गए होते और वे अपने विषय के अनूठे प्रतिनिधि प्रसिद्ध हो गए होते।

बनारसीदासजी एव गोस्वामी तुलसीदासजी दोनो ही समकालीन थे, जिन परि-स्थितियो एव वातावरण ने तुलसी को रामायण लिखने हेतु प्रेरित किया, उन्ही परिस्थितियो ने बनारसीदासजी से अध्यात्म रामायण के रूप मे 'समयसार नाटक'

लिखवा लिया। धर्म का क्षेत्र लोक-व्यवहार की तुलना मे कुछ अटपटा ही है। यह अनुसरण का विषय है। तुलसो राम को समर्पित थे तो बनारसीदासजी अपने आत्मा राम अर्थात् शुद्धात्मा को समर्पित रहे। उन्होने आत्मा-राम बनने हेतु आत्मा की शुद्धता, आत्मानुभव एव आत्मसाधना के विविध सोपानो का वर्णन लोक भाषा मे अत्यन्त प्रभावी ढग से किया और अध्यात्म को हिन्दी काव्य मे गूँथकर हिन्दी भाषा को सहज ही उपकृत कर दिया। अध्यातम की प्रगाढ रुचि उत्पन्न करने के कारण वह स्वय तो आत्माराम बनने को समर्पित हुए ही, दूसरो को भी उस मार्ग मे लगने हेतु उन्होने प्रेरित किया, जिसके लिए अध्यात्म जगत उनका सदैव ऋणी रहेगा।

बनारसीदास का जन्म मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल मे सवत् १६४३ (ई० १८६६) मे श्वेताम्बर सम्प्रदाय के श्री खरगसेन, श्रीमाल परिवार मे हुआ। पिता एव पितामह परम्परागत रूप से व्यापारी थे। उस समय वणिक वर्ग मे विद्याध्ययन श्रेष्ठ कार्य नही माना जाता था। पढना-लिखना ब्राह्मण एव भाटो का काम समझा जाता था और ऐसी मान्यता प्रचलित थी कि वणिक पढेगा तो भीख माँगेगा। तत्कालीन इन सामाजिक मान्यताओ एव बाद मे बनारसीदासजी की पारिवारिक परिस्थितियो के कारण उनकी शिक्षा-दीक्षा नगण्य रही। आठ वर्ष की वय मे पढना शुरू किया। नौ वर्ष की वय मे सगाई और ग्यारह वर्ष की वय मे शादी कर गृहस्थ हो गए, जिस कारण पढाई मे व्यवधान हुआ। चौदह वर्ष की वय में पुन पढाई आरम्भ की, किन्तु आशिक-मिजाज होने के कारण प्रेम-चक्कर मे पड गए, जिससे पढाई मे वही विराम लग गया।

सोलह वर्ष की वय मे उन्होने शृगार रस प्रधान 'नवरस' रचना लिखी, जो बाद मे अपराधबोध की भावना के कारण गोमती मे प्रवाहित कर दी गयी। इसी बीच बनारसीदासजी महाकुष्ठ रोग से पीडित हो गये। शरीर दुर्गन्धमय हो गया। पत्नी एव सास की नि स्वार्थ एव कष्टसाध्य सेवा से वे इस रोग से किसी प्रकार मुक्त हो सके। सत्ताईस वर्ष की आयु मे अर्थात् सवत् १६७० मे उन्होने नाममाला, सवत् १६९३ मे समयसार नाटक एव सवत् १६९८ मे अर्द्धकथानक की रचना की। इसके अलावा उन्होने अपने जीवनकाल मे अनेक पद्यबद्ध स्वतत्र रचनाये की, जो 'बनारसीविलास' नामक ग्रन्थ मे प्रकाशित हुयी है। शिक्षा के अभाव मे समयसार कलश पर आधारित समयसार नाटक की रचना करना, कवि की अध्ययन-प्रियता, कुशाग्रबुद्धि, सहज-ग्रहण क्षमता एवं अद्‌भुत काव्य-प्रतिभा का प्रतीक है। यह उल्लेखनीय है कि समयसार दिगम्बर जैनदर्शन का शुद्ध आध्यात्मिक सिद्धात ग्रन्थ है, जिसकी विषयवस्तु शुद्धात्मा का स्वरूप है। अर्द्ध-कथानक मे अपने जीवन की घटनाओ को बडी सच्चाई से वर्णित कियाहै, जिसमे सहज ही मानवीय कमजोरियो का चित्रण निश्छल रूप से बिना आत्मप्रवचना के हुआ है। हिन्दी आत्मकथा साहित्य का यह आद्यग्रन्थ है जो कवि की मौलिक सृजन-शक्ति की अभिव्यक्ति बन गया है।

बनारसीदासजी का जीवन अनेक उतार-चढाव, विचित्र सयोग, विरोधाभास तथा मर्मान्तिक पीडा की घटनाओ से भरा है। जितनी अनुकूल-प्रतिकूल घटनाये उनके जीवन-

काल में घटी, सामान्य व्यक्ति के जीवन मे शायद ही घटती हो। संसार मे चतुर्गति के दुःखो, प्रिय-अप्रिय सयोगो एव उत्थान-पतन के प्रतीक रूप मे जितने प्रयोग सभव थे, वे सब उनके जीवन मे घटे। इन सब विषम घटनाचक्रो के बीच कविवर तटस्थ रहे और अनासक्त भाव से सुख-दु.ख की पीडा सभी कुछ सहन करते गये, जो अपने आप मे महान एव प्रेरक प्रसग ही है। उनके जीवन मे हुए उतार-चढाव, सुख-दु ख, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियो ने यह सिद्ध कर दिया कि एक आत्मान्वेषी के लिए ये सब बाते प्रभावित नही कर सकती, उसे सन्मार्ग से विचलित नही कर सकती।

आसिक-मिजाज, गहन अधविश्वासी, अनुकूल-प्रतिकूल सयोगो से पीडित कविवर के जीवन मे ३७ वर्ष की अवस्था मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ, जिसके फलस्वरूप वे आत्मयोगी एव अध्यात्म-क्रान्ति के सूत्रधार बन गये। कविवर के जीवन मे यह दिशा-परिवर्तन स १६८० मे हुआ, जब श्री अरथमल ढोर ने कविवर को दिगम्बर जैन अनुयायी प. रूपचन्दजी पाण्डय द्वारा लिखित 'समयसार कलश टीका' पढने को दी। इसने कविवर के जीवन को बदल दिया। इससे उनका चितन एव दृष्टिकोण बदल गया, किन्तु सम्यक् दिशाबोध के अभाव मे समयसार अर्थात् शुद्धात्मा का वर्णन पढकर वे स्व-च्छद एव निश्चयभासी हो गये। वे और उनके परममित्र सर्वश्री चतुर्भुजजी, भगोतीदासजी कुंवरपालजी, धर्मदासजी एकान्त मे तत्त्वचर्चा कर नग्नवेश मे फिरने लगे और धर्म का मर्म समझे बिना अपने को अपरिग्रही मुनिराज कहने लगे। उनके इस कृत्य की बडी आलोचना हुयी और वे 'खोसरामति' के नाम से पुकारे जाने लगे। यह स्थिति बारह वर्ष तक रही। कविवर ने इस स्थिति का वर्णन करते हुये 'अर्द्धकथानक' मे लिखा है कि—

करनी कौ रस मिटि गयौ, भयौ न आतमस्वाद।
भई बनारसि की दसा, जथा ऊंट कौ पाद ॥५९५॥

जिसको होनहार भली होती है, उसे वैसे ही बाह्य सयोग भी अनायास ही मिल जाते है। उक्त पाँचो महानुभावो के साथ ऐसा ही हुआ। सवत् १६९२ मे अनायास ही पं रूपचदजी पाण्डेय का आगरा आगमन हुआ। वे तत्त्वमर्मज्ञ के साथ आगम-ज्ञाता भी थे। उन्होने गोम्मटसार ग्रन्थ पर प्रवचन किये और गुणस्थान अनुसार धार्मिक क्रिया एव भूमिका के अनुरूप आचार की स्थिति समझायी तथा निश्चय-व्यवहार, अनेकात-स्याद-वाद आदि का वर्णन करते हुये आत्मानुभव का मर्म बताया। इस दिशाबोध से कविवर के अतर्चक्षु खुल गये। जिसकी चाह थी, वह उन्हे मिल गया और वे 'निर्ग्रथ दिगम्बर' रूप आत्मपथ के पथिक बन गये।

इस दृष्टि-परिवर्तन के साथ कविवर ने धर्म के नाम पर पनप रहे शिथलाचार एवं क्रियाकाण्ड का घोर विरोध किया और वे आध्यात्मिक क्राति के सशक्त प्रहरी एव प्रतिष्ठापक के रूप मे देखे जाने लगे।

समयसार कलश एव प रूपचन्द पाण्डेय के गोम्मटसार प्रवचनो से आत्मकल्याण का जो मर्म कविवर ने समझा, उसे जन-जन का विषय बनाने हेतु वे कृतसकल्प हुये। तदनुसार इस उद्देश्य से उन्होने सवत् १६९३ मे 'समयसार नाटक' की मौलिक एव

अद्‌भुत रचना हिन्दी भाषा मे की, जो शीघ्र ही जैन समाज मे चर्चा का विषय बन गया और रामायण की चौपाइयो के अनुरूप गुनगुनाया जाने लगा।

आगरा मे बनारसीदास एव समयसार नाटक दोनो पर्यायवाची बन गये। जो भी व्यापार आदि के निमित्त उनके निकट आता, उनका ही जैसा हो जाता। इस प्रकार श्वेताम्बर कुल मे उत्पन्न प बनारसीदासजी दिगम्बर जैनधर्म एव दर्शन की अध्यात्म क्राति के सूत्रधार एव जननायक हो गये। 'इतिहास दुहराता है' को लोकोक्ति बनारसीदासजी के ३०० वर्ष बाद सिद्ध हुयी, जब श्वेताम्बर साधु कानजी स्वामी ने 'समयसार' मे वर्णित अध्यात्म के गूढ रहस्य को समझकर जन-जन का विषय बनाया और बनारसीदासजी के युग को पुन प्रतिष्ठापित किया।

'समयसार नाटक' मे अध्यात्म के गूढ रहस्यो का काव्यात्मक वर्णन करते हुये प. बनारसीदासजी मौलिक चितक, विचारक, तत्त्वान्वेषी, आत्मानुभवी एव सत्य पथ के निर्भीक पथिक के रूप मे उभरे हैं। दर्शन का पाडित्यपना, तत्त्व की गूढता तथा व्यवहारिक जीवन मे उसका अनुकरण आदि सभी विन्दुओ पर उन्होने अपनी सफल लेखनी चलायी है। वे कोरे पाडित्य-प्रदर्शक ही नही, तत्त्व को जीवन मे उतारने वाले प्रयोगकर्ता एव अनुभवी के रूप मे उभरे है। शुद्धात्मा का वर्णन सुन-पढकर कोई व्यक्ति निश्चयाभासी न हो जावे, इस दृष्टि से उन्होने 'समयसार नाटक' के अत मे गुणस्थानाधिकार की रचना कर पद की भूमिका के अनुरूप आचार धारण करने का मार्ग प्रशस्त किया। समयसार नाटक मे गुणस्थानाधिकार कविवर की मौलिक देन है जो व्यक्तियो को एकाती होने से रोकता है और आगम-अनुसार आचरण करने का मार्ग दर्शाता है। जिसे अपनी आत्मा का कल्याण करना है, उसे जाने-अनजाने मे बनारसीदास द्वारा वर्णित मार्ग का अनुसरण करना होगा।

☐

लेखक-परिचय —उम्र ४६ वर्ष। शिक्षा एम ए (द्वय), एल एल बी, पी-एच डी साहित्यरत्न। विविध पत्र-पत्रिकाओ मे शताधिक लेखो का प्रकाशन। अभिरुचि धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों मे विशेष सहयोग। सम्पर्क-सूत्र : कार्मिक प्रबन्धक, ओरियण्ट पेपर मिल्स, मु पो अमलाई, जिला शहडोल (म प्र)

# नित करते रहते रसारसी

– जयन्तिलाल जैन, नौगामा

थे हमारे पूर्वज ऐसे महाकवि श्री बनारसी।
निज आतम की ही वे नित करते रहते रसारसी ।।टेक।।

चढाव-उतार बहुत जीवन मे देखे थे रे।
पाप-पुण्य फल बहु जीवन मे लेखे थे रे।
महाकुरूप हुआ था जिनका सुन्दर तन भी,
नही रहा था जीवन मे जिनके कुछ धन भी,
करते ही रहते थे फिर भी समता रस की गटागटी,
निज आतम की ही वे नित करते रहते रसारसी ।।१।।

अर्द्धकथानक नाममाला वचनिका परमार्थिक,
समयसार नाटक लिखकर के दी शिक्षा परमार्थिक,
निमित्त उपादान की चिठ्ठी बनारसी विलास,
लिखकर निज विलास मे रहते श्री बनारसिदास,
घर-घर मे करवा दी इनने समयसार की चलाचली।
निज आतम की ही वे नित करते रहते रसारसी ।।२।।

बुराई बहा दी गोमती नवरस रचना के साथ,
ज्ञान और अच्छाई पाई 'रूपचंद्र' गुनी के पास,
थी जितनी भी अच्छाई अथवा थी जितनी बुराई,
जीवन मे जो कुछ भी घटा वह लिखा न कुछ भी छुपाई,
कर डाला अपना मन निर्मल कुछ भी की न छलाछली,
निज आतम की ही वे नित करते रहते रसारसी ।।३।।

थे यह तो श्री तुलसीदासजी के समकालीन,
थे वहाँ के शासक भी अत्याचारी तत्कालीन,
तुलसीदासजी ने इनको जब रामायण दिखलाई,
लिखकर एक पृष्ठ मे इनने आतम रामायण दिखलाई,
कवियो के भी थे कवि महाकवि श्री बनारसी।
निज आतम की ही वे करते रहते रसारसो ।।४।।

लेखक-परिचय:—उम्र २४ वर्ष। कोषाध्यक्ष, अ भा जैन युवा फैडरेशन, शाखा-नौगामा।
सम्पर्क-सूत्र S/o श्री रतनलाल जी जैन, मु. पो. नौगामा, जिला बासवाडा (राजस्थान)

# बनारसीदास को ऐसे नहीं, ऐसे पढ़िये

– वीरसागर जैन

□

कविवर बनारसीदास को इस वर्ष ४०० वर्ष पूरे हो रहे है। अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के आह्वान पर देश भर मे इस वर्ष को 'कविवर बनारसीदास वर्ष' के रूप मे मनाने की लहर-सी आयी हुई है। बनारसीदास को विविध आयामो से परखा जा रहा है। उनके समस्त व्यक्तित्व और कर्तृत्व का ही एक तरह से पुनरावलोकन किया जा रहा है। समालोचको द्वारा कविवर की कृतियो की साहित्यिक समीक्षाएँ, समालोचनाएँ प्रस्तुत की जा रही है।

अधिकाश लेखको का लगभग एक यही प्रतिपाद्य दिखाई दे रहा है कि कविवर बनारसीदास का हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे स्थान है और साहित्येतिहासकारो को उसे स्वीकार करना चाहिए। मेरे अनुसार – इस सुसिद्ध बात को सिद्ध करने मे समय और शक्ति लगाने की अब कोई आवश्यकता नही है। कविवर का हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे स्थान अवश्य है, उसे कोई नकार नही सकता। साहित्येतिहासकार भी अब इसे नि सकोच स्वीकार करते है। किसी दुराग्रह-ग्रस्त साहित्येतिहासकार की बात अलग है। वह यदि अपने इतिहास-ग्रन्थ मे कविवर को स्थान न दे तो इससे क्या फर्क पडता है? इतिहास मे स्थान दिया नही जाता है, स्वय प्राप्त किया जाता है। कविवर ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे स्थान स्वय बनाया है। उन्हे किसी ने स्थान दिया नही है, जिसे कोई छीन सके। कोई साहित्येतिहासकार किसी भी साहित्यकार को इतिहास मे स्थान दिला नही सकता है, छीन भी नही सकता है। वह तो मात्र स्वीकार करता है। और इसी मे उसका सच्चा साहित्येतिहासकारपना निहित है। सीधी-सी बात है कि जिन्होने हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र मे कार्य किया है, उन सबका हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे स्थान है। ठीक उसीप्रकार, जिसप्रकार जिन्होने सस्कृत-साहित्य मे कार्य किया है, उन सबका सस्कृत-साहित्य के इतिहास मे और जिन्होने अग्रेजी-साहित्य मे कार्य किया है, उन सबका अग्रेजी-साहित्य के इतिहास मे स्थान है। बनारसीदास ने हिन्दी-साहित्य मे कार्य किया है, अत: हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे उनका स्थान भी है। हाँ, कतिपय हिन्दी-साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित ग्रथो मे उनका उल्लेख अवश्य नही मिलता है, किन्तु इससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे कविवर का स्थान नही है, इससे

तो बल्कि यह सिद्ध होता है कि यह इतिहास-ग्रन्थ अपूर्ण है, असत्य है, क्योंकि जिस इतिहास-ग्रन्थ मे कविवर बनारसीदास जैसे महत्त्वपूर्ण साहित्यकार का उल्लेख नही हो, सम्भव है उसमे और भी अनेक प्रमुख-अप्रमुख हिन्दी-साहित्यकारो का उल्लेख रह गया हो।

कविवर बनारसीदास हिन्दी-साहित्य की 'आत्मकथा' विधा के आद्य प्रवर्तक है। उनका 'अर्द्धकथानक' हिन्दी-साहित्य की प्रथम आत्मकथा होते हुए भी अद्यावधि उपलब्ध आत्मकथाओ मे मूर्धन्य आत्मकथा स्वीकार की गयी है। 'परमार्थवचनिका' और 'उपादान-निमित्त की चिट्ठी' कविवर का ४०० वर्ष पूर्व का गद्य-साहित्य का कार्य है। ऐसी स्थिति मे हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे कविवर का स्थान और भी अधिक रेखाकित हो उठता है। विचारणीय है कि किसी (आत्मकथा) विधा के आद्य प्रवंतक का भी हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे स्थान न होगा तो फिर अन्य किसका होगा ? या फिर ऐसा वह इतिहास-ग्रन्थ कितना विश्वसनीय होगा – यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

दूसरी बात यह कि आखिर हमे कविवर को हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो मे स्थान दिलाने की इतनी हवस क्यो हो ? न मिले तो न मिले। उससे क्या फर्क पडता है ? वे ही लोग कविवर के लाभ से वञ्चित रह जावेगे। समझने की बात तो यह है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे सभवत बिहारी, केशव आदि से भी शीर्षस्थ स्थान सहज ही प्रदान कर देने वाली अपनी 'नवरस' रचना को कविवर ने स्वय अपने हाथो से गौमती नदी मे बहाकर नष्ट कर दी थी। नि सन्देह यदि कविवर को हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो मे स्थान चाहिए ही होता तो वे अपनी 'नवरस' रचना को कभी नष्ट न होने देते। आत्मकथा भी उन्होने इतिहासग्रन्थो मे स्थान प्राप्त करने के लिए नही लिखी है।

इसलिए मेरे अनुसार अब कविवर को हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे स्थान दिलाने हेतु अपने अमूल्य व सीमित समय एव शक्ति का अपव्यय करना उचित नही है। उचित-अनुचित की बात जाने भी दे तो इतना सुनिश्चित है कि वह कविवर बनारसीदास का अध्ययन नही है।

बनारसीदास को हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे स्थान दिलाने वाला अध्ययन बनारसीदास के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन तो हो सकता है, अपनी करुणा की अभिव्यक्ति तो हो सकती है; किन्तु वह अध्ययन बनारसीदास का अध्ययन कदापि नही कहा जा सकता है। बनारसीदास का अध्ययन तो बनारसीदास के वाञ्छित प्रतिपाद्य को समझने का नाम ही है। बनारसीदास के ऐसे सम्यक् अध्ययन के पश्चात् ऐसा विचार तो आ जाता है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे कविवर का स्थान तो है ही, काफी महत्त्वपूर्ण भी है, काश, वह स्थान चन्दवरदाई, कबीर, तुलसी, बिहारी और प्रसाद या प्रेमचन्द की तरह रेखाकित भी हुआ होता तो कविवर से और अधिक लोग लाभान्वित हो सकते। बहरहाल, वह कविवर का अभीष्ट प्रतिपाद्य न होने से कविवर का अध्ययन नही है, अतः निवेदन है कि बनारसीदास को ऐसे मत पढिए। पढिए भी तो उसे बनारसीदास का अध्ययन मानने की भारी भूल कभी मत कीजिए।

कविवर का 'समयसार नाटक' प्रस्तुत विविध समीक्षाओं की प्रमुख कसौटी बन बन रहा है। कारण स्पष्ट है – यह कविवर की श्रेष्ठ और सर्वाधिक प्रसिद्ध आध्यात्मिक सरस रचना है। 'बनारसीदास वर्ष' के बहाने इसका विविध आयामी अध्ययन विशेषत देखने मे आ रहा है। अलकार-योजना, दृष्टान्त-योजना, रस-योजना, छन्द-विधान, काव्यात्मकता आदि अनेक शीर्षको से इस पर खब लिखा जा रहा है। उपरि-निर्दिष्ट लाभ को दृष्टि मे रखकर ऐसे अध्ययन की भी प्रशंसा तो की जा सकती है, परन्तु वस्तुतः यह भी कविवर बनारसीदास का अध्ययन नही है, क्योकि छन्दालकार-प्रधान काव्यात्मकता या साहित्यिकता कविवर का प्रतिपाद्य नही है। इस सम्बन्ध मे भी 'नवरस' रचना से सम्बन्धित वही तर्क दोहराया जा सकता है। नि सन्देह यदि छन्दालकार-प्रधान काव्यात्मकता ही कविवर का प्रतिपाद्य होता तो वे अपनी 'नवरस' रचना को कभी नष्ट न होने देते। अत पुन निवेदन है कि कविवर को छन्दालकार-प्रधान काव्यात्मकता की दृष्टि से भी मत पढिए।

'समयसार नाटक' का अध्ययन प्रस्तुत करने वालो ने एक प्रश्न और उठा रखा है कि क्या 'समयसार नाटक' नाटक है ? यदि है, तो उसमे नाटकीय तत्त्वो – अर्थप्रकृतियाँ, सधियाँ, कार्यावस्थाएँ, सकलनत्रय, सवाद, पात्र योजना, अभिनेयता आदि – का निर्वाह क्यो नही किया गया है ? और यदि यह नाटक नही है तो इसका नाम नाटक क्यो है ? नाटक नाम होकर भी यदि यह नाटक नही है तो यह कोई उपयोगी वस्तु ही नही है।

इस सन्दर्भ मे एक ही बात कहनी है कि यदि समयसार नाटक' को उपर्युक्त नाटकीय तत्त्वो की कसौटी पर कसा जावे तो हिन्दी-साहित्य की दृश्य विधा 'नाटक' से इसका कोई सम्बन्ध नही है। यह उस अर्थ मे नाटक नही ही है। प्रश्न है कि फिर कविवर ने इसे नाटक कहा क्यो ? इसलिए कि यह वस्तुत नाटक है। वस्तुतः 'नाटक' से तात्पर्य यह है कि नाटक की यह अनन्य विशेषता है कि वहाँ जो जिस रूप मे होता है, वह उस रूप मे न दिखाई देकर अन्य रूप मे दिखाई देता है। 'समयसार नाटक' मे यही स्थिति है। यहाँ अज्ञानी को जीव जीवरूप मे, अजीव अजीवरूप मे दिखाई न देकर जीव अजीवरूप मे, अजीव जीवरूप मे, आस्रव-बध सवर-निर्जरा के रूप मे दिखाई दे रहे है। तब फिर 'समयसार नाटक' नाटक क्यो न हो ? कविवर के अनुसार यहाँ जीवरूपी नट बहुत ही विलक्षण नाटक करने वाला है। उसकी एक सत्ता मे अनन्त गुण है, प्रत्येक गुण मे अनन्त पर्याये है, प्रत्येक पर्याय मे अनन्त नृत्य है, प्रत्येक नृत्य मे अनन्त खेल है, प्रत्येक खेल मे अनन्त कलाएँ है और प्रत्येक कला की अनन्त आकृतियाँ है।

तैसै एक सत्ता मै अनत गुण परजाय,<br>
पर्जै मै अनत नृत्य तामैऽनत ठट है।<br>
ठट मै अनतकला कला मै अनत रूप,<br>
रूप मै अनत सत्ता, ऐसौ जीव नट है।।[1]

इसप्रकार स्पष्ट है कि 'समयसार नाटक' नाटक न होकर भी वस्तुत नाटक है। इसका 'नाटक' नाम अनुचित नही, अर्थगर्भित है। कुछ लोग नाटक विधा के अनुरूप न होने

1. समयसार नाटक, अन्तिम प्रशस्ति, छन्द ५

से इसे प्रबन्ध काव्य कहते है। बहरहाल जो भी हो, इतना तो सुनिश्चित है कि 'समयसार नाटक' नाटक है या नही अथवा नाटक है या प्रबन्ध काव्य – इस पचडे मे पडकर भी हम कविवर के वाञ्छित प्रतिपाद्य से दूर ही रहेगे, अतः हमे चाहिए कि इस विवाद मे भी न पडकर हम अपनी दृष्टि पैनी करके कविवर के वाञ्छित प्रतिपाद्य को ग्रहण करने का प्रयास करे।

इसीप्रकार कविवर की भाषा-शैली मे भी माथा मारने की आवश्यकता नही है। भाषा-शैली कविवर के यहाँ भावाभिव्यक्ति के माध्यम के रूप मे ही है, इससे अधिक बिलकुल नही।

कतिपय महानुभाव कविवर का अध्ययन पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए ही करते है। 'समयसार नाटक' के मधुर-मधुर कवित्त-सवैये उनके पाण्डित्य-प्रदर्शन मे खूब मदद भी करते है। कहना न होगा कि ऐसा अध्ययन भी वस्तुत· कार्यकारी नही होता।

अत मेरे अनुसार, अलकार-योजना, छन्द-योजना, काव्यरूपत्व, भाषाशैली, पाण्डित्य-प्रदर्शन आदि की स्थूल दृष्टि से कविवर की आध्यात्मिक रचनाओ का अध्ययन करना समझदारी नही है। कारण ? कविवर का प्रतिपाद्य यह सब कुछ नही है। कविवर का वांछित प्रतिपाद्य तो यह है—

बानारसी कहै भैया भव्य सुनो मेरी सीख,
कैहू भाति कैसेहू कै ऐसौ काजु कीजिए।
एकहू मुहूरत मिथ्यात कौ विधुंस होइ,
ग्यान कौ जगाई अस हस खोजि लीजिए॥
वाही कौ विचार वाकौ ध्यान यहै कौतूहल,
यौही भरि जनम परम रस पीजिए।
तजि भववास कौ विलास सविकार रूप,
अतकरि मोह कौ अनतकाल जीजिए॥[1]

कैसी अचरज की बात है कि जो कविवर हमे कैसे भी करके मिथ्यात्व का विनाश करने की और ज्ञानहस को जगाने की प्रेरणा दे रहे है, हम उसे उपेक्षित कर बैठे है और ऊपरी ताम-झाम मे ही रीझ गये है। कहने लगे है – वाह! क्या सवैया लिखा है! कैसी रमणीय अलकार छटा है! धन्य है बनारसीदासजी! सचमुच कविवर हो!

पता नही हम कविवर की 'कैहू भाति कैसेहू कै ऐसौ काजु कीजिए' बात को क्यो गम्भीरता से नही लेते है ? सचमुच कविवर कितनी करुणा से प्रेरणा दे रहे है, भव-विलास का अन्त करके अनतकाल जीने की कला सिखा रहे है। और भी देखिए—

भैया जगवासी तू उदासी ह्वै कै जगतसौ,
एक छ महीना उपदेस मेरौ मानु रे।
और सकलप विकलप के विचार तजि,
बैठिकै एकंत मन एक ठौर आनु रे॥

---

1 समयसार नाटक, जीव द्वार, छन्द २४

तेरी घट सुर तामें तू ही है कमल ताकी,
तू ही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानु रे।
प्रापति न ह्वै है कछु ऐसौ तू विचारतु है,
सही व्है है प्रापति सरूप यौही जानु रे ।।[1]

यहाँ भी परमकरुणापूर्वक कविवर ने यही कहा है कि हे भैया जगवासी ! तू तो जगत से उदास हो जा और व्यर्थ के सकल्प-विकल्पो को छोडकर अपने हृदय-समुद्र मे स्थित आत्मकमल की सुगन्ध पहचान ले, उसका मधुकर बन जा। कविवर के वाछित प्रतिपाद्य को उत्कृष्ट रूप से व्यक्त करने वाला एक छन्दऔर द्रष्टव्य है—

सदगुरु कहै भव्यजीवन सौ, तोरहु तुरित मोह की जेल।
समकितरूप गहौ अपनौ गुन, करहु सुद्ध अनुभव कौ खेल ।।
पुदगलपिड भाव रागादिक, इनसौ नही तुम्हारो मेल।
ए जड प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसे भिन्न तोय अरु तेल ।।[2]

कवि के उपर्युक्त कथनो से यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि कविवर का वाछित प्रतिपाद्य आत्महित ही है। अत बनारसीदास का सम्यक् अध्ययन आत्महित करना ही है।

अत अन्त मे पुन यही निवेदन है कि हम कविवर को साहित्येतिहासकारो और तथाकथित काव्यरसिको की दृष्टि से नही, आत्महित की दृष्टि से पढे, ताकि कविवर का वाछित प्रतिपाद्य समझ सके, भवविलास से छूटकर अनतकाल जीने की कला सीख सके।

लेखक-परिचय —उम्र २४ वर्ष। शिक्षा शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, एम ए (हिन्दी)। भूतपूर्व स्नातक, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धात महाविद्यालय, जयपुर। सम्पर्क-सूत्र : श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर--३०२०१५

1. समयसार नाटक, अजीव द्वार, छन्द ३
2. समयसार नाटक, जीव द्वार, छन्द १२

# अर्द्ध कथानक : एक समीक्षात्मक अध्ययन

(श्रीमती) अध्यात्मप्रभा जैन

□

प बनारसीदास हिन्दी आत्मकथा साहित्य के आद्यप्रवर्तक है। साहित्य-समीक्षकों से स्वीकृत यह तथ्य साहित्यप्रेमियो से आज छिपा नही है।

आत्मकथा-साहित्य के अधिकारी विद्वान बनारसीदासजी चतुर्वेदी लिखते है—

"हिन्दी का तो यह प्रथम आत्मचरित है, पर अन्य भारतीय भाषाओ मे भी इसप्रकार की और इतनी पुरानी पुस्तक मिलना आसान नही। और सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि कविवर बनारसीदास का दृष्टिकोण आधुनिक आत्मचरित लेखको के दृष्टिकोण से बिल्कुल मिलता-जुलता है।[1]"

डॉ ब्रजाधीशप्रसाद ने आत्मकथा को दो वर्गों मे विभक्त किया है—विषयनिष्ठ एव विषयीनिष्ठ। जिस आत्मकथा मे लेखक आपबीती कहते हुए निर्लिप्तता नही छोडता, वह विषयनिष्ठ आत्मकथा होती है। जिस आत्मकथा मे रचनाकार का सम्पूर्ण अस्तित्व मुखर हो उठता है, एक आत्मीयतापूर्ण ससक्ति आद्योपान्त बनी रहती है, वह विषयीनिष्ठ आत्मकथा होती है।

इस परिभाषा के अनुसार 'अर्द्ध कथानक' विषयीनिष्ठ आत्मकथा की कोटि मे आती है, क्योकि अर्द्ध कथानक मे लेखक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व मुखर हो उठा है, सम्पूर्ण कृति मे कही भी लेखक ओझल नही हुआ है।

यथाक्रम व्यवस्थित रूप से गुम्फित यथार्थ घटना-क्रम अर्द्ध कथानक की अपनी विशेषता है। इसमे लेखक के निजी जीवन के अतिरिक्त उनके सगी-साथियो की भी आवश्यकतानुसार चर्चा हुई है। यद्यपि उन्होने राग-द्वेषवश किसी की भलाई-बुराई नही की है, तथापि अपने गुणावगुणो के खुले निरूपण के साथ सम्पर्क मे आने वालो के गुण-दोष भी नि सकोच कह दिये है।

यहाँ बनारसीदासजी के इस विचार से सम्मत होना सभव नही है कि – क्या हमे ऐसे तथाकथित सत्य का उद्घाटन करना चाहिए, जिससे अपने सगी-साथियो के चरित पर आशका उत्पन्न हो जाये।

---

1 अर्द्ध कथानक, हिन्दी का प्रथम आत्मचरित, पृष्ठ २

यथार्थता आत्मकथा की जान है । यदि लेखक भय, लज्जा के कारण किसी तथ्य को तोडता-मरोडता है तो वह आत्मकथा लिखने का अधिकारी नही है ।

पात्रो, घटनाओ एव तथ्यो की निष्पक्ष सम्यक् प्रस्तुति के साथ-साथ 'अर्द्ध कथानक' मे देश-काल एव वातावरण का भी सजीव चित्रण हुआ है । इसमे जौनपुर, आगरा, मेरठ, पटना, फतेहपुर, इलाहाबाद, बनारस आदि स्थानो एव उनको जोडनेवाले रास्तो का चित्रण बहुलता से प्राप्त होता है । तत्कालोन सामाजिक, राजनैतिक एव धार्मिक स्थिति-तियो का भी सहज चित्रण हुआ है । ध्यान रहे – कवि का सबध राजमहलो से न होकर मध्यम श्रेणी के व्यापारी वर्ग से था जिसे उस समय पग-पग पर कठिनाइयो का सामना करना पडता था । राजनीतिक अस्थिरता, आवागमन के साधनो का अभाव एव निरतर तनाव मे रहना उसकी नियति थी । पग पग-पर ठोकर खाने वाले भुक्तभोगी असफल व्यापारी की आत्मकथा होने से 'अर्द्ध कथानक मे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक व व धार्मिक स्थितियो का यथार्थ चित्रण इतना मार्मिक बन पडा है कि हृदय को आन्दोलित कर देता है ।

किसी भी आत्मकथा के ताने-बाने की बुनावट मे भावना, कल्पना और अनुभूति का पर्याप्त अश रहता है । अपने सम्पूर्ण अतीत का पुनर्दर्शन मनश्चक्षुओ के माध्यम से भावना ही करती है । कल्पना सारे अतीत को साभिप्राय अन्विति प्रदान करती है और समस्त कलात्मक उपकरणो मे अभीष्ट अनुपात बिठाती है एव अनुभूति समग्र अतीत को जीवन स्पन्दन मे परिपूर्ण कर आस्वाद्य बना देती है । 'अर्द्ध कथानक' के अध्ययन से हम पाते है कि उसमे इन तीनो ही तत्त्वो का सानुपातिक मिश्रण है । भावना ने कवि को अपने अतीत जीवन पर दृष्टिपात करने के लिए विवश किया और कल्पना ने कलात्मक साहित्य बनाने मे सहयोग प्रदान किया एव अनुभूति ने उसे सजीवता प्रदान की ।

'अर्द्ध कथानक' बनारसीदासजी के जीवन की साक्षात् छाया है, किन्तु वह निर्जीव प्रतिच्छाया मात्र न होकर एक सजीव आत्माकन है । सजीवता साहित्य का अनिवार्य गुण है, जिसके बिना साहित्य विवरण मात्र रह जाता है । अर्द्ध कथानक की जीवन्तता के सदर्भ मे बनारसीदास चतुर्वेदी का निम्नाकित कथन द्रष्टव्य है—

"कविवर बनारसीदास के आत्मचरित 'अर्द्धकथानक' को आद्योपान्त पढने के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचे है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे इस ग्रन्थ का एक विशेष स्थान तो होगा ही, साथ ही इसमे वह सजीवनी शक्ति विद्यमान है, जो इसे अभी कई सौ वर्ष जीवित रखने मे सर्वथा समर्थ होगी ।[1]"

व्यक्ति व उसका जीवन आत्मकथा का केन्द्र बिन्दु होता है । अत आत्मकथा मे उसके अतरग व बाह्य जीवन का पूणत आकलन आवश्यक होता है । 'अर्द्ध कथानक' मे

---

1 अर्द्ध कथानक, हिन्दी का प्रथम आत्मचरित, पृष्ठ २

कवि ने अपनी आन्तरिक व बाह्य प्रवृत्तियो का वर्णन अतिशयोक्ति के बिना, बडी खूबी के साथ किया है। वे अल्पायु मे ही बुरी आदतो के शिकार हो गये थे, जिसका वर्णन करते हुए उन्होने वडे सहज ही ढग से लिखा है—

कै पढना कै आसिखी, मगन दुहू रस माहि।
खान-पान की सुध नही, रोजगार किछु नाहि ॥[1]

बुरी आदतो के कारण कवि को उपदश रोग लग गया था। इस रोग का होना आज भी लज्जाजनक माना जाता है और चारित्रिक स्खलन का प्रतीक माना जाता है। अत. तत्कालीन सामाजिक अवस्था को देखते हुए कवि के द्वारा 'अर्द्ध कथानक' में उसका वर्णन सचमुच ही दुस्साहस का कार्य था। वे लिखते है—

भयौ बनारसिदास-तनु, कुष्ठरूप सरबंग।
हाड-हाड़ उपजी बिथा, केस रोम भुव-भग ॥
विस्फोटक अगनित भए, हस्त चरन चौरग।
कोऊ नर साला ससुर, भोजन वरै न सग ॥[2]

आत्मकथा के इसी गुण के सदर्भ मे पं पदुमलालजी बख्शी लिखते है—

"आत्मकथा एव डायरी मे सच्चे भावो की सच्ची अभिव्यक्ति होनी चाहिए। यही लेखको की सबसे बडी कठिनता होती है। सच्चे भावो को सच्चे रूप मे प्रकट करने के लिए रचना को उतनी कुशलता नही चाहिए, जितनी सत्साहस की।"

यदि बनारसीदासजी मे सत्साहस की कमी होती तो वे अपने चारित्रिक स्खलनो का इतना खुल्लमखुल्ला वर्णन नही करते, अपितु तुलसी के समान 'मो सम कौन अधम खल कामी' कह कर अपने दोषो को धार्मिकता के पर्दे से छिपा देते।

आत्मचित्रण वस्तुत. तलवार की धार पर चलने के समान कठिन कार्य है। इस सदर्भ मे अब्राह्म काडलो का यह कथन सटीक है"स्वय अपने विषय मे लिखना बहुत आनन्द-प्रद है, तथापि कष्टप्रद कार्य है, क्योकि अपनी निन्दा स्वय करना हृदय को अप्रीतिकर प्रतीत होता है और लेखक की आत्मप्रशसा सुनना पाठक को कर्णकटु लगता है।[3]"

'अर्द्ध कथानक' की यही विशेषता है कि कवि को आत्मनिंदा अरुचिकर प्रतीत नही होती है और आत्मप्रशसा से उनके किसी पाठक को कोई भी परेशानी अनुभव नही हुई। देखा जाए तो कवि ने 'अर्द्ध कथानक' मे आत्मप्रशसा को विशेष स्थान नही दिया। कृति के

---

1 अर्द्ध कथानक, छन्द १८०
2 अर्द्ध कथानक, छन्द १८५-१८६
5 ए बैक ग्राउण्ड टू द स्टेडी आफ इ गलिश लिटरेचर, पृष्ठ १९८

अतिम अशो मे आत्मनिरीक्षण-पूर्वक अपने गुणो का वर्णन किया है, उन गुणो मे आत्म-कथा के पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् कुछ भी सदेह नही रहता । इसलिए वह आत्मश्लाघा प्रतीत नही होती । यदि लेखक मात्र अपनी दुर्बलताओ का ही वर्णन करे, तो वे दुर्बल-ताएँ आत्मकथा-लेखन मे साधन के स्थान पर साध्य ही हो जाएँगी, जो कलात्मकता के लिए घातक होगा । इस सदर्भ मे श्री नारायण चतुर्वेदी का कहना है—

"आत्मकथा मे दुर्बलताओ का उल्लेख एक बडी कसौटी है, जिस पर आत्मकथा-लेखक को खरा उतारना आवश्यक होता है । आत्मकथा मे न तो ऐसा ही होना चाहिए कि दुर्बलताओ की चर्चा का सर्वथा लोप कर दिया जाएँ, और न ही उसका अतिविस्तृत वर्णन दिया जाए कि वे साधन के स्थान पर साध्य हो जाए ।[1]"

'अर्द्ध कथानक' इस कसौटी पर पूर्णत खरी उतरती है । लेखक ने अर्द्ध कथानक मे अपने सदर्भ मे लिखने मे जिस निर्लिप्तता का परिचय दिया है, उससे प्रभावित होकर श्री बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते है—

"कविवर बनारसीदास का दृष्टिकोण आधुनिक आत्मचरित-लेखको के दृष्टि-कोण से बिल्कुल मिलता-जुलता है । अपने चारित्रिक दोषो पर उन्होने पर्दा नही डाला है, बल्कि उनका विवरण इस खूबी के साथ किया है, मानो कोई वैज्ञानिक तटस्थवृत्ति से विश्ले-षण कर रहा हो । आत्मा की ऐसी चीरफाड कोई अत्यन्त कुशल साहित्यिक सर्जन ही कर सकता था ।[2]"

आत्मकथा मे लेखक के जीवन की आपबीती का क्रमबद्ध सत्य वर्णन ही यथेष्ट नही होता, उसका आत्मनिरीक्षण व आत्मपरीक्षण भी वाछित है । आत्मकथा मे साहित्यकार स्वय को पुनरुपलब्ध करता है । दूसरे शब्दो मे वह साहित्यस्रष्टा के पुन. जीवन जीने की एक प्रक्रिया होती है, अत आत्मनिरीक्षण व आत्मपरीक्षण के अभाव मे कृति की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लग सकता है ।

'अर्द्ध कथानक' मे कवि ने ग्रन्थ-समाप्ति से पूर्व आत्मनिरीक्षण करते हुए अपने गुणो व अवगुणो का तटस्थ रूप से वर्णन किया है—

गुण कथन "भापाकबित अध्यातम माहि । पटतर और दूसरौ नाहि ॥
छमावत सन्तोषी भला । भली कबित पढिवे की कला ॥
पढै ससकृत प्राकृत सुद्ध । विविध-देसभापा-प्रतिबुद्ध ॥
जाने सबद अरथ कौ भेद । ठानै नही जगत कौ खेद ॥
मिठबोला सबही सौं प्रीति । जैन धरम की दिढ परतीति ॥
सहनसील नहि कहै कुबोल । सुथिरचित्त नहि डावाडोल ॥

---

1 आत्मनिरीक्षण, भूमिका

2 अर्द्ध कथानक, हिन्दी का प्रथम आत्मचरित, पृष्ठ २

कहै सत्रनिसौ हित उपदेस। हृदै सुष्ट न दुष्टता लेस ।।
पररमनी को त्यागी सोइ। कुबिसन और न ठानै कोई ।।
हृदय सुद्ध समकित को टेक। इत्यादिक गुन और अनेक ।।
अलप जघन्न कहे गुन जोइ। नहिं उतकिष्ट न निर्मल कोइ ।।

दोष-कथन कहे बनारसौ के गुन जथा। दोष कथा अब बरनौ तथा ।।
क्रोध मान माया जलरेख। पै लछिमी को लोभ बिसेख ।।
पोतं हासकर्मका उदा। घरसो हुवा न चाहै जुदा ।।
करे न जप-तप सजम रीति। नही दान पूजासौ प्रीति ।।
थोरे लाभ हरख बहु धरै। अलप हानि बहु चिन्ता करै ।।
मुख अवद्य भाषत न लजाइ। सीखै भडकला मन लाइ ।।
भाखै अकथ-कथा बिरतत। ठानें नृत्य पाई एकत ।।
अनदेखी अनसुनी बनाइ। कुकथा कहै सभामहि आइ ।।
होइ निमग्न हास रस पाई। मृषावाद विनु रहा न जाई ।।
अकस्मात भय व्यापै घनी। ऐसी दसा आइ करि बनी ।।
कबहू दोष कबहू गुन कोइ। जाको उदो सो परगट होइ ।।
यह बनारसीजी की बात। कही थूल जो हुती बिख्यात ।।[1]"

उक्त पदो मे बनारसीदासजी ने किसी मनोवैज्ञानिक की भाँति अपने भावो और वृत्तियो का तटस्थ अकन किया है, जिससे प्रतीत होता है कि कोई मनोवैज्ञानिक किसी अन्य व्यक्ति के मनोभावो को प्रकट कर रहा हो। देखा जाए तो बडे से बड़े मनोवैज्ञानिक भी दूसरे का इतनी गहराई से विश्लेषण नही कर सकते, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति अपने मनो-जगत को ससार मे सबसे अधिक समझता है, अत' यदि वह निष्पक्ष होकर अपने चरित का वर्णन करता है तो उससे अधिक सही वर्णन कोई नही कर सकता। आत्मकथा के सदर्भ मे यह उचित ही कहा जाता है कि आत्मकथा के माध्यम से उस व्यक्ति का प्रामाणिक अन्तर्दर्शन पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाता है, क्योकि उसका स्रष्टा चरितनायक के मनोजगत को ससार मे सबसे अधिक समझता है।

सत्यतापूर्वक किया गया आत्मनिरीक्षण और उसका सफल कथन आत्मकथा की कसौटी है। प्रसिद्ध नाटककार सेठ गोविन्ददासजी इस-सदर्भ मे कहते है—

"साहित्य के आधुनिक मनोवैज्ञानिक युग मे यदि आत्मचरित मे आत्मनिरीक्षण भी हो, और आत्मनिरीक्षण यदि सत्य का ध्येय बनकर, असत्य से दूर, बहुत दूर हटकर हो तो वह आत्म-चरित साहित्य मे अपना छोटा या बडा कोई न कोई स्थान अवश्य प्राप्त कर लेता है।[2]"

किसी भी आत्मकथा मे चिन्तन का वह रूप अवश्य ही व्यक्त होना चाहिए, जिसके आधार पर कृति के सर्जक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को व्याख्यायित किया जासके। साथ

1 अर्द्धकथानक, छन्द ६४७ से ६५७ 2 मेरी आत्मकथा, भूमिका

हो वह चिन्तन मात्र बुद्धि की क्रीडा न होकर जीवन की आस्था और दिशा को प्रकट करे। अपने जीवन के राग-सवेदनो को पाठको तक पहुँचाने के अतिरिक्त आत्मकथाकार का यह भी ध्येय होना चाहिए कि वह अपने जीवन-अनुभव से निष्पन्न विचार, चिन्तन तथा निष्कर्षो को पाठको तक पहुँचाये। इनके अभाव मे कृति का कोई साहित्यिक मूल्य नही है, क्योकि मात्र मनोरजन के तो बहुत से साधन होते है। साहित्य की उपयोगिता तो इसी मे है कि वह मनोरजन के साथ-साथ पाठको के समक्ष कोई जीवन मूल्यो की स्थापना कर सके।

'अर्द्धकथानक' मे स्थान-स्थान पर ऐसी उक्तियाँ दी गई है या ऐसे निष्कर्ष (समाधान) प्रस्तुत किये गये है, जिन्हे यदि हम अपने जीवन मे उतारने का प्रयत्न करे तो सुख शान्ति प्राप्त कर सकते है।

आत्मकथा लिखते हुए कवि एक स्थान पर कहता है कि जो वस्तुये उदय मे सुख रूप प्रतीत होती है, वे ही वस्तुएँ भोग-अन्तराय के उदय होने पर अर्थात् दुर्भाग्य आने पर दुःख रूप परिणत हो जाती है—

"पुत्र कलत्र सुता जुगल, अरु सपदा अनूप।
भोग-अ तराई-उदै, भए सफल दु ख रूप ।।[1]"

यदि हम सुख व दु ख को समान भाव से, समताभाव से ग्रहण करे तो वे हमे दुःखी नही कर सकते।

"ग्यानी संपति विपति मै, रहै एकसी भाँति।
ज्यो रबि ऊगत अथावत, तजै न राती काँति ।।[2]"

यदि हम सुखी होना चाहते है तो उसका आशय यही है कि जो भी कुछ हो रहा है उसे समता भाव से ग्रहण करे, क्योकि लाख प्रयत्न करने के बावजूद जो होना होता है, उसे हम टाल तो सकते नही और टालने का विकल्प रखकर असफल होने पर भारी दु ख उठाते है।

सब काम समय पर ही बनता है, समय से पहले कुछ नही होता। कवि के शब्दो मे—

"कहै दोष कोउ न तजै, तजै अवस्था पाइ।
जैसै बालक की दसा, तरुन भए मिटि जाइ ।।
उदै होत सुभ करम के, उई असुभ की हानि।
तातै तुरित बनारसी, गही धरम की बानि ।।[3]"

अपनी अनेक बुरी आदतो के परिणामो का वर्णन करके कवि ने उन्हे त्यागने की प्रेरणा दी है एव मनुष्य को सत्पुरुष बनने का प्रयत्न करने का उपदेश दिया है।

---

1 अर्द्धकथानक, छन्द ११८
2 अर्द्धकथानक, छन्द १३०
3 अर्द्धकथानक, छद २७२-२७३

आत्मकथा का शिक्षाप्रद एव यथार्थ होना ही उसके चिर स्थायित्व प्रदान नही कर सकता । मनोरजकता के अभाव मे आत्मकथा नैतिक शिक्षा और सत्य विवरणो का एक नीरस चित्राकन होगा, जिसे बुद्धिजीवी व नैतिक शिक्षा का हिमायती व्यक्ति भी पढने से कतरायेगा । अत: आत्मकथा मे सहजरूप से मनोरजकता व हास्यरस का समावेश होना चाहिए, जिसे सामान्य पाठक आसानी से समझ सके ।

बनारसीदासजी इस सदर्भ मे भी पूर्णतः सफल लेखक सिद्ध हुए हैं । उनके जीवन की घटनाएँ इतनी विचित्र है कि उनका यथाविधि वर्णन ही उनकी मनोरजकता की गारटी बन सकता है और दूसरा कारण यह है कि कविवर के हास्यरस की प्रवृत्ति अच्छी मात्रा मे पाई जाती है । अपनी मजाक उडाने का कोई मौका वे नही छोडना चाहते । कई महीनो तक आप एक कचौडी वाले से दोनो वक्त कचौडियाँ खाते रहे । फिर एक दिन एकान्त मे बोले—

"तुम उधार दीनौ बहुत, आगै अब जिनि देहु ।
मेरे पास किछू नही, दाम कहाँ सौ लेहु ।।[1]

यह बात अलग है कि रुपये हाथ मे आते ही छह सात मास का हिसाब एक साथ चुकता कर दिया ।

वे कई बार बेवकूफ भी बने । अपनी मूर्खताओ का उन्होने बडा ही मनोरजक वर्णन किया है । एक बार एक धूर्त सन्यासी ने आपको चकमा दिया कि अगर तुम मत्र का जाप पूरे साल भर तक बिल्कुल गोपनीय ढंग से पाखाने मे बैठकर करोगे तो वर्ष बीतने पर घर के दरवाजे पर एक असर्फी रोज मिलेगी । आपने उस कल्पद्रुम मत्र का जाप उस दुर्गन्धित वायुमडल मे विधिवत् किया, पर कानी-कोडी भी नही मिली ।

बनारसीदासजी का आत्मचरित पढते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हम फिल्म देख रहे है । कही पर चोरो को गाँव मे लुटने से बचने के लिए तिलक लगाकर ब्राह्मण बनकर चोरो के चौधरी को आशीर्वाद दे रहे है, तो कही आप अपने साथी-सगियो की चौकडी मे नगे नाच रहे है या जूते-पैजार का खेल खेल रहे है—

"कुमति चारि मिले मन मेल । खेला पैजारहु का खेल ।।
सिर की पाग लेहि सब छीनि । एक एकको मारहि तीनि ।।[2]

एक बार घोर वर्षा के समय इटावा के निकट आपको एक उद्दण्ड पुरुष की खाट के नीचे टाट बिछाकर अपने दो साथियो के साथ लेटना पड़ा । उस गँवार धूर्त ने इनसे कहा कि मुझे तो खाट के विना चैन नही पड सकती, अत तुम टाट को बिछाकर मेरी खाट के नीचे शयन करो ।

---

1. अर्द्धकथानक, छन्द ३४१
2 अर्द्धकथानक, छन्द ६०१

'एवमस्तु' बानारसी कहै। जैसी जाहि परै सो सहै ।।
जैसा कातै तैसा बुनै। जैसा बोवै तैसा लुनै ।।
पुरुष खाट पर सोया भले। तीनो जने खाट के तले ।।[1]

एक बार आगरा लौटते हुए कुर्रा नामक ग्राम मे आप और आपके साथियो पर झूठे सिक्के चलाने का इल्जाम लगा दिया गया था और अठारह साथियो सहित आपको मृत्युदड देने के लिए शूली भी तैयार कर ली गई थी। यद्यपि उस सकट का व्यौरा रोंगटे खडे करने वाला है तथापि उस वर्णन मे भी आपने अपनी स्वभावगत हास्य प्रवृत्ति को नही छोडा।

इसप्रकार हम देखते है कि बनारसीदासजी ने अपनी कमजोरियाँ उधेडकर रख दी है और उन पर खुद हँसे है और दूसरो को हँसाया है। अधविश्वासो की, जिनके वे खुद शिकार हुए थे, उन्होने बडी खुशी के साथ हँसी उडाई है। और यात्रा के समय अनेक विपत्तियो का सामना करते हुए भी अपने हँसोड स्वभाव को भूले नही तथा आफतो का चित्रण करते हुए भीउन्होने अपने हँसोड स्वभाव को नही छोडा। आफतो मे भी उन्होने हास्य की सामग्री पाई। इन्ही कारणो से 'अर्द्धकथानक' रोचक बन पडा है।

स्टिफन ज्विगला ने "दी वर्ल्ड ऑफ यस्टरडे" नामक आत्मकथा मे लिखा है—उसी व्यक्ति की जिन्दगी सच्ची मानी जानी चाहिए जिसने ऊषा एव अधकार, युद्ध और शान्ति, उतार व चढाव तीनो का अनुभव अपने जीवन मे किया है। इस कसौटी पर कविवर बनारसीदासजी का जीवन बिल्कुल सजीव सिद्ध होता है और इसीलिए उनके जीवन मे ऐसा बहुत था जिसको लिखा जा सके और जो पठनीय भी हो।

तीन सौ वर्ष पूर्व रचित 'अर्द्धकथानक' को आज के मानदण्डो की कसौटी पर कसकर देखने पर पूर्णत. खरा उतरता है। बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है—

कविवर बनारसीदासजी जानते थे कि आत्मचरित लिखते समय वे कैसा असभव कार्य हाथ मे ले रहे है। उन्होने कहा भी था कि एक जीव की चौबीस घटे मे जितनी भिन्न-भिन्न दशाएँ होती है, उन्हे केवल केवली या सर्वज्ञ ही जान सकता है और वह भी उसे पूरा यथावत् व्यक्त नही कर सकता—

एक जीव की एक दिन दसा होहि जेतीक।
सो कहि सकै न केवली, जानै जद्यपि ठीक ।।[2]

फिर भी छह सौ पचहत्तर दोहा और चौपाइयो मे कविवर बनारसीदासजी ने अपना चरित्र-चित्रण करने मे काफी सफलता प्राप्त की है। अपने को तटस्थ रखकर अपने सत्कर्मों व दुष्कर्मो पर दृष्टि डालना, उनको विवेक की तराजू पर 'बावन तोले पाव रत्ती' तौलना, सचमुच एक कलापूर्ण कार्य है।

1 अर्द्धकथानक, छन्द ३०६-३०७
2 अर्द्धकथानक, छन्द ६६०

जिस तरह किसी को अपना चित्र खिचवाते समय आत्मचेतना हो जाए तो उसके चेहरे की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है, इसीप्रकार आत्मचरित लेखक को अहंभाव आ जावे अथवा 'पाठक क्या ख्याल करेगे' यह भावना जाग जाए तो वह उसकी सफलता के लिए विघातक हो सकती है।

आत्मचित्रण मे दो ही प्रकार के व्यक्ति विशेष सफलता प्राप्त कर सकते है, या तो बच्चो की तरह भोले-भाले आदमी, जो अपनी सरल निरभिमानता से यथार्थ बाते लिख सकते हैं अथवा कोई फक्कड, जिसे लोकलज्जा का भय नही।

फक्कड शिरोमणि कविवर बनारसीदासजी ने तीन सौ वर्ष पूर्व आत्मचरित लिखकर वर्तमान और भावी फक्कडो को मानो न्यौता दे दिया है। यद्यपि उन्होने विनम्रतापूर्वक अपने को कीट-पतग की श्रेणी मे रखा है – "हमसे कीट पतग, की बात चलावै कौन ?" तथापि इसमे कोई सन्देह नही कि वे आत्मचरित–लेखको में शिरोमणि है।

उक्त कथन द्वारा बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने कविवर बनारसीदास को सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा लेखक स्वीकार किया है।

"अन्त करण का प्रगटीकरण" नामक पुस्तक के लेखक ने ससार के २५० आत्म चरितो विश्लेषण करके उक्त पुस्तक की रचना की थी और अन्त मे सर्वश्रेष्ठ आत्म-चरितो केलिए तीन गुण आवश्यक माने—

१. वे सक्षिप्त हो। २. उनमे थोडे मे बहुत बात कही गई हो।
३. वे पक्षपात रहित हो।

'अर्द्धकथानक' इन तीनो ही विशेषताओ से परिपूर्ण है, इन कसौटियो पर खरा उतरता है। अत. वह नि.सन्देह सर्वश्रेष्ठ आत्मचरित है।

लेखिका-परिचय — उम्र २४ वर्ष। शिक्षा जैनदर्शनाचार्य, एम ए (हिन्दी)। कविवर बनारसीदास पर 'अर्द्धकथानक' के विशेष सदर्भ मे लघु शोध प्रबन्ध प्रकाशित। अभिरुचि जैनदर्शन का अध्ययन। सम्पर्क-सूत्र W/o विपिनकुमार शास्त्री, ३२०, चैतन्य-विलास, महात्मा गाँधी मार्ग, आगरा (उ० प्र०)

# लिख्यो कहा पढ़ै कछु लख्यो है सो पढ़िये !!

लिखत पढत ठाम-ठाम लोक लक्ष कोटि,
ऐसो पाठ पढ़े कछु ज्ञानहू न वढ़िये ।
मिथ्यामती पचि-पचि शास्त्र के समूह पढ़े,
पर न विकास भयौ भवदधि कढ़िये[1] ।।
दीपक संजोय दीनो चक्षुहीन ताके कर,
विकट पहार वापै कबहूं न चढ़िये ।
'बानारसीदास' सो तो ज्ञान के प्रकाश भये,
लिख्यो कहा पढ़ कछू लख्यो है सो पढ़िये ।।

–बनारसीदास ज्ञानबावनी, पद्य सं १५

जगह-जगह लाखों करोडों लोग प्रतिदिन अनगिनत शास्त्रो, पुस्तको के पन्ने पढते है, परन्तु उनके इस तरह पढने से प्रयोजनभूत ज्ञान मे कुछ वृद्धि नही होती ।

वस्तुतत्त्व के यथार्थ स्वरूप को न समझनेवाले - मिथ्यादृष्टि जीव अथक परिश्रम से बहुत शास्त्रो को पढते है, किन्तु इसके अन्दर ससार-सागर से पार उतारने वाले एवं अनुकूल अतीन्द्रिय आनन्द देने वाले ज्ञान का किंचित् भी विकास नही होता । ग्यारह अग के पाठी भी मिथ्यादृष्टि दुखी ही है, उनका भव-समुद्र से पार होना सभव नही है ।

जिसतरह अ ध के हाथ मे दीपक देने मात्र से वह ऊँचे पहाड पर नही चढ सकता, उसीतरह आत्म ज्ञान-शून्य मिथ्यामति के द्वारा सहस्रो शास्त्र पढने पर भी प्रयोजनभूत ज्ञान मे वृद्धि नही हो सकती ।

अत कवि प्रेरणा देते हुए कहते है कि हे भव्य! केवल लिखा हुआ पढने से पार नही पडेगी । कुछ लखे हुये को पढ ! अर्थात् जो अनत ज्ञानियो द्वारा प्रत्यक्ष देखा–जाना गया है एव अनुभव किया गया है, तू भी उस आत्मतत्त्व का ज्ञान कर ! अनुभव कर !! – रतनचद भारिल्ल

1 इस पक्ति का पाठान्तर भी मिलता है – "वधीकलवाजे पशुचाम ढोल मढिये"।

# विज्ञापन खण्ड क्यों पढ़ें ?

अब आप विज्ञापन-खण्ड पढिये ! अधिकांश विज्ञापनों में कविवर बनारसीदास की कृतियों से चुनकर अनमोल आत्महितकारी वचनामृत दिए गए है । कतिपय विज्ञापनों में अन्य शास्त्रो से भो अनमोल वाक्य चुनकर दिए गए है । अत प्रिय पाठकों से विनम्र अनुरोध है कि वे इस खण्ड को भी ध्यान से पढे ।

## अनन्तता

ता अनतता के स्वरूप को ज्ञानी पुरुष भी अनन्त ही देखै जाणै कहै। अनन्त को ओर – अत है ही नाही जो ज्ञानविषै भाषै। तातै अनन्तता अनन्तहीरूप प्रतिभासै।

– परमार्थवचनिका, बनारसी विलास, पृष्ठ २११

(स सि धन्यकुमार जैन)
महावीर कीर्तिस्तम्भ,
नेहरू पार्क, कटनी (म० प्र०) ४८३५०१
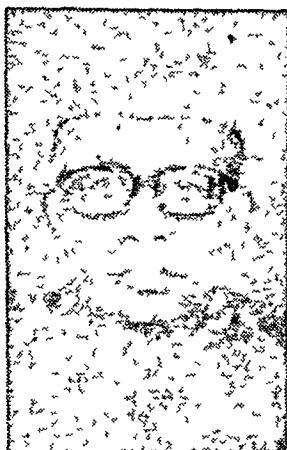
कविवर बनारसीदास के प्रति विनयाञ्जलि

– स० सिंघई धन्यकुमार जैन

आधुनिक भारतीय बैंकिंग सेवाओ के लिए कार्यरत

## सेन्ट्रल इण्डिया बैंकर्स

सबकी समृद्धि हेतु शुभकामनाये प्रकट करते है।

–एस एस प्रसन्नकुमार जैन
जनरल मैनेजर
आफिस २३३०

---

हार्दिक शुभकामनाओ सहित

–फूलचन्द चौधरी

## मनोजकुमार एण्ड कम्पनी

(ग्रेन, पल्सेज, राइस, आयल सीड मर्चेण्ट एण्ड कमीशन एजेण्ट)

**चौधरी ट्रेडिंग क०**
(ग्रेन, पल्सेज एण्ड जनरल मर्चेन्ट)

**चौ० रज्जूलाल मोतीलाल जैन**
(प्रो० चौ० फूलचन्द एण्ड सन्स)

छेडा भवन, मस्जिद साईडिग, ३रा माला, रूम न ४, दानवदर, बम्बई ४००००९

फोन ऑफिस 338887–328313
निवास 471201 PP. कैलाश चौधरी

तार–देदामूरी
DEDAMURI

अन्य शाखाये

**श्री अभय इण्डस्ट्रीज**
(कमल छाप दालो के निर्माता)
अशोकनगर (म० प्र०)
फोन . 6 PP श्रेयासकुमार चौधरी

**चौ० फूलचन्द एण्ड सन्स**
(ग्रेन सीड्स मर्चेट एण्ड कमीशन एजेण्ट)
अशोकनगर जि० गुना (म० प्र०)
तार अभय

## दुर्लभ देह पाय अजान अकारथ खोवै

ज्यो मतिहीन विवेक बिना नर, साजि मतङ्गज ईंधन ढोवै ।
कंजन भाजन धूल भरै शठ, मूढ सुधारस सौं पग धोवै ।।
वाहित काग उडावन कारण, डार महामणि मूरख रोवै ।
त्यौं यह दुर्लभ देह 'बनारसि', पाय अजान अकारथ खोवै ।।८५।।

—समयसार नाटक, पृष्ठ १२०

## हम बैठे अपनी मौन सौं

हम बैठे अपनी मौन सौं ।
दिन दश के महिमान जगत, जन बोलि बिगारै कोन सौ ।। हम बैठे ।।

गये विलाय भरम के बादर, परमारथपथपौन सौ ।
अब अंतरगति भई हमारी, परचे राधारौन सौ ।। हम बैठे. ।।

प्रगटी सुधापान की महिमा, मन नहिं लागै वौन सौ ।
छिन न सुहायँ और रस फीके, रुचि साहिब के लोन सौ ।। हम बैठे ।।

रहे अघाय पाय सुखसपति, को निकसै निज भौनसौ ।
सहज भाव सद्गुरु की सगति, सुरझै आवागौन सौ ।। हम बैठे ।।

## कविवर बनारसीदास के प्रति श्रद्धांजलि

— झूमरमल धर्मचन्द पाड्या

## मोख को करैया एक सुद्ध उपयोग है

सील तप सजम विरति दान पूजादिक,
अथवा असजम कषाय विषैभोग है।
कोउ सुभरूप कोउ असुभ स्वरूप मूल,
वस्तु के विचारत दुविध कर्मरोग है।।
ऐसी बध पद्धति वखानी वीतराग देव,
आतम धरम मैं करम त्याग-जोग है।
भौ-जल-तरैया राग-द्वेष कौ हरैया महा,
मोख को करैया एक सुद्ध उपयोग है।।

— समयसार नाटक

## कहां ताईं लिखिये कहां ताईं कहिये

इन बातन को ब्यौरो कहा ताईं लिखिये कहा ताईं कहिए । वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातैं यह विचार बहुत कहा लिखहिं जो ज्ञाता होइगो सो थोरी ही लिख्यो बहुत करि समुझैगो जो अज्ञानी होयगो सो यह चिठ्ठी सुनैगो सही परन्तु समुझैगा नही यह वचनिका यथा का यथा सुमति-प्रवान केवलिवचनानुसारी है ।

– परमार्थ वचनिका, बनारसी विलास, पृ २१५
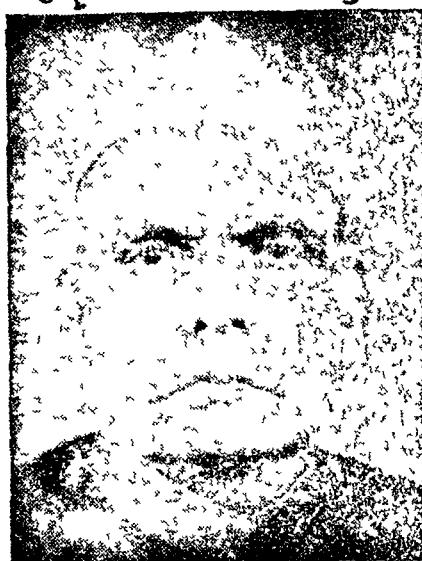
## जगत मे सो देवन को देव

जगत मे सो देवन को देव ।
जासु चरन परसै इन्द्रादिक, होय मुकति स्वयमेव ।। जगत मे० ।।

जो न छुधित न तृषित न भयाकुल, इन्द्रोविषय न वेव ।
जनम न होय जरा नहि व्यापै, मिटी मरन की टेव ।। जगत में० ।।

जाकै नहि विषाद नहिं विस्मय, नहि आठो अहमेव ।
राग विरोध मोह नहिं जाकै, नहिं निद्रा परसेव ।। जगत मे० ।।

नहि तनरोग न श्रम नहि चिंता, दोष अठारह भेव ।
मिटे सहज जाके ता प्रभु की, करत 'बनारसि' सेव ।। जगत मे० ।।

ज्ञाता जब कदाचित् बधपद्धति विचारै तब जानै कि या पद्धति सौं मेरो द्रव्य अनादि को बधरूप चल्यो आयो है—अब या पद्धति सौ मोह तौरि वहै तो या पद्धति को राग पूर्व की त्यो हे नर काहे करो ? छिन मात्र भी बधपद्धति विषै मगन होय नाही……

☐ ☐ ☐

जो ज्ञान होय सो स्वसत्तावलबनशीली होइ ताको नाउ ज्ञान। ता ज्ञान की सहकार भूत निमित्त रूप नाना प्रकार के उदीक भाव होहि। तिन्ह उदीक भावन को ज्ञाता तमासगीर। न कर्त्ता न भोक्ता न अबलबी तातै कोऊ यो कहै कि या भाति के उदीकभाव होहिं सर्वथा तौ फलानौ गुनस्थानक कहिये सो भूठो। तिन द्रव्य कौ स्वरूप सर्वथा प्रकार जान्यौ नाही।

— परमार्थ वचनिका, बनारसीविलास, पृष्ठ २१३, २१४ व २१५

आत्मानुभूति ! तत्त्वप्रचार !!

युवा-शक्ति के सृजनात्मक उपयोग में सलग्न

# अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

मुख्य कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२०१५
फोन · 63581

**स्थापना—**

❀ 1 जनवरी, 1977

**उद्देश्य—**

❀ युवा-वर्ग मे जिनागम के अध्ययन, मनन एव चिन्तन की रुचि जागृत करना, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति वास्तविक बहुमान उत्पन्न करना एवं उन्हे जैन-धर्म के प्रचार-प्रसार और धर्म तथा धर्मायतनो की सुरक्षा हेतु सगठित करना ।

**गतिविधियाँ—**

❀ देश मे स्थान-स्थान पर धार्मिक शिक्षण-शिविरो का आयोजन ।

❀ गाँव-गाँव मे वीतराग-विज्ञान पाठशालाओ की स्थापना ।

❀ सत्-साहित्य प्रकाशन ।

❀ धार्मिक पर्वों तथा अन्य अवसरो पर समाज को प्रवचनकार विद्वान् उपलब्ध कराना ।

❀ जगह-जगह साहित्य विक्रय केन्द्रो एव पुस्तकालयो की स्थापना ।

❀ सामूहिक स्वाध्याय एव जिनेन्द्र पूजन-भक्ति को प्रोत्साहन ।

❀ उद्देश्य के अनुरूप अन्य साप्ताहिक गोष्ठियाँ, तीर्थयात्रायें आदि विविध गतिविधियो का सचालन ।

**सदस्यता—**

दिगम्बर जैनधर्म मे श्रद्धा तथा फैडरेशन के उद्देश्यो के प्रति अस्था रखने वाले 15 से 40 वर्ष तक के प्रत्येक भाई-बहिन एक रुपया सदस्यता शुल्क जमा करके फैडरेशन के सदस्य बन सकते है ।

भवदीय

ब्र जतीशचन्द्र शास्त्री
(अध्यक्ष)

विपिनकुमार शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य
(महामन्त्री)

महिमा सम्यक् ज्ञान की, अरु विराग बल जोइ।
क्रिया करत फल भुंजतै, करमबंध नहि होय ॥

– समयसार नाटक



ए भइया उटकनावारे–तैं विशुद्धतामै शुद्धता मानी कि नाही, जो तौ तै मानी तौ कछु और कहिबेकौ कार्य नाही। जो तैं नाही मानी त तेरौ द्रव्य याही भाति कौ परनयौ है हम कहा करि है जो मानी तो स्याबासि। यह तौ द्रव्यार्थिक की चौभगी पूरन भई।

– उपादान निमित्त की चिट्ठी; बनारसी विलास, पृष्ठ २२१

कविवर बनारसीदास की चतुर्थ जन्म शताब्दी पर

*विनम्र श्रद्धाञ्जलि*

# श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट

**प्रमुख गतिविधियाँ :—**

- तीर्थक्षेत्रो की सुरक्षा एव जीर्णोद्धार हेतु आर्थिक सहयोग।
- बेंगलोर एव मद्रास मे श्री जैन लिटरेचर रिचर्स इंस्टीट्यूट का सचालन।
- जयपुर मे साहित्य प्रकाशन एव प्रचार विभाग का संचालन।
  (इस विभाग के माध्यम से लागत से भी कम मूल्य मे साहित्य का प्रकाशन होता है तथा जिनवाणी के प्रचार हेतु विद्वान भेजे जाते हैं।)
- जिनवाणी की सेवा मे समर्पित आत्मार्थी विद्वान तैयार करने हेतु जयपुर मे श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय का सचालन।
- अप्राकृतिक आक्रमणो से सुरक्षा हेतु सभी तीर्थों का वितृत सर्वेक्षण।
- तीर्थों की सुरक्षा हेतु कार्यकर्त्ताओ को विशेष प्रशिक्षण।
- पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को उन्हीं की वाणी में सुरक्षित रखने के लिए टेप-सुरक्षा विभाग का संचालन।

मुख्य कार्यालय :
श्री सीमन्धर जिनालय
173/175, मुम्बादेवी रोड, बम्बई–400002

फोन . 346099

## भौंदू भाई! समुझ शबद यह मेरा

भौंदू भाई! समुझ शबद यह मेरा।
जो तू देखै इन आखिनसौ, तामैं कछु न तेरा॥ भौंदू॥
इन आँखिन की कौन भरोसो, ए विनसै छिन माहि।
है इनको पुद्गल सौ परचै, तू तो पुद्ग्ल नाहि॥ भौंदू॥
पराधीन बल इन आँखिन को विनु प्रकाश न सूझै।
सो परकास अगनि रवि शशि को, तू अपनो कर बूझै॥ भौंदू॥
जग मे काय पाय ए प्रगटै, नहिं थावर को साथी।
तू तो इन्है मान अपने दृग, भयो भीम को हाथी॥ भौंदू॥
तेरे दृग मुद्रित घट अतर, अन्धरूप तू ढोलै।
कै तो सहज खुलै वे आँखे, कै गुरु सगति खोलै॥ भौंदू॥

*कविवर बनारसीदास के प्रति श्रद्धांजलि*

— सुरेन्द्रकुमार जैन

जाकै दिन कटै सोई आयु मे अवश्य घटै,
बूँद-बूँद बीतै जैसै अजुली कौ जल है।
देह नित छीन होत नैन-तेज हीन होत,
जोवन मलीन होत छीन होत बल है॥
आवै जरा नेरी तकै अतक-अहेरी आवै,
परभौ नजीक जात नरभौ निफल है।
मिलकै मिलापी जन पूछत कुशल मेरी,
ऐसी दशामाही मित्र काहे की कुशल है ?

कविवर भूधरदास जैन शतक

## सोई समकिती भवसागर तरतु है

जाकै घट प्रगट विवेक गणधर कौ सौ,
हिरदै हरखि महामोह कौ हरतु है।
साँचौ सुख मानै निज महिमा अडोल जानै,
आपु ही मैं आपनौ सुभाउ ले धरतु है ।।
जैसे जल कर्दम कतक फल भिन्न करै,
तैसे जीव अजीव विलछनु करतु है।
आतम सकति साधै ग्यान कौ उदौ अराधै,
सोई समकिती भवसागर तरतु है ।।

– समयसार नाटक, पृष्ठ ८, छन्द ८

## संसारचक्र के अभाव का उपाय

❀ अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय करे तो कर्मबन्ध नही होगा।

❀ कर्मबन्ध न हो तो चतुर्गति की प्राप्ति नही होगी।

❀ गति की प्राप्ति न हो तो शरीर का संयोग नही होगा।

❀ शरीर का सयोग नही हो तो इन्द्रियाँ नही होगी।

❀ इन्द्रियाँ नही हो तो विषयग्रहण नही होगा।

❀ विषयग्रहण नही हो तो उपयोग स्वभाव-सन्मुख हो जायगा।

❀ उपयोग के स्वभाव-सन्मुख होने से कर्मबन्ध का अभाव हो जायगा।

❀ कर्मबन्ध के अभाव मे ससारचक्र का अभाव हो जायगा।

अतः पर से एव पर्याय से भेदज्ञान कर, त्रिकाली ज्ञायक स्वभावी भगवान आत्मा का आश्रय करो।

— सम्पादक की डायरी से साभार

घट घट अंतर जिन बसै,
घट घट अतर जैन ।
मत मदिरा के पान सौ,
मतवाला समुझै न ॥

— समयसार नाटक

---

## त्यो बिन भाव क्रिया सब झूठी

ज्यो नीराग पुरुष के सनमुख, पुरकामिनि कटाक्ष कर झूठी ।
ज्यो धन त्यागरहित प्रभुसेवन, ऊसर मे बरषा जिम छूठी ।।
ज्यो शिलमाहि कमल को बोवन, पवन पकर जिम बांधिये मूठी ।
ये करतूति होय जिम निष्फल, त्यो बिन भाव क्रिया सब झूठी ।।

— समयसार नाटक, पृष्ठ १२६

कविवर बनारसीदास के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि

— एम के गांधी, लन्दन

**LONDON**
*Consultation at*
62 Blandford St
London WIH3HE
(U K)
01-935-9029
01-487-4180
*All Mail to*
33, Weymouth/Mews
London WIN3FP
(U K)


सर एम० के० गांधी


**NEW YORK**
APT No 15C
27 West 8 6 Street
New York N Y 100 24

**BOMBAY**
Flet B 102
AMRIT Co op-Ho
Societety
KHAR
BOMBAY-400052

**SACRAMENTO**
1833, CERES Way
Sacramento, CA 95825
916-485-3751

Sir MOTILAL K GANDHI,
Kt O M. S O J
AHIMSA UNIVERSAL
PRAYERS & HEALING

## दुविधा कब जैहै या मन की

दुविधा कब जैहै या मन की।
कब निजनाथ निरजन सुमिरो, तज सेवा जन-जन की।।दुविधा०।।
कब रुचि सौं पीवैं दृग चातक, बूंद अखयपद घन की।
कब सुभ ध्यान धरौ समता गहि, करूं न ममता तन की।।दुविधा०।।
कब घट अन्तर रहै निरन्तर, दिढता सुगुरु-वचन की।
कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धन की।।दुविधा०।।
कब घर छाडि होहूँ एकाकी, लिये लालसा वन की।
ऐसी दशा होय कब मेरी, हौं बलि बलि वा छन की।।दुविधा०।।

– समयसार नाटक, पृष्ठ १७१

## कविवर बनारसीदास के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलियाँ

*श्रीमती पतासीदेवी पाटनी*
धर्मपत्नि स्वर्गीय इन्द्रचन्द पाटनी
मातेश्वरी श्री बाबूलाल पाटनी

इन्द्रचन्द मोहनलाल पाटनी
लाडनूं (राज०)

बाबूलाल राजेशकुमार पाटनी
'पूनम पेलेस', ए. टी. रोड
गोहाटी (आसाम) 781001
फोन : 31245

# प्रवचन प्रसार योजना

## अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, जयपुर

द्वारा सचालित

## टेप-विभाग

यह तो आपको ज्ञात ही है कि अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन द्वारा पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी द्वारा प्रदत्त तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार हेतु 'टेप-विभाग" कार्यरत है। इसके द्वारा दो वर्ष के अल्पकाल मे ही उपलब्ध प्रवचनो की १५,६१० कैसिटो का विक्रय हो चुका हे।

वर्तमान मे हमारे पास प्रवचनो के जो सेट्स उपलब्ध है, उनकी केसिट सख्या एव १२/– प्रति केसिट के हिसाब से मूल्य निम्नानुसार है –

| क्र० | विषय | केसिट सख्या | कुल मूल्य |
|---|---|---|---|
| १ | समयसार परिशिष्ट मे आगत ४७ शक्तियो पर प्रवचन | ४२ | ५०४ ०० |
| २ | समयसार गाथा ३०८ से ३११ के आधार पर क्रमवद्धपर्याय पर प्रवचन | ७० | ८४ ०० |
| ३ | समयसार गाथा ६ से ९२ तक के प्रवचन | ७९ | ९४८,०० |
| ४ | समयसार गाथा ३२० पर प्रवचन | १० | १२० ०० |
| ५ | छहढाला की ४, ५, ६ ढाल पर हुए प्रववच | १६ | १९२ ०० |
| ६ | प्रवचनसार गाथा २० से २०० तक के प्रवचन | १०४ | १,२४८ ०० |
| ७ | नियमसार गावा ३८ से ५५ तक के प्रवचन | १०६ | १,२७२ ०० |
| ८ | परमात्मप्रकाश गाथा ७८ से १२३ तक के प्रवचन | ८१ | ९७२ ०० |
| ९ | इष्टोपदेश गाथा ६ से ५० तक के प्रवचन | ३७ | ४४४ ०० |
| १० | योगसार गाथा ६९ से ९२ तक के प्रवचन | १० | १२० ०० |
| ११ | समयसार कलश टीका कलश २ से ११९ तक के प्रवचन | ९९ | १,१८८ ०० |

**नोट** —(1) पोस्टेज व्यय लगेगा। (11) माल वी पी पी से नही भेजा जायेगा। (111) अग्रिम राशि जमा होने पर ही माल वेजा जायेगा।

आर्डर भेजने के लिए निम्न पते पर सम्पर्क करे —

प्रवन्धक, **प्रवचन प्रसार योजना**

ए-४, वापूनगर, जयपुर-३०२०१५ (राजस्थान)

## सुख-दुःख

- ★ आत्म परिणाम की स्वस्थ्यता को समाधि कहते है।
- ★ आत्म परिणाम की अस्वस्थ्यता को अ-समाधि कहते है।
- ★ शरीर व्याधि मन्दिरम् – शरीर रोगो का घर है।
- ★ आत्मा ज्ञान मन्दिरम् – आत्मा ज्ञान का आलय है।
- ★ शरीर के साथ एकत्व-बुद्धि वह दु:ख।
- ★ आत्मा के साथ एकत्व-बुद्धि वह सुख।
- ★ सुखी होने के लिए शरीर का लक्ष्य छोडकर शुद्ध आत्मा का लक्ष्य निरन्तर करना चाहिए।

## चेतन तू तिहुं काल अकेला

चेतन तू तिहु काल अकेला ।
नदी नाव सजोग मिले ज्यो, त्यो कुटुंब का मेला ।।चेतन०।।
यह ससार असार रूप सब, ज्यो पटपेखन खेला ।
सुख सम्पति शरीर जल बुद-बुद, विनसत नाही वेला ।।चेतन०।।
मोह मगन आतम गुन भूलत, परि तोहि गल जेला ।
मै मैं करत चहूं गति डोलत, बोलत जैसे छेला ।।चेतन०।।
कहत 'बनारसी' मिथ्यातम तज, होइ सुगुरु का चेला ।
तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज सुरझेला ।।चेतन०।।

## भैया जगवासी !!

भैया जगवासी तू उदासी ह्वै कै जगत सौं,
एक छ महीना उपदेश मेरौ मानु रे।
और सकलप विकलप के विकार तजि,
बैठिकै एकत मन एक ठौरु आनु रे।।
तेरौ घट सर तामैं तू ही है कमल ताकौ,
तू ही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानु रे।
प्रापति न ह्वै है कछु ऐसो तू विचारतु है,
सही ह्वै है प्रापति सरूप यौं ही जानु रे।।

— समयसार नाटक, अजीवद्वार, छन्द ३

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ-परीक्षा बोर्ड, जयपुर

# सिंहावलोकन, सन १९८५-८६

बालकों व नवयुवकों में नैतिक जागरण के उद्देश्य से परीक्षा बोर्ड की स्थापना सन् १९६८ में हुई थी। यह बताते हुए हमें प्रसन्नता होती है कि यह परीक्षा बोर्ड आरंभ में ही अपने उद्देश्य की पूर्ति में निरन्तर सफल होता चला आ रहा है।

सन् १९६८-६९ में यह मात्र ११ केन्द्रों और ५७१ छात्रों से आरम्भ हुआ था, किन्तु आज १८ वर्षों के अल्पकाल में इस परीक्षा बोर्ड से प्रतिवर्ष लाभ लेने वालों की संख्या २०,००० (बीस हजार) तक पहुँच गयी है और इसके परीक्षा केन्द्रों की संख्या भी ३३३ (तीन सौ तेतीस) हो गयी है।

आज यह हिन्दी, मराठी व गुजराती – इन तीन भाषाओं का संचालन करता है, जिसके सत्र १९८५-८६ के परीक्षार्थियों की संख्या निम्नानुसार है —

| भाषावार | कुल छात्र संख्या | उत्तीर्ण | अनुत्तीर्ण | अनुपस्थित |
|---|---|---|---|---|
| हिन्दी भाषी | १५२६४ | १०२६८ | ९८६ | ४०१० |
| मराठी भाषी | २४७० | १९८० | १०३ | ३८७ |
| गुजराती भाषी | ६५४ | ६५४ | — | — |
| योग | १८,३८८ | १२९,०२ | १०,८९ | ४,३९७ |

आज तक सब कुल ३,०३,३२८ परीक्षार्थी बोर्ड द्वारा संचालित विभिन्न (चौबीस विषयों की) परीक्षाओं में सम्मिलित हुए और २,१९,५९१ उत्तीर्ण परीक्षार्थियों ने बोर्ड से प्रमाण-पत्र प्राप्त किए हैं।

इस सफलता में बोर्ड द्वारा लगाये जाने वाले ग्रीष्मकालीन शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा उनमें प्रशिक्षित अध्यापकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। शिविरों की उपयोगिता व प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा प्रशिक्षण विधि से पढ़ाये जाने के ढंग को समाज ने भलीभाँति सराहा है। भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति ने भी शालाओं को अनुदान देकर संचालित करके परीक्षा बोर्ड के परीक्षार्थियों तथा परीक्षाकेन्द्रों की संख्या बढ़ाने में तो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी ही है, साथ ही पढ़ाई का स्तर ऊँचा उठाने में भी वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का योगदान अविस्मरणीय रहा है।

परीक्षा बोर्ड के बालबोध पाठमाला भाग १, २, ३ वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३, तथा तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १, २ – इन आठ पुस्तकों के अपने-अपने पाठ्यक्रम हैं, विशारद परीक्षा में समयसार, गोम्मटसार जीवकाण्ड व कर्मकाण्ड, समयसार नाटक, मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थ सूत्र), द्रव्यसंग्रह, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, परीक्षामुख, छहढाला, मोक्षमार्ग प्रकाशक इत्यादि ग्रन्थों के महत्त्वपूर्ण अंश कोर्स में रखे गये हैं। इनके अलावा द्रव्यसंग्रह, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, मोक्षशास्त्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, छहढाला, मोक्षमार्ग प्रकाशक, जैन सिद्धान्त प्रवेशिका आदि ग्रंथों की ग्रंथश: परीक्षा भी ली जाती है। कुल २४ विषयों की यह बोर्ड परीक्षा लेता है।

–प्रस्तुति शान्तिकुमार पाटील, जैनदर्शनाचार्य

# श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की शीतकालीन परीक्षा सत्र १९८५-८६ की लिखित परीक्षा में सर्वाधिक अंक पानेवालो की चित्रावली

बाई, ग्वालियर कमलाबाई, नागपुर नीता पाटनी, उज्जैन श्रीमती चमेली, बण्डा कुसुम मोदी, विदिशा
रद प्र ख.प्र व विशारद प्र ख.द्वि व विशारद द्वि ख प्र व विशारद द्वि ख द्वि व पुरुषार्थसिद्धयुपाय

नावाई, विदिशा निर्मलकुमार, सागर अनीता, नागपुर प्रेमलता, नागपुर अनिलकुमार, विदिशा
ार्गप्रकाशक पू. मोक्षमार्गप्रकाशक उ तत्त्वार्थसूत्र पूर्वार्द्ध तत्त्वार्थसूत्र उत्तरार्द्ध रत्नकण्ड श्रावकाचार

ा, जसवन्तनगर मीना, अशोकनगर शाह कुसुमबेन, तलोद वीरबाला, जसवन्तनगर मोतीरानी, जसवतनगर
द्रव्यसग्रह छहढाला छहढाला जैनसिद्धात प्रवेशिका तत्त्वज्ञान पाठमाला-२

मकुमार, इन्दौर सध्या, छिन्दवाडा श्रीमती प्रमोद, अशोकनगर नन्दनकुमार, छिन्दवाडा शैलेष, तलोद
(लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका)

कल्पना, सागर शाह वीरेन, राजकोट संजीव, ललितपुर मनोज ललितपुर रजनी, मूर्तिजापुर
बाल पाठमाला-१ वि वि पाठमाला भाग २ वी.वि पाठमाला-२ वी वि पाठमाला-२ वि वी पाठमाला-२